प्राक्शास्त्री प्रथम वर्ष प्रथम सत्रार्द्ध

योग सैद्धान्तिक - प्रथम क्रेडिट

प्रथम पाठ	:	योग का अर्थ एवं परिभाषा
द्वितीय पाठ	:	योग का इतिहास और परम्पराएँ
तृतीय पाठ	:	योग भ्रान्तियाँ एवं समाधान
चतुर्थ पाठ	:	योग का महत्त्व
पञ्चम पाठ	:	योग दर्शन का स्वरूप
षष्ठ पाठ	:	चित्त का अर्थ, परिभाषा एवं भूमियाँ
सप्तम पाठ	:	चित्तवृत्ति एवं प्रकार
अष्टम पाठ	:	चित्तवृत्ति निरोध के उपाय
नवम पाठ	:	योग अंतराय एवं चित्त प्रसादन के उपाय
दशम पाठ	:	पंचक्लेश एवं कर्माशय
एकादश पाठ	:	योग दर्शन में ईश्वर का स्वरूप
द्वादश पाठ	:	समाधि का अर्थ एवं भेद
त्रयोदश पाठ	:	क्रियायोग का स्वरूप एवं महत्व
चतुर्दश पाठ	:	अष्टांग योग
पञ्चदश पाठ	:	संयम और विभूतियों का स्वरुप
षोडश पाठ	:	कैवल्य का स्वरूप

योग प्रायोगिक - द्वितीय क्रेडिट

सप्तदश पाठ	:	योगाभ्यास हेतु स्थान एवं वातावरण
अष्टादश पाठ	:	प्रार्थना एवं प्रणव का स्वरूप
नवदश पाठ	:	षट्कर्म का संक्षिप्त परिचय
विंशति पाठ	:	यौगिक सूक्ष्म एवं स्थूल व्यायाम परिचय

योग प्रायोगिक - तृतीय क्रेडिट

एकविंशति पाठ	:	सूर्य नमस्कार
द्वाविंशति पाठ	:	आसन का सामान्य परिचय
त्रयोविंशति पाठ	:	खड़े होकर किए जाने वाले आसन
चतुर्विंशति पाठ	:	बैठकर किए जाने वाले आसन

पञ्चविंशति पाठ : उदर के बल किए जाने वाले आसन

षड् विंशति पाठ: पीठ के बल किए जाने वाले आसन

योग प्रायोगिक - चतुर्थ क्रेडिट

सप्तविंशति पाठ : प्राणायाम अर्थ, परिभाषा एवं भेद

अष्टाविंशति पाठ : नाडीशोधन प्राणायाम व अन्य भेद

नवविंशति पाठ : हस्त-मुद्रा-विज्ञान

त्रिंशत् पाठ : ॐ ध्यान का स्वरूप

प्राक्शास्त्री प्रथम वर्ष प्रथम सत्रार्द्ध (योग सैद्धान्तिक - प्रथम क्रेडिट)

प्रथम पाठ
योग का अर्थ एवं परिभाषा

पाठ संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 योग का अर्थ

1.4 योग की परिभाषा

बोधप्रश्न

1.5 ग्रन्थ का मूलपाठ

1.6 सारांश

1.7 शब्दावली

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

1.9 सहायक ग्रन्थ

1.10 बोध प्रश्नोत्तर

1.11 अभ्यास प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

योग प्राचीन भारतीय ऋषि मुनियों, तत्ववेत्ताओं द्वारा प्रतिपादित अनमोल ज्ञान विज्ञान से युक्त एक विशिष्ट पद्धति है। इस में मनुष्य मात्र का समग्र उत्थान, विकास एवं उत्कर्ष के लिए अनेकाविध उपाय-प्रयोग सन्नियोजित है। जीवन की प्रसुप्त, अविज्ञात व अजागृत शक्तियों का जागरण कर व्यक्तित्व को परम शिखर तक पहुँचाने की अपूर्व क्षमता योग के विविध साधन-सामग्रियों में विद्यमान है। अतः इसे मोक्ष साधन भी कहते हैं वस्तुतः योग एक जीवन पद्धति है, जीवन दर्शन है। यह जीवन जीने की सर्वश्रेष्ठ कला है।

1.2 उद्देश्य - इस पाठ के अध्ययन के पश्चात आप जान पायेंगे

- योग का अर्थ
- विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई योग की परिभाषा
- विभिन्न ग्रन्थों में वर्णित योग की परिभाषाट

1.3 योग का अर्थ

'युज्यते अनेन' इस व्युत्पत्ति के साथ युज् धातु से करण अर्थ में घञ् प्रत्यय करके योग शब्द निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ होता है, जोड़ना अर्थात् किसी भी वस्तु से अपने को जोड़ना या किसी कार्य में स्वयं को लगाना। पाणिनिगण पाठ में तीन 'युज्' धातुओं का पाठ मिलता हैं –

१) युज् समाधौ – दिवादिगणीय
२) युजिर् योगे – रुधादिगणीय
३) युज् संयमने – चुरादिगणीय

१) युज् समाधौ – दिवादिगणीय युज् धातु का अर्थ है, समाधि। समाधि का प्रकृति प्रत्यय अर्थ है, सम्यक् स्थापन। दूसरे अर्थ मे समाधि की सिद्धि के लिए जुड़ना।

२) युजिर् योगे – रुधादिगणीय युज् धातु का अर्थ है, जुड़ना, जोड़ना, मेल करना, संयोग करना अर्थात् इस दु:ख रूप संसार से वियोग तथा ईश्वर से संयोग का नाम योग है। भगवद्गीता में भी वर्णन मिलता है – **तं विद्यात् दुखंसंयोगवियोगं योग संज्ञितम्। (6/23)**

३) युज् संयमने – चुरादिगणीय युज् धातु का अर्थ है, संयमन अर्थात् मन का संयम अथवा मन का नियमन। मन को संयमित करना ही योग है।

इस प्रकार योग का अर्थ हुआ – योग साधनाओं को अपनाते हुए मन को नियन्त्रित कर, संयमित कर, आत्मा का परमात्मा से मिलन ही योग है।

1.4 योग की परिभाषा

भारतीय संस्कृति में योग विद्या का स्थान सर्वोपरि एवं विशिष्ट है। योग विद्या की गवेषणा करने वाले, अर्थ स्वरूप बताने वाले अनेक शास्त्रीय ग्रन्थ इस संस्कृति में भरे पड़े हैं। योग शब्द वेदों, उपनिषदों, गीता, एवं पुराणों आदि प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित होता आया है। भारतीय दर्शन में योग एक अति महत्वपूर्ण शब्द है तथा इसे अलग-अलग ढंग से परिभाषित किया गया है। जो निम्नलिखित है-

श्रीमद्भगवद्गीता में विभिन्न सन्दर्भों में निम्नलिखित तीन परिभाषाओं द्वारा योग को परिभाषित किया गया है।

योगस्थः कुरू कर्माणि संग त्व्यक्त्वा धनञ्जय |

सिद्धसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ।श्रीमद्भगवद्गीता-2/48

अर्थात् हे धनंजय। तू आसक्ति का त्याग करके सिद्ध असिद्धि में सम होकर योग में स्थित हुआ कर्मों को कर, क्योंकि समता को ही योग कहा जाता है।

इस प्रकार सुख-दुःख, मान-अपमान, सिद्धि-असिद्धि आदि विरोधी भावों में समान रहने को ही भगवान ने योग कहा है। अतः सुख में न अधिक प्रसन्न होना और दुख में न अधिक दुखी होना ही योग है।

बुद्धि युक्तो जहातीह उभे सुकृत दुष्कृते ।

तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसुकौशलम् ।। श्रीमद्भगवद्गीता-2/50

अर्थात्- सम बुद्धि युक्त पुरूष पुण्य और पाप दोनो को इसी लोक में त्याग देता है अर्थात उनसे मुक्त हो जाता है। इससे तू समत्व योग रूप में लग जा, यह समत्व रूप योग हीं कर्मों की कुशलता है अर्थात् कर्म बंधन से छूटने का उपाय है।

शुद्धि समता युक्त मनुष्य वर्तमान में ही पुण्य और पाप दोनों से रहित हो जाता है। अतः तू कर्म में लग जा क्योंकि कर्म की कुशलता ही योग हैं। यहाँ श्री कृष्ण ने प्रथम परिभाषा की पुष्टि में कहा है कि कर्मों में कुशलता अर्थात् निष्काम भाव फल की आशा न करते हुए कर्म करना ही कर्म योग है।

तं विद्यात् दुखंसंयोगवियोगं योग संज्ञितम् ।

स निश्चयेन योगतव्यो योगोऽनिर्विण्ण चेतसा ॥ (गीता 6/23)

अर्थात्- जो दुःख रूप संसार के संयोग से रहित है तथा जिसका नाम योग है उसको जानना चाहिए वह योग न उकताए हुए अर्थात् धैर्य और उत्साह युक्त चित्त से निश्चयपूर्वक करना कर्त्तव्य है। दुख के साथ वियोग एवं आनन्द के साथ संयोग ही योग है। अर्थात् दुख रूप संसार के संयोग से रहित है। इस योग को धैर्य और उत्साह के साथ चित्त से निश्चिय पूर्वक करना चाहिए।

ब्रह्म प्रकाशं ज्ञान योगस्त मै काचित्तता।

चित्त वृत्ति निरोधश्च जीव ब्रह्मात्मनोपरः ॥ (अग्नि पुराण 183/1/3)

अर्थात्- ज्ञान का प्रकाश चित्त पर पड़ने से चित्त की एकाग्रता ब्रह्म हो जाती है। जिससे जीव को ब्रह्म से मिलन होता है। चित्त की इस एकाग्रता को योग कहा गया है। यहाँ भी योग दर्शन की चित्त वृत्ति निरोध की परिभाषा का समर्थन हुआ है।

योग के ग्रन्थों में सबसे प्राचीन व प्रमाणिक ग्रन्थ महर्षि पतंजलि कृत योगसूत्र के प्रथम अध्याय **'समाधिपाद'** में योग को परिभाषित किया गया है - **योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः** । (पा. यो. सू. 1/2) अर्थात् : चित्त की वृत्तियों का निरोध होना ही योग है।

योग शब्द का यहाँ आशय समाधि से है, योग दर्शन में चित्त शब्द मन, बुद्धि, अहंकार तीनों का रूप है। प्राण वायु से नहीं चूंकि अनेक जन्मों के संस्कार चित्त में भरे पड़े हैं। इसलिए इसमें वृत्तियाँ उठती रहती है। चित्त हमेशा चलायमान रहता है जिस प्रकार जल में हवा ।

महर्षिव्यास के अनुसार योग का अर्थ – 'योगस्समाधि:' योग को समाधि बतलाया है, जिसका भाव यह है कि जीवात्मा इस उपलब्ध समाधि के द्वारा सच्चिदानन्द (सत्+चित्+आनन्द) स्वरूप ब्रह्म का साक्षात्कार करें ।

सांख्यशास्त्रानुसार – "पुंप्रकृत्योर्वियोगेऽपि योग इत्यभिधीयते ।" अर्थात् पुरुष-प्रकृति का वियोग ही योग है ।

कैवल्योपनिषद्केअनुसार – "श्रद्धाभक्ति ध्यान योगादवेहि ।" अर्थात् – श्रद्धा, भक्ति और ध्यान के द्वारा आत्मा को जानना योग है ।

"जीवन के सिद्धांतो को व्यवहार में लाने की जो कला या युक्ति है, उसी को योग कहते हैं। सांख्य का अर्थ 'सिद्धान्त', सिद्धान्त का अर्थ है 'शास्त्र' और योग का अर्थ है 'कला' । (विनोबा भावे, "गीता प्रवचन", पृ.26)

कैवल्य उपनिषद् में कहा गया है- 'श्रद्धाभक्तिध्यानयोगादवेहि ।' अर्थात् श्रद्धा भक्ति, ध्यान के द्वारा आत्मा का ज्ञान ही योग हैं ।

याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार - "संयोग योग इत्युक्तो जीवात्मा: परमात्मनो" अर्थात् "जीवात्मा और परमात्मा के मिलन को ही योग कहा जाता है" ।

कठोपनिषद् के अनुसार – यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह । बुद्धिश्चन विचेष्टेत तामाहुः परमां गतिम् । (कठोप 6/10) अर्थात् - " जब पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँमन के साथ स्थिर हो जाती हैं, ठहर जाती हैं और बुद्धि भी कोई चेष्टा नहीं करती हैं, अपितु निश्चल व निर्मल हो जाती है, उस अवस्था को परम गति कहते हैं ।

योगवशिष्ठ के अनुसार - "संसारोत्तरेण युक्तिर्योग शब्देन कथ्यते ।" अर्थात् इस संसार सागर से पार होने की युक्ति ही योग है ।

लिंग पुराण के अनुसार- 'चित्त की सभी वृत्तियों का निरोध हो जाना या उसका पूर्णतया समाप्त हो जाना ही योग है।

श्री राम कृष्ण परमहंस के अनुसार- 'परमात्मा की शाश्वत और अखण्ड ज्योति के साथ अपनी ज्योति को मिला देना ही योग है।'

महर्षि अरविन्द के अनुसार- 'जीवन के सिद्धांतों को व्यवहार में लाने की जो कला या युक्ति है वही योग है।'

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती- 'योग का तात्पर्य एक भाव का अनुभव अथवा अन्तर्निहित आत्म से तादात्म्य स्थापित करना है, यही एकता वास्तविकता से मन तथा पदार्थ के द्वैवादिता को समाहित करके प्राप्त होती है ।'

हठयोग प्रदीपिका में योग को समाधि कहा गया है यह समाधि जीवात्मा एवं परमात्मा की एकता से व सभी संकल्पों के नष्ट होने पर प्राप्त होती है अर्थात् जीवात्मा परमात्मा के मिलन से साधक के सभी संकल्प नष्ट हो जाते हैं और यही अवस्था समाधि या योग की अवस्था है ।

"केवलं राज योगाय हठविद्योपदिष्यते" अर्थात् मै इस हठविद्या का उपदेश केवल राजयोग की प्राप्ति के लिए कर रहा हूँ।

मन के प्रवाह से वर्तुलाकार गोल गोल लहरें उठती रहती है, ठीक उसी प्रकार चित्त के बाह्य विषयों के सम्पर्क में आने से हलचल या परिणाम उत्पन्न होते हैं, जिन्हें वृत्तियाँ कहते है। हमारी अन्दर की वासनाएँ वृत्तियों का रूप ले लेती है जिससे चित्त की चंचलता बनी रहती है। चित्त में उठने वाली वृत्तियों को अभ्यास द्वारा धीरे-धीरे अपने नियन्त्रण में कर लेना उन्हें पूर्ण रूप से रोकना निरोध है, यह सब योग के माध्यम से ही सम्भव है।

बोधप्रश्न

१) महर्षि पतञ्जलि ने योग शब्द का क्या अर्थ लिया है ?

२) योग दर्शन के रचनाकार कौन हैं ?

३) 'योग: कर्मसु कौशलम्' उक्त यह योग परिभाषा किस ग्रन्थ की है ?

४) हठयोग विद्या का उपदेश किसकी प्राप्ति के लिए दिया गया ?

५) सांख्यदर्शन के प्रवर्त्तक कौन है ?

६) 'संयोगयोग इत्युक्तो जीवात्मापरमात्मनो:' इति यह योग परिभाषा किस ग्रन्थ की है ?

1.5 ग्रन्थ का मूलपाठ

योगस्थः कुरू कर्माणि संग त्व्यक्त्वा धनञ्जय |

सिद्धसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ।श्रीमद्भगवद्गीता-2/48

बुद्धि युक्तो जहातीह उभे सुकृत दुष्कृते ।

तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसुकौशलम् ।। श्रीमद्भगवद्गीता-2/50

तं विद्यात् दुखंसंयोगवियोगं योग संज्ञितम् ।

स निश्चयेन योगतव्यो योगोऽनिर्विण्ण चेतसा ॥ (गीता 6/23)

ब्रह्म प्रकाशं ज्ञान योगस्त मै काचित्तता।

चित्त वृत्ति निरोधश्च जीव ब्रह्मात्मनोपरः ॥ (अग्नि पुराण 183/1/3)

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः । (पा. यो. सू. 1/2)

'योगस्समाधि:'

"पुंप्रकृत्योर्वियोगेऽपि योग इत्यभिधीयते ।"

"श्रद्धाभक्ति ध्यान योगादवेहि ।"

'श्रद्धाभक्तिध्यानयोगादवेहि ।'

"संयोग योग इत्युक्तो जीवात्मा: परमात्मनो"

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह ।

बुद्धिश्चन विचेष्टेत तामाहुः परमां गतिम् । (कठोप 6/10)

"संसारोत्तरेण युक्तिर्योग शब्देन कथ्यते ।"

1.6 शब्दावली

१)	धनञ्जय	:	अर्जुन
२)	समत्वम्	:	समता
३)	चेतसा	:	मन से
४)	उपदिष्यते	:	उपदेश किया जायेगा
५)	निरोध	:	निषेध करना, अवरोध करना
६)	उर्मय:	:	तरंगे, लहरें ।
७)	वर्तुलाकारा:	:	गोलाकार
८)	वृत्तय:	:	मन की वृत्तियाँ (प्रमाण,विपर्यय,विकल्प,निद्रा,स्मृति)
९)	ज्ञानेन्द्रियाणि	:	ज्ञान के साधन
१०)	परिणत	:	वस्तु के आकार का हो जाना
११)	संयमनम्	:	इन्द्रियों को वश में करना

1.7 सारांश

योग शब्द संस्कृत की युज् धातु से बना है । जिसका अर्थ है जुड़ना । जुड़ना एक ऐसी विद्या से जिससे की मनुष्य जीवन का सर्वांगीण विकास हो, तथा वह ब्रह्म विद्या की प्राप्ति या समाधि की प्राप्ति के लिए अग्रसित हो सकें । योग एक ऐसी जीवन जीने की कला है । जिससे मनुष्य अपने जन्म-जन्मान्तरों के कर्म संस्कारों का क्षय करके अपना सर्वांगीण विकास कर मोक्ष का अधिकारी बन सकता है । वेदों से लेकर पुराणों तक सर्वत्र योग की महिमा का गुणगान किया गया है । वही श्रीकृष्ण भगवान ने श्रीमद्भगवद्गीता में कर्मों की कुशलता के रूप में परिभाषित किया है । इस प्रकार यह योग विद्या प्राचीन ग्रन्थों में महत्त्वपूर्ण अंग माना गया है । इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात् आप योग का अर्थ व परिभाषाओं का महत्त्व जानकर प्राचीनतम योग विद्या से लाभान्वित होंगे ।

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

1 विज्ञानानन्द सरस्वती । (2003), योग विज्ञानयोग । निकेतन ट्रस्ट मुनि की रेति, ऋषिकेश ।

2 निरजनानन्द देवधर , (1994), योगदर्शन | श्री पंचदशनाम, परमहंस अलखवाड़ा, विहार ।

1.9 सहायक ग्रन्थ

1 कुमारी राज पाण्डेय । (2008), भारतीय योग परम्परा के विविध आयाम । राधा पब्लिकेशन, दिल्ली

2 व्यास महर्षि (2003), भगवदगीता । गीताप्रेसगोरखपुर ।

3 योगेन्द्र पुरूषार्थी (1999), वेदों में योग विद्या । यौगिक शोध संस्थान, हरिद्वार ।

4 मिश्र चन्द्र जगदीश (2010). भारतीय दर्शन। चौखम्भा सुर भारती प्रकाशन,वाराणसी।

1.10 बोध प्रश्नोत्तर

१) समाधि
२) महर्षि पतञ्जलि
३) भगवद्गीता (2/50)
४) राजयोग की प्राप्ति के लिए
५) महर्षि कपिल
६) याज्ञवल्क्य स्मृति

1.11 अभ्यास प्रश्न

प्रश्न 1- योग शब्द से आप क्या समझते हैं ? विद्वानों द्वारा दी गयी योग की परिभाषाओं का विस्तार से वर्णन करें ।

प्रश्न 2- योगश्चित्तवृत्ति निरोधः का विस्तार से वर्णन करें ?

प्रश्न 3- गीता के अनुसार योग को परिभाषित करें ?

प्रश्न 4- हठयोग प्रदीपिका के अनुसार योग की परिभाषा क्या हैं ?

प्रश्न 5- महर्षि अरविन्द घोष के अनुसार योग की परिभाषा स्पष्ट करें ।

द्वितीय पाठ
योग का इतिहास और परम्पराएँ

पाठ संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 योग की प्राचीनता एवं इतिहास

2.4 योग दर्शन का प्रमाण

2.4.1 हिरण्यगर्भ सम्बंधी ऐतिहासिक मान्यता

2.4.2 मध्ययुगीन पुरातात्विक प्रमाण

2.4.3 पुराणों की मान्यता के अनुसार

2.4.4 गीता में उपलब्ध प्रमाण

बोधप्रश्न

2.5 योग परम्पराएँ

2.6 योग की प्रमुख तीन परम्परा

2.6.1 ब्रह्मा (सृष्टिकर्ता)

2.6.2 विष्णु (पालन कर्ता)

2.6.3 शिव (संहार कर्ता)

बोधप्रश्न

2.7 ग्रन्थ का मूलपाठ

2.8 सारांश

2.9 शब्दावली

2.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

2.11 सहायक ग्रन्थ

2.12 बोध प्रश्नोत्तर

2.13 अभ्यास प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

योग की प्राचीनता के विषय में विद्वानों एवं इतिहासविदों के बीच विभिन्न मान्यताएँ प्रचलित हैं, वास्तव में योग विद्या का आरम्भ कब से हुआ? किसने किया? योग के विद्यार्थियों के लिये बहुत ही जिज्ञासा का विषय है। आरम्भ से लेकर आज तक योग विद्या के अनतर्गत कई शाखाओं का निर्माण हुआ तथा इसकी कई शाखाऐं अनेक रूपों में प्रचलित हुई और आज तक की उसकी परम्परा विद्यमान है। इस प्रक्रम की जानकारी हमें प्रस्तुत पाठ के अध्ययन से प्राप्त होगी।

2.2 उद्देश्य - इस पाठ के अध्ययन के बाद आप जान सकेंगे -

- ❖ योग की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं प्राचीनता
- ❖ योग के आदि प्रवर्तक हिरण्यगर्भ का परिचय
- ❖ योग की प्राचीन एवं प्रमुख परम्पराएँ
- ❖ योग की प्रमुख शाखाएँ

2.3 योग की प्राचीनता एवं इतिहास

योग की उत्पति कब हुई ? योग का आदिवक्ता या उपदेशक कौन है ? इस पर विद्वानों के अनेकानेक मत उपलब्ध हैं। सामान्यतः प्राचीन मतानुसार वेदों को प्राचीन भारतीय साहित्यों में मान्यता प्राप्त है। वेदों में भी योग का वर्णन मिलता है। यदि वेदों से योग की शुरूआत मानी जाये तो ये सत्य न होगा क्योंकि वेदों के मन्त्रों को मन्त्र दृष्टा ऋषियो-मुनियों ने ध्यान की उच्च अवस्था में ही देखा था। साथ ही जिस समय जो लिखा जाता है वह उस समय के वातावरण से प्रभावित होता है। अतः स्पष्ट है कि वेदों से पूर्व ही सृष्टि में योग किसी न किसी रूप में व्याप्त था। मन्त्र दृष्टा ऋषि-मुनि किसी न किसी रूप में योग का अभ्यास करते थे। जिससे स्पष्ट होता है कि योग की परम्परा वैदिक काल से भी प्राचीन है।

2.4 योग दर्शन का प्रमाण

पातंजलि द्वारा कृत पातंजल योग सूत्र को योग के क्षेत्र में प्राचीन और श्रेष्ठ मान्यता प्राप्त है। यदि इससे योग की परम्परा की शुरूआत मानें तो भी यह मान्यता सही न होगी क्योंकि पतंजलि ने अपने ग्रन्थ के प्रथम अध्याय के प्रथम सूत्र में ही कहा है कि 'अथ योगानुशासनम्' अर्थात् अब हम योग का अनुशासन पूर्वक अध्ययन प्रारम्भ करते हैं।

उपरोक्त सूत्र में प्रयुक्त अर्थ से स्पष्ट होता है कि योग की जो परम्परा पहले अव्यवस्थित रूप से चली आ रही थी उसे पतंजलि ने एक अनुशासन अर्थात् एक क्रमबद्धता प्रदान की और इस एक सुमान्य साधना परम्परा के रूप में प्रस्तुत किया। जिससे स्पष्ट होता है कि पतंजलि के काल से पूर्व भी योग का अस्तित्व विद्यमान था।

- ➢ अब प्रश्न उठता है कि योग की परम्परा आखिर प्रारम्भ कहाँ से हुई ?

2.4.1 हिरण्यगर्भ सम्बंधी ऐतिहासिक मान्यता

योग का आरम्भ एवं इतिहास की चर्चा जब भी की जाती है तो हिरण्यगर्भ का नाम अभिन्न रूप से। लिया जाता है। विभिन्न शास्त्रों ने भी योग के आदि प्रवर्तक हिरण्यगर्भ ही बताये गये हैं कुछ प्रमाण ऐसे हैं-

हिरण्यगर्भो योगस्यवक्ता नान्यः पुरातनः (याज्ञवल्क्य स्मृति 12/5)

अर्थात् : योग के आदिवक्ता या उपदेष्टा आचार्य हिरण्यगर्भ है उनसे पुरातन अन्य कोई नहीं है।

महाभारत में भी ऋषि व्यास ने इस मत से समानान्तर विचार व्यक्त किया है-

सांख्यान्य वक्ता कपिलः परमर्षि च उच्यते ।

हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः ॥ (महाभारत 2/394/65)

अर्थात् सांख्य शास्त्र के अदिवक्ता परमर्षि कपिल मुनि हैं और योगशास्त्र का वक्ता आचार्य हिरण्यगर्भ है । हिरण्यगर्भ से प्राचीन अन्य कोई योग के वक्ता नहीं है ।

विभिन्न स्थानों पर प्रयुक्त हिरण्यगर्भ क्या हैं, कौन हैं, इस पर अनेकों मान्यताएँ प्रचलित हैं।

हिरण्यगर्भ का शाब्दिक अर्थ है स्वर्ण बीज अर्थात स्वर्णमय आलोक का स्त्रोत तथा विश्वआत्मा, जिससे जगत की समस्त शक्तियों की उत्पत्ति हुई है, बाद में इसका अर्थ ब्रह्मा यानि जगत सृष्टा माना जाने लगा । अतः उपरोक्त वर्णित संदर्भों के कथनानुसार हिरण्यगर्भ के ही योग के सबसे प्रथम वक्ता होने की बात स्पष्ट होती है।

हिरण्यगर्भ कौन थे? इस विषय पर विभिन्न स्थानों पर इनके बारे में पृथक-पृथक परिचय मिलता है। इनमें से कुछ हिरण्यगर्भ का वर्णन इस प्रकार से है-

एक हिरण्यगर्भ का उल्लेख सूर्य के रूप में मिलता है जो कि तत्वरूप में और ऐतिहासिक व्यक्ति के रूप में भी है। लेकिन केवल ऐतिहासिक व्यक्ति के रूप में योग ग्रन्थ की रचना हो थी लेकिन यहाँ वर्णित हिरण्यगर्भ द्वारा किसी प्रकार की कोई योग सम्मत रचना नहीं है ।

दूसरा हिरण्यगर्भ महत तत्व के रूप में है, जो कि केवल जड़ तत्व के रूप में है । भौतिक अर्थ बोधक हिरण्यगर्भ द्वारा किसी भी योगशास्त्र की रचना सर्वथा असम्भव है ।

तीसरे हिरण्यगर्भ का प्रसंग अहितर्वन्ध्यु संहिता में महान योगी के रूप में मिलता है। इनके द्वारा रचित ग्रन्थों के योग सम्मत होने की सम्भावना तो है परन्तु इसका कोई प्रत्यक्ष प्रमाण आज उपलब्ध नहीं है ।

चौथे हिरण्यगर्भ का परिचय योग शिखोपनिषद् में कथित भूत भावन परम शिव का भक्त और शिष्य के रूप में मिलता है उन्होंने कोई योगशास्त्र बनाया हो तो ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता ।

पांचवे हिरण्यगर्भ का वर्णन उत्तम नामक मन्वन्तर के ऊर्जा ऋषि के पिता की संज्ञा से प्रसिद्ध है, योग सम्बंधी उनकी कोई रचना या कृति प्राप्त नहीं होती अतः उन्हें भी योग के आदिवक्ता नहीं माना जा सकता। वैदिक युग में और एक छठे हिरण्यगर्भ की चर्चा मिलती है जो कि हिरण्यगर्भ ऋषि परमेष्ठी प्रजापति के नवें पुत्र थे। इनके द्वारा दृष्ट्य 10 मन्त्रों का उल्लेख ऋग्वेद में वर्णित है। किन्तु इन सभी मंत्रों में योग सम्मत पदों का उल्लेख नहीं मिलता। अतएव इन्हें भी योग के आदिवक्ता नहीं कहा जा सकता है।

सातवें हिरण्यगर्भ प्रजापित ब्रह्माजी के रूप में उल्लेखित हैं। हिरण्यगर्भ का यह परिचय वास्तविक आदिवक्ता के रूप से अति निकटतम है। कारण यह है कि सृष्टि के आदिकाल में प्रादुर्भूत होने के कारण आदि ऋषि बड़े हैं और चारों वेदों के ज्ञाता भी वे ही थे।

प्रजापति ब्रह्मा जी ने ही सृष्टि के आदि में सृष्टि निर्माण के लिए सर्वप्रथम तप किया था जिसके फलस्वरूप जीव सृष्टि की रचना की थी। उनके द्वारा किया गया वह तप क्या था? वह तप योग का ही एक रूप तो था आदि ऋषि ब्रह्मा जी द्वारा रचित एक योग सम्मत ग्रन्थ भी उपलब्ध है। जिसका नाम ब्रह्म संहिता है। उक्त ब्रह्म संहिता के रचयिता प्रजापित ब्रह्मा जी ही थे अथवा न भी हो फिर भी सृष्टि के आदिकाल में प्राकट्यरूप में प्रथम ऋषि होने के कारण योग के आदि वक्ता मान लिया जाये तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। अतः इस प्रमाण से कहा जा सकता है कि योग का आरम्भ हिरण्यगर्भ नामक ब्रह्मा जी से हुआ है। योग के इतिहास को प्रकाशित करने वाले इन तथ्यों के अतिरिक्त कुछ अन्य तथ्य भी विद्वानों ने प्रस्तुत किये हैं।

2.4.2 मध्ययुगीन पुरातात्विक प्रमाण

एक तथ्य यह है कि योग विद्या का प्रारम्भ सैन्धव कालीन सभ्यता की देन है। यदि हम सिंधु कालीन सभ्यता पर दृष्टिपात करें तो पता चलता है कि मोहनजोदड़ों में जो धार्मिक अवशेष प्राप्त हुए हैं। उनसे प्राप्त विभिन्न पुरातात्विक मूर्तियाँ अवशेष रूप में प्राप्त हुई हैं। उनमें केवल माँ भगवती की ही नहीं बल्कि एक पुरूष देवता की प्रतिमा भी प्राप्त हुई है जो कि प्राचीनतम शिव का आदि स्वरूप प्रतीत होता है। इस प्रतीक के सम्बंध में सर जॉन मार्शल ने अपनी पुस्तक **मोहनजोदड़ों एण्ड द इण्डस सिविलाइजेशन** में स्पष्ट किया है कि मोहनजोदड़ों में उपलब्ध देवता की मूर्ति त्रिमुखी है। वह देवता एक ऊँचे पीठासन पर योग मुद्रा में बैठा है। उसके दोनों पैर इस प्रकार मुड़े हुए हैं कि सिद्धासन के समान एड़ी से एड़ी मिल रही है, अंगूठे नीचे की ओर मुड़े हुए हैं और हाथ घुटने के ऊपर आगे की ओर फैले हुए हैं।

इस प्रकार की आकृति योग में वर्णित ध्यान मुद्रा से मिलती-जुलती है इससे स्पष्ट होता है कि उस समय यौगिक मान्यताओं का प्रचलन किसी न किसी रूप में अवश्य रहा होगा। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि योग विद्या की परम्परा निश्चित रूप से मध्यकालीन सैन्धव सभ्यता से भी पूर्व प्रचलित थी।

2.4.3 पुराणों की मान्यता के अनुसार

पुराणों के विभिन्न प्रसंगों में एक तथ्य यह भी मिलता है कि सृष्टि के आदि काल में भगवान हिरण्यगर्भ ने सनकादिक एवं विवस्वान को परमात्म साक्षात्कार रूप एक ही सनातन योग का उपदेश दिया। अधिकारी भेद के कारण सनातन योग आगे बढ़कर ब्रह्म योग अथवा राजयोग एवं कर्मयोग इन दो शाखाओं के रूप में प्रचलित हुआ । इसी प्रकार महाभारत के एक प्रकरण में बताया गया है कि पवित्र अन्तःकरण वाले सनक, सनातन, सनन्दन, सनत कुमार, कपिल, आसुरि, पंचशिख, प्रभृति सर्वकर्म सन्यास रूप ब्रह्मयोग अथवा ज्ञानयोग के अनुयायी हुए । यही ब्रह्म योग कालान्तर में सांख्य योग, ज्ञान योग, अध्यात्म योग आदि नामों से प्रचलित हुआ ।

हिरण्यगर्भ द्वारा प्रवर्तित योग की दूसरी शाखा कर्म योग की परम्परा में ऐसे जिज्ञासु अनुयायी थे जो स्वकर्म के साथ-साथ आत्म कल्याण के मुमुक्षु भी थे ।

इस शाखा का मूल तात्पर्य यह है कि जो व्यक्ति कर्मों को सर्वथा नहीं त्याग सकता है वह कर्मों को ईश्वर में अर्पण करते हुए कर्म फलों से निरासक्त होकर समाहित चित्त से परमात्मा का साक्षात्कार कर सकता है । इस परम्परा के परिचायक रूप में एक प्रसंग छान्दोग्योपनिषद् में उल्लेखित है –

तद् एतत् ब्रह्मा प्रजापतये प्रजापतिर्मनवे मनुः प्रजाभ्यः ।

इस परम्परा से विकसित योग विद्या का उल्लेख फिर श्री कृष्ण के युग में गीता के माध्यम से प्रकाशित होता है ।

2.4.4 गीता में उपलब्ध प्रमाण

योग की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर एक अति प्रमाणिक विचार श्रीमद्भगवद् गीता में भी उपलब्ध है। योगेश्वर श्री कृष्ण जिज्ञासु अर्जुन के संशय को दूर करते हुए उसे एक प्रसंग में योग की प्राचीनता को इस प्रकार से समझाते हैं-

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ।
एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः ।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परन्तपः ॥
स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः ।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम् ।। (गीता 4/1-3)

अर्थात- इस अविनाशी योग को मैंने विवस्वान (सूर्य) के प्रति कहा, विवस्वान ने अपने पुत्र मनु से कहा था और मनु के अपने पुत्र राजा इक्ष्वाकु से कहा। हे परन्तप अर्जुन इस प्रकार परम्परा से प्राप्त इस योग को राजर्षियों द्वारा जाना गया किन्तु इसके बाद वह योग बहुत काल से इस पृथ्वी लोक में लुप्त हो गया । तू मेरा

प्रिय भक्त एवं सखा है इसलिए वही पुरातन योग आज मैंने तुझे बताया है, क्योंकि यह बड़ा ही उत्तम रहस्य है। अर्थात गुप्त रखने योग्य विषय है।

अतः उपरोक्त गीतोक्त कथन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि योग का आरम्भ सृष्टि के प्रारम्भ से ही था, जो कि समय-समय पर लुप्त होने के पश्चात् पुनः अवतार पुरूषों के द्वारा उद्घोषित होता रहा है।

बोधप्रश्न

१) 'हिरण्यगर्भो योगस्यवक्ता नान्य: पुरातन:' उक्त पंक्ति किस ग्रन्थ की हैं ?

२) 'हिरण्यगर्भ' का शाब्दिक अर्थ क्या है ?

३) 'मोहनजोदड़ो एण्ड द इण्डस सिविलाइजेशन' इस पुस्तक के लेखक कौन हैं ?

४) सांख्य योग, ज्ञान योग, अध्यात्म योग आदि नामों से कौन-सा योग प्रचलित हैं ?

५) श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार श्री कृष्ण ने योग के बारे में सर्वप्रथम किससे कहा ?

2.5 योग परम्पराएँ

भारतीय संस्कृति में योग की अनेक परम्पराओं की प्रतिष्ठा है। परम्पराओं का अनुसरण करने के लिये कोई भी स्वतन्त्र है। किन्तु यह उसकी पात्रता, संस्कार और संकल्प पर निर्भर होता है। भारतीय योग विद्या की महानता इसलिये है कि यह प्रत्येक व्यक्ति के लिये उसके अनुरूप पृथक-पृथक साधना पद्धति का वर्णन करती है। उपलब्ध योग साहित्यों के अध्ययन अनुशीलन के बाद विद्वानों ने योग की विभिन्न शाखाओं को तीन प्रमुख परम्पराओं के अन्दर समाविष्ट किया है। वैसे तो माना जाता है कि योग की दो ही परम्पराएँ हैं, एक है निगम द्वारा निर्दिष्ट वैदिक योग परम्परा और दूसरी है आगम द्वारा निर्दिष्ट तन्त्र की योग परम्परा।

अध्ययन सुविधा की दृष्टि से विभिन्न प्राचीन योग परम्पराओं को विद्वानों ने निम्न तीन परम्पराओं की धारणा के रूप में प्रस्तुत किया है। यह सर्वप्रचालित मान्यता है कि सृष्टि के आदिकाल में तीन शक्तियाँ मौजूद थीं और उनके कार्य सृजन, ललान-पालन और संहार करना बताया जाता है। ये तीन शक्तियाँ हैं ब्रह्मा, विष्णु और शिव। भारतीय आर्ष वाड. गमय के तत्व दर्शियों का मानना है कि इन तीन शक्तियों से अलग-अलग तीन प्रमुख योग परम्पराओं का आविर्भाव हुआ। जिसका प्रक्रम निम्नानुसार है

- ब्रह्मा (सृष्टिकर्ता)
- विष्णु (पालन कर्ता)
- शिव (संहार कर्ता)

2.6 योग की प्रमुख 'तीन' परम्पराएं

2.6.1 ब्रह्मा (सृष्टिकर्ता)

ब्रह्मा जी को सृष्टि का आदि पुरुष तथा राजपुरूष माना जाता है। इनसे जो योग उत्पन्न होता है वह है- राजयोग। ब्रह्मा द्वारा उद्भूत राजयोग परम्परा को सुव्यवस्थित रूप देने के लिए ब्रह्मा जी के अवतार के रूप में आने वाले प्रवर्तक हैं-पतंजलि। राजयोग की परम्परा के प्रतिष्ठापन तथा उन्नयन के लिए पतंजलि द्वारा रचित प्रमुख ग्रन्थ हैं पातंजलि योग सूत्र।

2.6.2 विष्णु (पालन कर्ता)

विष्णु समग्र वेदों के आदि प्रतीक है। वह वैदिक परम्परा के आदि प्रवर्तक भी हैं, इनसे जो उत्पन्न होता है वह है - वैदिक योग। विष्णु द्वारा उद्भूत वैदिक योग परम्परा को सुव्यवस्थित रूप देने के लिए विष्णु अवतार के रूप में आने वाले प्रवर्तक हैं श्री कृष्ण । वैदिक योग परम्परा प्रतिष्ठापन एवं निरन्तरता के लिए श्री कृष्ण द्वारा उपदिष्ट ग्रन्थ है - श्रीमद्भगवद्गीता ।

2.6.3 शिव (संहार कर्ता)

संहार कर्ता शिव योग की तृतीय परम्परा के आदि प्रणेता माने जाते हैं। योग के ग्रन्थों में उन्हें आदिनाथ की प्रतिष्ठा दी जाती है उनसे जो योग उत्पन्न होता है वह है - हठयोग । शिव द्वारा उद्भव योग की परम्परा को समुन्नत रूप देने के लिए शिव के अवतार के रूप में आने वाले प्रवर्तक है - गोरक्षनाथ । आदि नाथ शिव द्वारा प्रवर्तित हठ(तन्त्र) योग की परम्परा के प्रतिष्ठापन एवं उन्नयन के लिए गोरक्ष नाथ द्वारा विरचित ग्रन्थ है -

गोरक्षशतक, गोरक्ष पद्धति, गोरक्ष संहिता, योग बीज, सिद्ध सिद्धान्त पद्धति ।

अब यहाँ प्रश्न उठता है कि योग में वर्णित उपरोक्त शाखाओं के अतिरिक्त अन्य शाखायें जैसे कर्मयोग, भक्तियोग, मन्त्रयोग, आदि किस परम्परा के अधीन हैं? इसका सर्वसम्मत उत्तर तो नहीं है, लेकिन यह स्पष्ट होता है कि योग में जितनी भी योग साधनाओं की शाखा-प्रशाखाएँ प्रचलित हैं, इन तीन प्रमुख परम्पराओं के अनन्तर ही समाविष्ट है ।

जैसे- वैदिक योग की बात करें तो इस योग में विविध योग मार्ग की शाखाऐं कर्म ज्ञान और भक्ति योग स्वमेव समाविष्ट है ।

इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वैदिक योग के अलावा इन ज्ञान, कर्म और भक्ति तीनों शाखाओं का सम्बंध अन्य परम्पराओं से नहीं है, किन्तु वैदिक परम्परा इनके मूल में अवश्य है। जिस प्रकार हठयोग और

राजयोग की परम्परा में भी सूत्र व श्लोकों के रूप में परोक्ष रूप से वैदिक योग साधना के कुछ अंग समाविष्ट हैं तथा हठयोग की परम्परा के साथ तन्त्रयोग, लय योग, नादयोग, कुण्डलिनी योग जैसी शाखाएँ मौलिक रूप से समाविष्ट मानी जाती हैं। उसी प्रकार अन्य वैदिक और राजयोग की परम्परा में भी किसी न किसी रूप में हठयोग परम्परा के साधन समाविष्ट हैं। राजयोग की परम्परा के अन्तर्गत वर्णित अष्टांग योग, क्रिया योग, समाधि योग आदि प्रणाली का वैदिक और हठयोग की परम्परा में परोक्ष रूप से उल्लेख मिलता है। अतः हम कह सकते हैं कि योग की परम्परा पर प्रकाश डालने वाली कई मान्यताओं में से यह धारणा सबसे तर्कसम्मत और प्रमाणिक प्रतीत होती है।

2.7 ग्रन्थ का मूलपाठ

हिरण्यगर्भो योगस्यवक्ता नान्यः पुरातनः (याज्ञवल्क्य स्मृति 12/5)
सांख्यान्य वक्ता कपिलः परमर्षि च उच्यते।
हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः ॥ (महाभारत 2/394/65)
तद् एतत् ब्रह्मा प्रजापतये प्रजापतिर्मनवे मनुः प्रजाभ्यः।
इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्।
एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परन्तपः ॥
स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम् ।। (गीता 4/1-3)

बोधप्रश्न

६) योग की प्रमुख तीन परम्पराओं के नाम लिखों ?

७) ब्रह्मा जी से जो योग उत्पन्न हुआ, वह .....है।

८) राजयोग परम्परा को सुव्यवस्थित रूप देने के लिए ब्रह्मा जी के अवतार के रूप में आने वाले प्रवर्त्तक है।

९) विष्णु जी से जो योग उत्पन्न होता है, वह .....है।

१०) वैदिक योग परम्परा को सुव्यवस्थित रूप देने के लिए विष्णु अवतार के रूप में आने वाले प्रवर्त्तक है।

११) वैदिक योग परम्परा प्रतिष्ठापन एवं निरन्तरता के लिए श्री कृष्ण द्वारा उपदिष्ट ग्रन्थ कौनसा है ?

१२) शिव जी से जो योग उत्पन्न हुआ। वह ..... कहलाता है।

१३) हठयोग की परम्परा को समुन्नत रूप देने के लिए शिव के अवतार के रूप में आने वाले प्रवर्त्तक है।

2.8 सारांश

प्राचीन योग परम्पराओं को विद्वानों ने निम्न तीन परम्पराओं की धारणा के रूप में प्रस्तुत किया है। यह सर्वप्रचालित मान्यता है कि सृष्टि के आदिकाल में तीन शक्तियाँ मौजूद थीं और उनके कार्य सृजन, ललान-पालन और संहार करना बताया जाता है। ये तीन शक्तियाँ हैं ब्रह्मा, विष्णु और शिव।

योग विद्या वह ब्रहम विद्या है। जो सातवे हिरण्यगर्भ स्वयंभू ब्रहमा जी द्वारा प्रणीत है। वेदो में योग का विस्तृत वर्णन किया गया है। वेदो में वर्णित योग को ही सरल भाषा में उपनिषद में ही वर्णन किया गया है। स्मृति में, पुराणों में, दर्शन में योग का विस्तृत वर्णन मिलता है। दर्शन में समाधि की सिद्धि के लिए कहिं अभ्यास व कहिं यम, नियमो व आध्यात्म विधि के उपायो का वर्णन किया गया है ।

2.9 शब्दावली

१) वक्ता : बोलने वाला
२) पुरातन : प्राचीन
३) महत् : विशाल, बुद्धि
४) संहिता : अत्यन्त समीपता
५) ब्रह्मा : सृष्टि के रचयिता
६) विष्णु : सृष्टि के पालनकर्त्ता
७) शिव : सृष्टि के संहारकर्त्ता
८) आरण्यक : जंगल में लिखे गये ग्रन्थ
९) श्रुति : वेद

2.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. सरस्वती विज्ञानानन्द (2003), योग विज्ञान | योग निकेतन ट्रस्ट मुनि की रेति, ऋषिकेश।

2. निरजनानन्द (1994), योग दर्शन | श्री पंचदशनाम, परमहंस अलखवाड़ा, देवधर, विहार ।

2.11 सहायक ग्रन्थ

1. पाण्डेय राजकुमारी (2008), भारतीय योग परम्परा के विविध आयाम । राधा पब्लिकेशन, दिल्ली

2 व्यास महर्षि (2003), भगवदगीता। गीता प्रेस गोरखपुर।

3 योगेन्द्र पुरूषार्थी (1999), वेदो में योग विद्या । यौगिक शोध संस्थान, हरिद्वार।

4 मिश्र चन्द्र जगदीश (2010), भारतीय दर्शन। चौखम्भा सुर भारती प्रकाशन, वाराणसी। योगांक गीता प्रेस गोरखपुर।

5 पाण्डेय राजकुमारी (2008). भारतीय योग परम्परा के विविध आयाम। राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

2.12 बोध प्रश्नोत्तर

१) याज्ञवल्क्य स्मृति 12/5
२) स्वर्ण बीज
३) जोन मार्शल

४) ब्रह्म योग

५) विवस्वान

६) ब्रह्मा, विष्णु, महेश

७) राजयोग

८) पतञ्जलि

९) वैदिक योग

१०) श्रीकृष्ण भगवान

११) श्रीमद्भगवद्गीता

१२) हठयोग

१३) गोरक्षनाथ

2.13 अभ्यास प्रश्न

१) योग का इतिहास एवं प्राचीनता संबंधी तथ्यों पर संक्षिप्त प्रकाश डालिए ?

२) योग परम्पर के अन्तर्गत वर्णित हिरण्यगर्भ संबंधी विभिन्न मान्यताओं की चर्चा करें ?

३) श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार योग की प्राचीनता को समझाऐं ?

४) योग की प्रमुख तीन परम्पराओं के विषय में अपना तर्क प्रस्तुत करें ?

५) आपके विचार में योग कितना प्राचीन है और इसका प्रमाणिक इतिहास क्या है ? स्पष्ट करें।

तृतीय पाठ
योग भ्रान्तियाँ एवं समाधान

पाठ संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 योग भ्रान्ति

3.4 योग के प्रति भ्रान्त धारणाओं के स्रोत

3.5 योग की विशेषता एवं समाधान

बोधप्रश्न

3.6 ग्रन्थ का मूलपाठ

3.7 सारांश

3.8 शब्दावली

3.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

3.10 सहायक ग्रन्थ

3.11 बोध प्रश्नोत्तर

3.12 अभ्यास प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत पाठ में योग भ्रान्तियाँ एवं उनके समाधान को जानेंगे । विद्यार्थियों योग एक जीवन शैली है, जिसे अपनाकर मानव से माधव और नर से नारायण बन सकता है । योग एक वैज्ञानिक पद्धति है जिसे अपनाकर मनुष्य उत्तरोत्तर उत्कर्ष को प्राप्त कर सकता है । आज योग समग्र विश्व में व्याप्त हो चुका है और योग योग की वैज्ञानिकता भी सर्वविदित हो चुकी है । प्राचीन काल में योग एक धर्म के साथ जुड़ा माना जाता था परन्तु आज प्रत्येक व्यक्ति इसे स्वास्थ्य से जोड़कर देखता है । इतना सब कुछ होने के बावजूद, आज भी योग के प्रति बहुत सारी भ्रान्तियाँ समाज में व्याप्त है जिसका निराकरण करना बहुत आवश्यक है । इस पाठ में आप योग से सम्बन्धित भ्रान्तियाँ और उनके समाधान को समझेंगे -

3.2 उद्देश्य : प्रस्तुत पाठ आप जानेंगे –

- ❖ योग से सम्बन्धित प्रचलित भ्रान्तियाँ ।
- ❖ योग के प्रति भ्रान्त धारणाओं के स्रोत ।
- ❖ योग की विशेषता एवं समाधान ।
- ❖ योग की जीवन में उपयोगिता ।

3.3 योग भ्रान्ति (Misconceptions)

योग एक शाश्वत विज्ञान है, साधना पद्धति है। ब्रह्म द्वारा निर्दिष्ट ऋषियों, तपस्वियों तथा योगियों द्वारा बनी यह श्रेष्ठ विधा है। यह विशेष ज्ञान, जीवन के महत्त्वपूर्ण तथ्यों को दर्शाने तथा विभिन्न भौतिक व आध्यात्मिक तथ्यों को साकार करने वाला है। यह वह विज्ञान है, जिसके माध्यम से शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, सामाजिक व भावनात्मक स्तर पर सच्चे स्वरूप को प्राप्त किया जा सकता है ।

योग में प्रतिपादित सिद्धांत देश, समाज, काल तथा समय की सीमा से रहित होने के कारण सार्वदेशिक, सार्वजातिक, सार्वकालिक तथा सार्वसामयिक होने से सर्वथा, सर्वत्र सर्वोपयोगी है।

निम्न हेतु जीवन में योग की उपयोगिता है -

1) आध्यात्मिक साधना-मोक्ष, निर्वाण, कैवल्य, समाधि आदि के लिए।
2) पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिए।
3) रोगो की चिकित्सा के लिए।
4) शारीरिक अथवा मानसिक क्षमता बढ़ाने के लिए।
5) मनोकायिक रोगों के उपचार के लिए।
6) विद्यार्थियों की स्मरण शक्ति बढ़ाने के लिए।

3.4 योग के प्रति भ्रान्त धारणाओं के स्रोत

1) योग साधु संन्यासियों के लिए है तथा सामान्य जनों के लिए नहीं है।
2) आयु/जाति, निम्न / उच्च, स्वस्थ/अस्वस्थ, स्त्री/पुरुष आदि वर्गों संबंधी गलत धारणाएँ।
3) जादू टोना या चमत्कारों/सिद्धियोंसे सम्बन्धित हैं।
4) योग एक दर्शन है अथवा योग चिकित्सा है अथवा योग एक व्यायाम पद्धति है।
5) किसी विशेष क्षेत्र में क्षमता बढ़ाने / उन्नति के लिए जैसे: शिक्षा, खेल-कूद, सुन्दरता, ऑफिस, फौज, जेल, पुलिस, वकील, राजनीति, एग्जक्यूटिव, इंडस्ट्रीज आदि।
6) योग केवल शारीरिक, मानसिक अथवा आध्यात्मिक विधा है।
7) योग केवल शारीरिक/मानसिक थकावट दूर करने के लिए है।

योग के प्रति गलत धारणाओं के स्रोत

1) कही-सुनी, काल्पनिक, मनगढ़ंत बातें।

2) ऊपरी दिखावा या बाह्य आडम्बर।
3) सीमित परिभाषाएँ।
4) सीमित साम्प्रदायिक दृष्टिकोण।
5) योग के प्रति अधूरा दृष्टिकोण
6) योग के विषय में साध्य-साधन विवेक का अभाव।
7) योग के अङ्गागीभाव के प्रति अज्ञान।

3.5 योग की विशेषता एवं समाधान

1) सभी आयु, जाति, निम्न/उच्च, स्वस्थ/अस्वस्थ, स्त्री/पुरुष सभी वर्गों के लिए है।
2) विशेष साधन या उपकरणों तथा सहयोगी की आवश्यकता नहीं है। अतः कम खर्चीला तथा सभी के लिए उपयुक्त है।
3) इसके अभ्यास सरल तथा शरीर के सभी अङ्गों को व्यायाम, विशेष रूप से अन्दर के अंगों की शुद्धि करके तथा शारीरिक एवं मानसिक तनाव दूर कर मन को शान्ति एवं स्थिरता प्रदान करने वाले हैं।
4) किसी भी देश तथा मौसम के अनुकूल है।
5) इन अभ्यासों में शक्ति का व्यय कम तथा लाभ ज्यादा प्राप्त होता है।
6) ये अभ्यास रोगों से बचाव एवं कई रोगों पर नियंत्रण कर पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त करने में भी सहायक हैं।
7) ये अभ्यास पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त करके जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति हेतु शारीरिक एवं मानसिक क्षमता प्रदान करते हैं।
8) वस्तुतः योग तन को सुगठित, मन को नियन्त्रित और आत्मा को उद्भासित करता है।
9) यह सभी अभ्युत्थानों का सबसे आधार एवं सास्वत उपलब्धि का अक्षुण्य स्रोत है।
10) इसके नियमित अभ्यास से मनुष्य के सभी संशय दूर हो जाते हैं और अपने जीवन में चरम लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है।
11) अपनी ऊँचाई के चरम बिन्दु पर पहुँचकर योग आत्मा और परमात्मा के मिलन का अप्रतिम माध्यम बन जाता है।

बोधप्रश्न

१) आयु/जाति, निम्न/उच्च, स्वस्थ/अस्वस्थ, स्त्री/पुरुष आदि वर्गों के लिए योग है, यह एक .....है।
२) योग एक .....है।
३) योग शाश्वत विज्ञान है परन्तु सामाज में .....प्रचलित हैं।
४) .....किसी भी देश तथा मौसम के अनुकूल है।
५) शारीरिक एवं मानसिक तनाव दूर कर मन को शान्ति एवं स्थिरता प्रदान करने वाला .....है।

3.6 ग्रन्थ का मूलपाठ

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः । सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्तिन लिप्यते ॥ (गीता 5/7)

3.7 सारांश

योग मनुष्य को सभी प्रकार के आवरणों और विक्षेपों से सदा के लिए मुक्त करता हुआ ऐसा विशुद्ध अन्तःकरण वाला बना देता है, कि परमात्मा से उसका अभिन्न सम्बन्ध अपने आप स्थापित हो जाता है। गीता (5/7) में भगवान श्रीकृष्ण ने योग साधना को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करते हुए कहा है-

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः । सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्तिन लिप्यते ॥

अर्थात् योग से युक्त, विशुद्ध अन्तःकरण वाला, विजितात्मा, शरीरजयी, जितेन्द्रिय और सब भूतों में अपनी आत्मा को देखने वाला यथार्थ ज्ञानी हो जाता है। इस प्रकार स्थित हुआ पुरुष लोकसंग्रह के लिए कर्म करता हुआ भी उनसे लिप्त नहीं होता अर्थात् कर्मों से नहीं बँधता है।

योग एक घण्टे की साधना नही है बल्कि यह तो चौबीसों घन्टे की जाने वाली साधना है । जब साधक श्रद्धा पूर्वक नियमित अभ्यास करता है तो उसे सिद्धि प्राप्त होती है बल्कि वह सिद्धियाँ भौतिक है अत: योगी इसे विवेक से जानकर उसे भी त्याग देता है और अन्तिम पुरुषार्थ व कैवल्य की प्राप्ति के लिए आगे बढता रहता है । जिससे वह अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है । इसलिए आप सम्पूर्ण पाठ के अध्ययन के बाद जान चुकें होंगे कि योग के प्रति समाज में व्यापक भ्रान्तियाँ युक्ति संगत नहीं है अत: इनसे बचना चाहिए ।

3.8 शब्दावली

१) भ्रान्ति : मिथ्या ज्ञान

२) सार्वजनिक : सभी के लिए उपयोगी

३) निर्वाण : मोक्ष

४) आडम्बर : दिखावा, बाह्य प्रदर्शन

५) मनोकायिक : मन के विकृत होने पर शारीरिक रोग

3.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. विज्ञानानन्द सरस्वती (2003), योग विज्ञान | योग निकेतन ट्रस्ट मुनि की रेति, ऋषिकेश।

2. जगदीशचन्द्र मिश्र 2012, भारतीय दर्शन । चौखम्भा सुर भारती प्रकाशन, वाराणसी।

3. डा. अमृत लाल गुर्वेन्द्र, डा. गायत्री गुर्वेन्द्र (2020), योगाऽमृत । किताब महल, दरियागंज, नई दिल्ली

3.10 सहायक ग्रन्थ

1. पाण्डेय राजकुमारी (2008), भारतीय योग परम्परा के विविध आयाम । राधा पब्लिकेशन, दिल्ली

2 व्यास महर्षि (2003), भगवदगीता। गीता प्रेस गोरखपुर।

3 मुक्ति के चार सोपान - स्वामी दयानन्द सरस्वती

3.11 बोध प्रश्नोत्तर

१) योग प्रति भ्रान्ति।

२) विज्ञान/जीवन शैली/ जीवन कला।

३) योग भ्रान्ति।

४) योग।

५) योग।

3.12 अभ्यास प्रश्न

1. योग से सम्बन्धित भ्रान्तियाँ को सविस्तार परिभाषित कीजिए।
2. योग की भ्रान्तियों का समाधान क्या हैं ?
3. आधुनिक समय योग के प्रति समाज का क्या चिन्तन है ?
4. योग के प्रति गलत धारणाओं के स्रोत क्या-क्या हैं ? स्पष्ट कीजिए।
5. योग की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

चतुर्थ पाठ
योग का महत्त्व

पाठ संरचना

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 योग का लक्ष्य एवं उद्देश्य

4.4 शारीरिक महत्त्व

4.5 मानसिक महत्त्व

4.6 आध्यात्मिक महत्त्व

4.7 सामाजिक महत्त्व

4.8 आर्थिक महत्त्व

4.9 नैतिक महत्त्व

बोधप्रश्न

4.10 ग्रन्थ का मूलपाठ

4.11 सारांश

4.12 शब्दावली

4.13 सन्दर्भ ग्रन्थ

4.14 सहायक ग्रन्थ

4.15 बोध प्रश्नोत्तर

4.16 अभ्यास प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

इससे पहले के पाठ में आपने जाना- योग विषय में भ्रान्तियाँ एवं समाधान के बारे में, आप जानेंगे योग का महत्व जीवन के किन-किन आयामों पर है। वस्तुतः योग आज एक ऐसे विषय के रूप में प्रतिस्थापित हो रहा है जिसका प्रभाव मानव जीवन, परिवार एवं समाज के सभी पहलुओं पर अमिट रूप से सिद्ध हो रहा है। योग एक प्राचीन विद्या होते हुए भी इसकी नवीनता, मौलिकता एवं विशिष्टता सर्वथा मानव कल्याण के लिए चिर-परिचित है। मानव जीवन के कठिन से कठिन और दुष्कर समस्याओं का योग द्वारा निःसंदेह निराकरण किया जा सकता है। वर्तमान परिपेक्ष में हम देखते हैं कि विश्वभर में योग विद्या का विस्तार द्रुत गति से हो रहा है। समाज के प्रत्येक वर्ग के व्यक्ति योग को अपने जीवन में आत्मसात करने की अभिरूचि रख रहे हैं। आज योग का नाम ही स्वयं में एक बहुप्रतिष्ठित संज्ञा है इससे भी स्पष्ट होता है कि योग की महत्ता तथा उपयोगिता मानव

जीवन में कितनी महान है । इस इकाई में योग के विभिन्न महत्वपूर्ण पक्षों पर सविस्तार प्रकाश डाला जा रहा है।

4.2 उद्देश्य - इस पाठ के अध्ययन के बाद आपको ज्ञात होगा -

- ❖ योग का लक्ष्य एवं उद्देश्य
- ❖ वर्तमान समय में योग का महत्व
- ❖ योग का शारीरिक महत्व
- ❖ योग का मानसिक महत्व
- ❖ योग का आध्यात्मिक महत्त्व
- ❖ योग का सामाजिक महत्व
- ❖ योग का आर्थिक महत्व
- ❖ योग का नैतिक महत्त्व
- ❖ वर्तमान में व्याप्त विभिन्न समस्याओं के समाधान में योग का महत्व

4.3 योग का लक्ष्य एवं उद्देश्य

योग मनुष्य को सभी प्रकार के आवरणों और विक्षेपों से सदा के लिए मुक्त करता हुआ ऐसा विशुद्ध अन्तःकरण वाला बना देता है, कि परमात्मा से उसका अभिन्न सम्बन्ध अपने आप स्थापित हो जाता है। गीता (5/7) में भगवान श्रीकृष्ण ने योग साधना को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करते हुए कहा है-

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः |
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्तिन लिप्यते ॥

अर्थात् योग से युक्त, विशुद्ध अन्तःकरण वाला, विजितात्मा, शरीरजयी, जितेन्द्रिय और सब भूतों में अपनी आत्मा को देखने वाला यथार्थ ज्ञानी हो जाता है। इस प्रकार स्थित हुआ पुरुष लोकसंग्रह के लिए कर्म करता हुआ भी उनसे लिप्त नहीं होता अर्थात् कर्मों से नहीं बँधता है।

गोरक्ष संहिता में कहा गया है-

द्विजसेवित शाखस्य श्रुति कल्पतरोः फलम्।
शमन भवतापस्य योगं भजत सत्तमाः ॥

अर्थात् वेद रूपी कल्पवृक्ष के फल योगशास्त्र है। इस योगशास्त्र के सेवन से संसार के तीन प्रकार के ताप (आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक) का शमन होता है।

महर्षि पतञ्जलि कृत **अष्टांगयोग का उद्देश्य** शरीर शुद्धि के साथ-साथ चरित्र की शुद्धि का उपाय बताया गया है ।

1) यम-नियम हमारे चिन्तन, चरित्र और व्यवहार को शुद्ध सात्विक व निर्मल बनाते हैं। चारित्रिक स्वास्थ्य यम-नियम का मूल उद्देश्य है।
2) शारीरिक स्वास्थ्य आसन-प्राणायाम का उद्देश्य है।

3) प्रत्याहार का मूल उद्देश्य जीवन में संयम है। संयमित जीवन शैली प्रत्याहार द्वारा ही किया जा सकता है।
4) धारणा एवं ध्यान का उद्देश्य मानसिक स्वास्थ्य की प्राप्ति है। धारणा चित्त के बिखरावको रोक कर एक स्थान विशेष पर लगाना है, और अपने-अपने नियत लक्ष्य परध्यान केन्द्रित करना ध्यान का उद्देश्य है।
5) समाधि ध्यान की उत्कृष्ट अवस्था है, जिसके द्वारा आत्म साक्षात्कार प्राप्त किया जा सकता है। समाधि का उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति है, जो कि मनुष्य मात्र का परम लक्ष्य है।
6) महर्षि पतञ्जलि ने क्रियायोग का उद्देश्य कर्म, ज्ञान एवं भक्तियोग की प्राप्ति बताया है। साथ ही इसके द्वारा पञ्चक्लेशों का नाश भी बतलाया गया है।

4.4 शारीरिक महत्त्व - योग साधना का शारीरिक स्वास्थ्य में महत्वपूर्ण भूमिका है। योग के आठ अंगों में तीसरा, चौथा अंग आसन व प्राणायाम से शारीरिक स्वास्थ्य प्राप्त होता है। योगासनो से शारीरिक शक्तियों को विकसित किया जाता है। जिससे शरीर हृष्टपुष्ट बनता है। उससे अंग प्रत्यंग की कार्यक्षमता में वृद्धि होती है, तथा शरीर स्वस्थ व निरोग बनता है। आसन व प्राणायाम के द्वारा सभी अंग सुचारू रूप से कार्य करने लगते है, तथा अंतस्रावी तन्त्र प्रभावित होता हैं, तथा ग्रन्थियो के स्राव सन्तुलित होते है। जिससे शरीर स्वस्थ होता है। योग एक स्वस्थ जीवन जीने की कला है। जिसे अपनाने से सुव्यवस्थित जीवन हो जाता है व शरीरिक स्वास्थ्य प्राप्त होता है ।

श्वेताश्वतर उपनिषद में योग का शारीरिक महत्व इस प्रकार वर्णन किया गया है -

न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः
प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम् ।। **2/12**

अर्थात् जिसने योग रुपी अग्नि में अपने शरीर को तपा लिया उस मनुष्य के शरीर में न तो कोई रोग होता है, और न ही उसमे बुढ़ापे के लक्षण प्रकट होते है, और न ही असमय उसकी मृत्यु होती है।

ब्रह्मविद्योपनिषद् में कहा गया है योग के अभ्यासो के द्वारा जो भी श्रम या तप किया जाता है, वह कभी भी निरर्थक नहीं जाता है। सत्कारपूर्वक यत्नपूर्वक की हुयी साधना मनुष्य को तीनों तापो (दुःखों) से मुक्त करती है।

4.5 मानसिक महत्त्व - योग के द्वारा शारीरिक के साथ साथ मानसिक स्वास्थ्य को भी प्राप्त किया जा सकता है। आज के आधुनिक समाज में मानसिक रोगो की वृद्धि होती जा रही है। मानसिक रोग एक भयावहता का रूप लेते जा रहे है। जिनका निराकरण करने में आधुनिक विज्ञान असमर्थ है। इस तनाव जन्य परिस्थितियो और रोगों से निपटने के लिए योगाभ्यास एक सफल व कारगर चिकित्सा पद्धति है। जिसके द्वारा सम्पूर्ण मानसिक स्वास्थ्य प्राप्त किया जाता है। योग द्वारा चित्त की वृत्तियों पर अंकुश लगाया जाता है। मन की चंचलता को कम कर मानसिक एकाग्रता प्राप्त की जा सकती है। बच्चों के मानसिक विकास की वृद्धि हेतु प्राणायाम के अभ्यास आवश्यक है। स्मरण शक्ति के वृद्धि कर प्रज्ञा का प्रकाश योगाभ्यास द्वारा सम्भव है।

मानसिक रोग मन से उपजते है। यदि मन स्वस्थ हो तो शरीर भी स्वस्थ रहता है। हमारे मन शरीर में धनिष्ठ सम्बन्ध है, मन शरीर को प्रभावित करता है। मन में विषाद होने की स्थिति में शरीर दुर्बल हो जाता है।

वही यदि शरीर में रोग होने की स्थिति में मानसिक रोग उत्पन्न होते है। महर्षि पतंजलि ने योग साधना के अन्तर्गत ऐसी चित्त प्रसादन की साधना बतायी है, जिससे हमारा मन निर्मल होता है। योगाभ्यास से कुविचार समाप्त होकर सुविचारो का उदय होता है। मनुष्य उर्ध्वरेता यानि ऊँची सोच वाला हो जाता है। मानसिक एकाग्रता की प्राप्ति होती है, तथा जीवन तनाव रहित हो कर, असीम मानसिक शक्ति की प्राप्ति होती है।

4.6 आध्यात्मिक महत्त्व - मनुष्य जीवन का मुख्य उद्देश्य है, मोक्ष की प्राप्ति । इस महान लक्ष्य की प्राप्ति का माध्यम हमारा मन है। यह मन ही है, जो कि बन्धन और मोक्ष का कारण है। जैसा की शास्त्रों में वर्णित है -

'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः ।'

अर्थात् मन ही बन्धन और मोक्ष का कारण है। इसलिए योग साधना में मन को ईश्वरोन्मुख बना कर तत्वज्ञान की प्राप्ति की जा सकती है। योग के द्वारा अनेको जन्मों के संस्कारों द्वारा मलिन हुए चित्त का निर्मल का आत्मा के यर्थाथ स्वरूप का ज्ञान कराया जाता है। योग युक्त होते ही हमारी इन्द्रियॉ जो कि स्वभाव से ही चंचल है, वह अर्न्तमुखी होने लगती है। योग साधना के अभ्यास से दिव्यदृष्टि की प्राप्ति होती है, और इस योग दृष्टि के द्वारा ही सृष्टि के गूढ़तम रहस्यों को उजागर किया जा सकता है। इस योग साधना द्वारा तत्वदर्शन, आत्मदर्शन, अतीन्द्रिय दर्शन, दिव्यदर्शन व ब्रहमसाक्षत्कार किया जाता है। अनेको ग्रन्थों में जिनका वर्णन मिलता है। घेरण्ड संहिता में योग के महत्व को निम्न प्रकार से वर्णन किया गया है -

अभ्यासात्कादिषर्णामां यथाशास्त्राणि बोधयेत् ।
तथा योगं समासाद्य तत्वज्ञानं च लभ्यते ।। 1 /5

जिस प्रकार 'क' 'ख' अक्षारारम्भ का अभ्यास करते-करते शास्त्र का विद्वान बना जाता है । उसी प्रकार योग का अभ्यास करते-करते तत्व ज्ञान प्राप्त हो जाता है। योग वस्तुतः पुरूषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति का साधन है। मोक्ष पद को प्राप्त करने का श्रेष्ठ एवं सर्वोत्तम साधन है। ऐसा शास्त्रों द्वारा सिद्ध हो चुका है।

4.7 सामाजिक महत्व - किसी भी समाज के उत्थान स्वस्थ व सुसंस्कारिक परिवार की अहम भूमिका होती है। स्वस्थ एवं सुसंस्कारित परिवार से ही एक आदर्श समाज की स्थापना होती है। इस आदर्श समाज की स्थापना में योग की भूमिका महत्वपूर्ण है। योग मनुष्य को शारीरिक व मानसिक रूप से स्वस्थ बनाता है, और एक स्वस्थ व्यक्ति ही स्वस्थ समाज का निर्माण कर सकता है। आधुनिक समाज में मनुष्य धन कमाने तथा भौतिक संसाधनो को वटोरने तथा विलासिता पूर्ण जीवन विता रहा है। प्रतिस्पर्धा व उच्चतम चाह के लिए वह अनैतिक कार्यों को करता जा रहा है। नकारात्मक चिन्तन को प्रश्रय मिल रहा है। जिससे सामाजिक कुरीतियों या बुराईयों को बड़ावा मिल रहा है। नकारात्मक चिन्तन से अनेको शारीरिक व मानसिक रोग उत्पन्न होते है। योग के अन्तर्गत प्राणायाम का व आसनो का अभ्यास शारीरिक व मानसिक रोगों का निवारण कर उर्ध्वरेता यानि की ऊँची सोच वाला हो जाता है। विचार उच्च हो जाते है। जिसका सीधा प्रभाव समाज पर पड़ता है। ज्ञानयोग, कर्मयोग व भक्ति जैसे साधन हमारे समाज पर सीधा प्रभाव डालते है। कर्म, भक्ति, ज्ञान का समन्वय जीवन को उच्च बनाता

है। समाज को रचनात्मकता तथा भक्तिमय दिशा प्रदान करता है, जिससे मनुष्य के कर्मों में कुशलता विचारों में उच्चता व विवेकज्ञान की प्राप्ति होती है। कर्मों में कुशलता तभी आती है, जब भक्ति के द्वारा विवेकज्ञान की प्राप्ति होती है। तथा कर्म निष्काम भाव से होने लगते है। और इस प्रकार निष्काम भाव से कर्म की प्रेरणा नैतिक मूल्यों की प्रेरणा सत्य अहिंसा की प्रेरणा योग द्वारा मिलती है। जिससे आदर्श समाज की स्थापना की जा सकती है।

4.8 आर्थिक महत्व - मानव जीवन में आर्थिक स्तर और योग विद्या का सीधा सम्बन्ध कहा जा सकता है। मनुष्य जीवन के चार पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन पुरुषार्थ के मूल में आरोग्य की प्राप्ति कर धर्म के साथ-साथ अर्थ का उपार्जन किया जा सकता है । एक निरोगी मनुष्य, स्वस्थ मनुष्य ही अपने आय के साधनो का विकास कर सकता है, और परिश्रम कर अपनी आय को बड़ा सकता है।

यौगिक अभ्यास के अन्तर्गत कर्मयोग निरन्तर कर्म करने की प्रेरणा देता है। जिससे कर्मयोगी बन मनुष्य अपने व्यवसाय को विस्तृत कर आय अधिक उपार्जित कर सकता है। यौगिक अभ्यास से कार्यक्षमता विकसित कर बड़े-बड़े उद्योगो के अन्तर्गत कार्यकरने वाले श्रमिको कर्मचारियो कार्यकुशलता व कार्यक्षमता को बड़ाया जा सकता है। जिससे आर्थिक क्षेत्र में लाभ व उत्पादकता में वृद्धि की जा सकती है। शरीर में रोग होने की स्थिति में मनुष्य का आर्थिक स्तर प्रभावित होता है। रोगोपचार में होने वाला व्यय व इसके दुष्प्रभाव शारीरिक व मानसिक रुप से भी प्रभावित करते है। और कार्यक्षमता भी प्रभावित होती है। योगाभ्यास के सतत् अभ्यास से मानसिक एकाग्रता तथा प्रतिरोधी क्षमता वृद्धि होती है। जीवनी शक्ति प्रबल होती है। जिसमें आर्थिक सुसम्पनता लायी जा सकती है।

4.9 नैतिक महत्व - योग व्यक्ति को नैतिक मूल्य सद्गुणों को विकसित करन में सहायक है। योग साधना द्वारा इन्द्रिय संयम कर नैतिक व सद्विचारो का और आदतों को विकसित किया जा सकता है। योग के अन्तर्गत यदि हम अष्टॉग योग की बात करे तो देखेगे कि इसके व्यवहारिक व चिकित्सकीय पक्ष है। अष्टांग योग के अन्तर्गत यम (सत्य,अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रहमचर्य) और नियम (शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्राणिधान) हमारे व्यवहार की शुद्धि करते है, व नैतिक मूल्यो को विकसित करते है। आधुनिक शिक्षा प्रणाली में प्रचलित नैतिक शिक्षा बालको में नैतिक गुणों को विकसित नहीं कर पाती हैं। जबकि योगानुष्ठान के द्वारा बालक व सभी आयु वर्ग के व्यक्ति में नैतिक गुण विकसित किये जा सकते है। योगानुष्ठान के द्वारा मन की शुद्धि होती है। शरीर की शुद्धि होती है। योगानुष्ठान करने वाले साधक की बुद्धि विकारो से रहित हो जाती है। तथा विवेक ज्ञान की प्राप्ति होती हैं। सही गलत का ज्ञान होने लगता है, और इस प्रकार मनुष्य में नैतिक गुणो को विकसित करने में योग की अपनी अहम भूमिका है।

बोधप्रश्न

१) योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा ... कुर्वन्तिन लिप्यते ॥ उक्त किस ग्रन्थ का श्लोक हैं ?

२) योगशास्त्र के सेवन से संसार के तीन प्रकार के ताप .....का शमन होता है।

३) .....हमारे चिन्तन, चरित्र और व्यवहार को शुद्ध सात्विक व निर्मल बनाते हैं।

४) मनुष्य जीवन के चार पुरुषार्थ कौनसे हैं ?

५) शारीरिक, मानसिक, सामाजिक व आध्यात्मिक उन्नति .....द्वारा सम्भव हैं ।

4.10 ग्रन्थ का मूलपाठ

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः |
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्तिन लिप्यते ॥ (गीता 5/7)
द्विजसेवित शाखस्य श्रुति कस्पतरोः फलम्।
शमन भवतापस्य योगं भजत सत्तमाः ॥ (गोरक्ष संहिता)
न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः
प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम् ।। (श्वेताश्वतरोपनिषद् 2/12)
मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः ।
अभ्यासात्कादिषर्णामां यथाशास्त्राणि बोधयेत् ।
तथा योगं समासाद्य तत्वज्ञानं च लभ्यते ।। (घेरण्ड संहिता 1 /5)
योगत्परं तरंपूण्यं योगात्परंतरं शिवं ।
योगात्परं तरंशक्तिं योगात्परंतरं न ही ।। (योगोपनिषद्)
तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपिमतोऽधिकः ।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जनः ।। गीता 6 / 46

4.11 सारांश - योग के अनन्त प्रकार के महत्वों पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट होता है कि योग वास्तव में एक ऐसी क्रिया पद्धति है जो हमारे अपने जीवन के हर एक पक्ष पर गहराई से प्रभाव डालती है। योग में वर्णित अनेकों साधनाऐं क्रियाऐं हमें उत्कृष्ट जीवन की ओर अभिप्रेरित करती हैं। वर्तमान समय में तो योग की महत्ता और अधिक अपरिहार्य नजर आती है। क्योंकि इस समय सांस्कृतिक, भौगोलिक, आर्थिक और राजनैतिक परिस्थितियों में कई तरह के परिवर्तन घटित हो रहे हैं। ऐसी घटनाओं में हमें संतुलित और स्वस्थ जीवन जीने का संदेश केवल योगविज्ञान ही देता है । योग शास्त्रों में उल्लेख है कि योग से बढ़कर कोई दूसरा कल्याण कारक साधना नहीं है। **योगोपनिषद** का उद्घोष है

योगत्परं तरंपूण्यं योगात्परंतरं शिवं ।
योगात्परं तरंशक्तिं योगात्परंतरं न ही ।।

अर्थात् योग के समान कोई पुण्य नहीं, योग के समान कोई कल्याणकारी साधन नही योग के समान कोई शक्ति नहीं और योग से बढ़कर कुछ भी नहीं है । वास्तव में योग ही जीव का सबसे बड़ा आश्रय है ।

योग की महत्ता स्वयं सिद्ध हैं, तथा प्राचीन काल में भी योग महत्ता व लोक प्रियता का वर्णन श्रीमद्भगवद् गीता में श्रीकृष्ण ने इस प्रकार किया है। योग के उत्कर्ष का वर्णन इसमे श्रीकृष्ण ने किया है

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपिमतोऽधिकः ।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जनः ।। गीता 6 / 46

अर्थात् योगी तपस्वियों से श्रेष्ठ है, और केवल शास्त्रो के जानने वाले अनुभव रहित ज्ञानियो से भी श्रेष्ठ माना जाता है। कर्म काण्डियो से भी योगी श्रेष्ठ है। ऐसा ज्ञान इसलिए हे अर्जुन ! तू योगी बन । शास्त्रों के ज्ञाता से तप से योगी को श्रेष्ठ बताया गया है। अत इस योग विद्या का अनुसरण कर मनुष्य जीवन का मुख्य उद्धेश्य मोक्ष को प्राप्त किया जा सकता है।

4.12 शब्दावली

१) जरा	:	बुढापा
२) संयम	:	धैर्य
३) मोक्ष	:	मुक्ति
४) प्रसादन	:	शुद्धि
५) उर्ध्वरेता	:	सीधा खड़ा होना, उन्नत
६) आधिदैविक	:	यक्ष, देवादि से होने वाला (दु:ख या कष्ट)
७) आधिभौतिक	:	पंचभूतों से सम्बन्ध, सांसारिक
८) आध्यात्मिक	:	मन से सम्बन्ध रखने वाला
९) जितेन्द्रिय	:	जिसने इन्द्रियों को जीत लिया हो

4.13 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. सरस्वती विज्ञानानन्द (2003), योग विज्ञान | योग निकेतन ट्रस्ट मुनि की रेति, ऋषिकेश।

2. निरजनानन्द (1994), योग दर्शन | श्री पंचदशनाम, परमहंस अलखवाड़ा, देवधर, विहार ।

4.14 सहायक ग्रन्थ

1. पाण्डेय राजकुमारी (2008), भारतीय योग परम्परा के विविध आयाम । राधा पब्लिकेशन, दिल्ली

2 व्यास महर्षि (2003), भगवदगीता। गीता प्रेस गोरखपुर।

3 योगेन्द्र पुरूषार्थी (1999), वेदो में योग विद्या । यौगिक शोध संस्थान, हरिद्वार।

4 मिश्र चन्द्र जगदीश (2010), भारतीय दर्शन। चौखम्भा सुर भारती प्रकाशन, वाराणसी। योगांक गीता प्रेस गोरखपुर।

5 पाण्डेय राजकुमारी (2008). भारतीय योग परम्परा के विविध आयाम। राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

4.15 बोध प्रश्नोत्तर

१) गीता 5/7 ।

२) आधिदैविक, आधिभौतिक, आध्यात्मिक ।

३) यम-नियम ।

४) धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष ।

५) योग ।

4.16 अभ्यास प्रश्न

1) वर्तमान समय में योग के व्यवहारिक महत्व पर प्रकाश डालें ?

2) व्यक्तिगत जीवन में योग का क्या महत्व है ?

3) आध्यात्मिक मार्ग में आगे बढ़ने वालों के लिए योग साधना किस प्रकार सहायक है बतायें ?

4) आर्थिक क्षेत्र में योग के महत्व पर विस्तार से प्रकाश डालिये ?

5) योग का नैतिक महत्व पर टिप्पणी लिखें ?

पञ्चम पाठ

योग दर्शन का स्वरूप

पाठ संरचना

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 पातंजल योग दर्शन की ऐतिहासिकता

5.4 योगभाष्यकार व्यास

5.5 योग सूत्र का परिचय

5.5.1 समाधि पाद

5.5.2 साधन पाद

5.5.3 विभूति पाद

5.5.4 कैवल्य पाद

बोधप्रश्न

5.6 ग्रन्थ का मूलपाठ

5.7 सारांश

5.8 शब्दावली

5.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

5.10 सहायक ग्रन्थ

5.11 बोध प्रश्नोत्तर

5.12 अभ्यास प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

विविध भारतीय दर्शनों के बीच योगदर्शन का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। योग का स्वरूप अत्यंत व्यापक है परंतु इसकी मौलिक अवधारणा दार्शनिक एवं आध्यात्मिक है। ऐतिहासिक दृष्टि से योग विज्ञान का विकास कई खण्डों में हुआ है, जो प्राचीन उपनिषदों, श्रीमद्भगवद्गीता तथा पातंजलयोग सूत्र में निहित योग के आधारभूत ज्ञान से लेकर तदनन्तर कालीन हिन्दू, जैन, बौद्ध, सूफी तथा सिक्ख आदि धर्मों के दार्शनिक विचारकों के माध्यम से विविध रूप में विकसित होता हुआ योग का ज्ञान आधुनिक काल में स्वामी विवेकानन्द, श्री अरविन्द, महात्मा गांधी आदि विचारकों के प्रयास के स्वरूप में दिखाई देता है। वस्तुतः योग भारतीय दर्शन का सार है। प्रस्तुत अध्याय में योग दर्शन के स्वरूप के संदर्भ में अध्ययन करेंगे।

5.2 उद्देश्य - प्रस्तुत पाठ में आप जानेंगे -

- ❖ पातञ्जलयोग दर्शन की ऐतिहासिकता
- ❖ योग दर्शन की महत्ता
- ❖ योग दर्शन के अध्याय का संक्षिप्त परिचय
- ❖ विभिन्न अध्यायों में वर्णित विषय का सूत्र-वर्गीकरण

5.3 पातंजल योग दर्शन की ऐतिहासिकता

यह एक सुविदित तथ्य है कि भारतीय दर्शन का चरम लक्ष्य प्राणियों को त्रिविध दुःखों से सदा के लिये छुटकारा दिलाना ही है। दुःखों की यह आत्यंतिक निवृत्ति मुक्ति, मोक्ष, कैवल्य, अपवर्ग, निःश्रेयस्, निर्वाण और परमपद इत्यादि पदों से अभिहित की गयी है। इसकी सिद्धि के लिए प्रायः सभी भारतीय दर्शन (चार्वाकदर्शन और मीमांसा के अतिरिक्त) पदार्थों के शुद्ध ज्ञान को किसी न किसी प्रकार से अपरिहार्य उपाय मानते हैं। श्रुतियों ने भी **'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः'** का तथ्य स्वीकृत किया है। पदार्थों के इस शुद्धज्ञान को विभिन्न दर्शनों में तत्वज्ञान, सम्यक्ज्ञान, तत्वसाक्षात्कार, परमज्ञान, आत्मज्ञान, और विवेकख्याति इत्यादि नाम दिये गये हैं। इस शुद्ध ज्ञान का एक रूप तो वह है, जो बुद्धि की शुद्ध सात्त्विक वृत्ति के द्वारा प्राप्त किया जाता है और दूसरा तथा उत्तम रूप वह है, जो वृत्तिहीन स्थिति में आत्मा का अपरोक्ष अनुभव होता है। इनमें से प्रथम प्रकार का तत्वज्ञान सांख्ययोग में 'विवेक-ख्याति' के नाम से प्रसिद्ध है और द्वितीय प्रकार का तत्वदर्शन योगशास्त्र में **'असम्प्रज्ञात योग'** के नाम से विख्यात है। दोनों प्रकार के शुद्ध ज्ञान को प्राप्त करने की प्रक्रिया बड़ी जटिल है। इस उभयस्तरीय प्रक्रिया का रचनात्मक स्वरूप ही योग-दर्शन में वर्णित है।

योगदर्शन, साधकों के लिए परम उपयोगी शास्त्र है, इसमें अन्य दर्शनों की भांति खण्डन- मण्डन के बिना सरलतापूर्वक बहुत ही कम शब्दों में योग के सिद्धान्त का निरूपण किया गया है। इस ग्रन्थ पर अब तक संस्कृत, हिन्दी और अलग-अलग भाषाओं में बहुत से भाष्य और टीकाएँ लिखी जा चुकी हैं। भोजवृत्ति और व्यास भाष्य के अनुवाद भी हिंदी भाषा में कई स्थानों से प्रकाशित हो चुके हैं। इसके अतिरिक्त **'पातंजलयोग-प्रदीप'** नामक ग्रन्थ स्वामी ओमानन्द जी का लिखा हुआ भी प्रकाशित हो चुका है, इसमें व्यासभाष्य और भोजवृत्ति के अतिरिक्त अन्य योग विषयक शास्त्रों के भी बहुत से प्रमाण संग्रह करके एवं उपनिषद् और श्रीमद्भगवद्गीता आदि सद्ग्रन्थों तथा दूसरे दर्शनों के साथ भी समन्वय करके ग्रन्थ को बहुत ही उपयोगी बनाया गया है।

5.4 योगभाष्यकार व्यास

योगशास्त्र के इतिहास में पतंजलि के पश्चात् जिस कृति का नाम सर्वाधिक प्रसिद्ध है, वह है- व्यास द्वारा रचित व्यास भाष्य। अध्येत्ताओं की दृष्टि में योगसूत्रों की भांति योगभाष्य भी अतीव महत्वपूर्ण एवं प्रामाणिक कृति है। योग दर्शन का शास्त्रीय तथा व्यावहारिक उभयविध स्वरूप-निरूपण योगभाष्य के आधार पर ही किया जाता है। इस भाष्य की प्रसिद्धि 'योगभाष्य', 'पातंजलभाष्य' और 'सांख्यप्रवचनभाष्य' आदि नामों से है।

5.5 योग सूत्र का परिचय

इसमें चार पाद व सूत्र संख्या हैं- 1. समाधिपाद = 51, 2.साधनपाद = 55, 3. विभूतिपाद = 55, 4. कैवल्यपाद = 34 । चारों पादों में 195 सूत्र हैं । इन सभी का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है-

5.5.1 समाधि पाद

पहले पाद में योग के लक्षण, स्वरूप और उसकी प्राप्ति के उपायों का वर्णन करते हुए चित्त की वृत्तियों के पाँच भेद और उनके लक्षण बताये गये हैं। वहाँ सूत्रकार ने निद्रा को भी चित्त की वृत्ति विशेष के अन्तर्गत माना है (यो.सू. 1/10), तथा विपर्यय वृत्ति का लक्षण करते समय उसे मिथ्या ज्ञान बताया गया है। अतः साधारण तौर पर यही समझ में आता है कि दूसरे पाद में 'अविद्या' के नाम से जिस प्रधान क्लेश का वर्णन किया गया है (यो.सू.2/4), वह, और चित्त की विपर्ययवृत्ति- दोनों एक ही है। परंतु गम्भीरतापूर्वक विचार करने पर यह बात ठीक नहीं मालूम होती है। दृष्टा और दर्शन की एकतारूप अस्मिता-क्लेश के कारण का नाम 'अविद्या' है।

प्रधानतया योग के तीन भेद माने गये हैं- एक सविकल्प, दूसरा निर्विकल्प और तीसरा निर्बीज। इस पाद में निर्बीज समाधि का उपाय प्रधानतया पर वैराग्य को बताकर (यो.सू. 1/18) उसके बाद दूसरा सरल उपाय ईश्वर की शरणागति को बतलाया है (यो.सू. 1/23), श्रद्धालु आस्तिक साधकों के लिए यह बड़ा ही उपयोगी है।

5.5.2 साधन पाद

इस दूसरे पाद में अविद्यादि पाँच क्लेशों को समस्त दुःखों का कारण बताया गया है, क्योंकि इनके रहते हुए मनुष्य जो कुछ कर्म करता है, वे संस्कारों रूप में अन्तःकरण में इकट्ठे होते रहते हैं, उन संस्कार के समुदाय नाम ही कर्माशय है। इस कर्माशय के कारण भूत क्लेश जब तक रहते हैं, तब तक जीव को उनका फल भोगने के लिए नाना प्रकार की योनियों में बार-बार जन्मना और मरना पड़ता है एवं पापकर्म फल भोगने के लिए घोर नरकों की यातना भी सहन करनी पड़ती है। पुण्यकर्मो फल जो अच्छी योनियों की और सुखभोग सम्बन्धी सामग्री की प्राप्ति है, वह भी विवेक की दृष्टि से दुःख ही है (योग 2/15), अतः समस्त दुःखों का सर्वथा अत्यन्त अभाव करने के लिए क्लेशों को मूल से नष्ट करना परम आवश्यक है। इस पाद में उनके नाश का उपाय निश्चल और निर्मल विवेकज्ञान को (यो.सू. 2/26) तथा उस विवेकज्ञान की प्राप्ति का उपाय योग सम्बधी आठ अंगों के अनुष्ठान को (यो.सू.2/28) बताया है।

5.5.3 विभूति पाद

इस तीसरे विभूतिपाद में धारणा, ध्यान और समाधि- इन तीनों का एकत्रित नाम 'संयम' बतलाकर भिन्न-भिन्न ध्येय पदार्थो में संयम का भिन्न-भिन्न फल बतलाया है; उनकों योग का महत्व, सिद्धि और विभूति भी कहते हैं। इस पाद के सैतीसवें, पचासवें और इक्यानवें अर्थात 3/37, 3/50, 3/51 एवं 4/29 में चाहिए। उनको समाधि में विघ्न रूप बताया है। अतः साधक को भूलकर भी सिद्धियों के प्रलोभन में नहीं पड़ना चाहिए ।

5.5.4 कैवल्य पाद

इस चौथे पाद में कैवल्यपाद प्राप्त करने योग्य चित्त के स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है। (यो.सू. 4/26) अन्त में धर्ममेघ समाधि का वर्णन करके (यो.सू. 4/29) उसका फल क्लेश और कर्मों का सर्वथा अभाव (यो.सू. 4/30) तथा गुणों के परिणाम-क्रम की समाप्ति अर्थात पुनर्जन्म का अभाव बताया गया है (यो.सू. 4/32) एवं पुरूष को मुक्ति प्रदान करके अपना कर्तव्य पूरा कर चुकने के कारण गुणों के कार्य का अपने कारण में विलीन हो जाना अर्थात् पुरुष से सर्वथा अलग हो जाना गुणों की कैवल्य-स्थिति और उन गुणों से सर्वथा अलग होकर अपने रूप मे प्रतिष्ठित हो जाना ही पुरुष की कैवल्य स्थिति बतलाकर (यो.सू. 4/34) ग्रन्थ की समाप्ति की गयी है।

बोधप्रश्न

१) भारतीय दर्शन का चरम लक्ष्य ..... मुक्ति दिलाना हैं ।
२) 'पातञ्जल योग प्रदीप' नामक ग्रन्थ के लेखक कौन हैं ?
३) योग दर्शन के रचयिता .....हैं ।
४) योग दर्शन के पश्चात् किस कृति का नाम सर्वाधिक प्रसिद्धि हैं ?
५) योग दर्शन में कितने पाद हैं ?
६) साधन पाद में कितने सूत्र हैं ?

5.6 ग्रन्थ का मूलपाठ

अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रा (पा.यो.सू.1/10)

अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम् (पा.यो.सू.2/4)

विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्व: संस्कारशेषोऽन्य: (पा.यो.सू.1/18)

ईश्वरप्रणिधानाद्वा (पा.यो.सू.1/23)

तत्परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम् (पा.यो.सू.1/16)

निर्विचारवैशारद्येऽध्यात्मप्रसाद: (पा.यो.सू.1/47)

योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्याते: (पा.यो.सू.2/28)

सत्त्वपुरुषयोरत्यन्तासंकीर्णायो: प्रत्ययाविशेषो भोग: परार्थात्स्वार्थसंयमात्पुरुषज्ञानम् (पा.यो.सू.3/35)

प्रसंख्यानेऽप्यकुसीदस्य सर्वथा विवेकख्यातेर्धर्ममेघ: समाधि: (पा.यो.सू.4/29)

पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसव: कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तेरिति । (पा.यो.सू.4/34)

परिणामतापसंस्कारदु:खैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दु:खमेव सर्वं विवेकिन: (पा.यो.सू.2/15)

विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपाय: (पा.यो.सू.2/26)

ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धय: (पा.यो.सू.3/27)

तारकं सर्वविषयं सर्वथाविषयमक्रमं चेति विवेकजं ज्ञानम् (पा.यो.सू.3/50)

सत्त्वपुरुषयो: शुद्धिसाम्ये कैवल्यम् (पा.यो.सू.3/51)

तदा विवेकनिम्नं कैवल्यप्राग्भारं चित्तम्(पा.यो.सू.4/26)

तत: क्लेशकर्मनिवृत्ति: (पा.यो.सू.4/30)

तत: कृतार्थानां परिणामक्रमसमाप्तिर्गुणानाम् (पा.यो.सू.4/32)

5.7 सारांश

इस प्रकार पतंजलि के योगदर्शन की धारणा है कि मनुष्य मानव जीवन की समस्त निधियों से सम्पन्न है, जिनसें बहुत कुछ प्राप्त किया जा सकता है और ये ऐसी निधियाँ हैं, जिनकी कल्पना वर्तमान समय में नहीं की जा सकतीं। यह दर्शन मनुष्य को अपने गम्भीरतम क्रियाशील स्तरों तक पहुंचने की विधियाँ बताता है। योग साधना शरीर, मन और आत्मा के पवित्रीकरण के अतिरिक्त और कुछ नहीं है और इन्हें उस आनन्दमय स्वरूप के साक्षात्कार के लिए तैयार करना ही उसका कार्य है। यही योग का अंतिम लक्ष्य है।

5.8 शब्दावली

१) त्रिविधदु:ख : आधिदैविक, आधिभौतिक, आध्यात्मिक

२) निर्बीज : जिसमें बीज न हो

३) विवेकज्ञान : अच्छे-बूरे की समझ, बुद्धि :

४) क्लेश : दु:ख, पीड़ा, सन्ताप

५) आस्तिक : ईश्वर में विश्वास करने वाला अथवा वेद को मानने वाला

६) दर्शन : जिसके द्वारा यथार्थ तत्त्व की अनुभूति हो

5.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. सरस्वती विज्ञानानन्द (2003), योग विज्ञान | योग निकेतन ट्रस्ट मुनि की रेति, ऋषिकेश।

2. निरजनानन्द (1994), योग दर्शन | श्री पंचदशनाम, परमहंस अलखवाड़ा, देवधर, विहार ।

3. जगदीशचन्द्र मिश्र 2012, भारतीय दर्शन । चौखम्भा सुर भारती प्रकाशन, वाराणसी।

5.10 सहायक ग्रन्थ

1. पाण्डेय राजकुमारी (2008), भारतीय योग परम्परा के विविध आयाम । राधा पब्लिकेशन, दिल्ली

2 व्यास महर्षि (2003), भगवदगीता। गीता प्रेस गोरखपुर।

3 योगेन्द्र पुरूषार्थी (1999), वेदो में योग विद्या । यौगिक शोध संस्थान, हरिद्वार।

4 पाण्डेय राजकुमारी (2008), भारतीय योग परम्परा के विविध आयाम। राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

5 परमहंस स्वामी अनन्त भारती (संवत 2056), योगदर्शन । स्वामी केशवानन्द योग संस्थान, दिल्ली-85

5.11 बोध प्रश्नोत्तर

१) त्रिविध दु:खों से ।

२) स्वामी ओमानन्द ।

३) महर्षि पतञ्जलि ।

४) महर्षि व्यास द्वार रचित 'पातञ्जभाष्य' ।

५) चार ।

६) 55 ।

5.12 अभ्यास प्रश्न

1. योग दर्शन के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।

2. योग दर्शन के विभिन्न अध्यायों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

3. योग दर्शन के अनुसार योग की परिभाषा को स्पष्ट कीजिए।

4. साधन पाद का संक्षिप्त परिचय दीजिए ।

षष्ठ पाठ
चित्त का अर्थ, परिभाषा एवं भूमियाँ

पाठ संरचना

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 चित्त का अर्थ

6.4 चित्त की परिभाषा

6.5 चित्त की प्रकृति

6.6 चित्त की भूमियाँ

- 6.6.1 मूढावस्था
- 6.6.2 क्षिप्तावस्था
- 6.6.3 विक्षिप्तावस्था
- 6.6.4 एकाग्रवस्था
- 6.6.5 निरुद्धावस्था

बोधप्रश्न

6.7 ग्रन्थ का मूलपाठ

6.8 सारांश

6.9 शब्दावली

6.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

6.11 सहायक ग्रन्थ

6.12 बोध प्रश्नोत्तर

6.13 अभ्यास प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

इस से पूर्व पाठ में हमने योगदर्शन का स्वरूप समझा और इस पाठ में चित्त का स्वरूप व अर्थ को जानेंगे । महर्षि पंतजलि के योग सूत्र में योग पर विचार-विमर्श का प्रारंभ चित्त से ही होता है। जहां चित्त का अर्थ दृष्टाभाव के रूप में माना जाता है यहां चित्त का अर्थ मन नहीं है जो अनुभव कर रहा है। बल्कि वह केवल दृष्टा है इसका संबंध स्थूल, सूक्ष्म और कारण अभिव्यक्तियों के अवलोकन तथा चेतन एवं शक्ति के अनुभवों से है।

प्रस्तुत पाठ में चित्त व चित्तभूमियों के संदर्भ में अध्ययन करेंगे। चित्त की भूमि के संदर्भ में महर्षि पतंजलि ने वर्णन नहीं किया है, महर्षि व्यास ने चित्त भूमियों के संदर्भ में बताया है, जिसका वर्णन प्रस्तुत अध्याय में किया गया है।

6.2 उद्देश्य - प्रस्तुत पाठ में आप जानेंगे-

- ❖ चित्त का अर्थ एवं परिभाषा ।
- ❖ चित्त की प्रकृति ।
- ❖ चित्त की भूमियों के लक्षण एवं कारण ।
- ❖ चित्त में तीन गुणों की भूमिका

6.3 चित्त का अर्थ

चित्त का अर्थ होता है देखना । चित्त तत्व प्रकृति-पुरूष के संयोग के पश्चात का प्रथम व्यक्त तत्व है। यह चेतना का वह पहलू है, जिसे दृष्टा कहा जाता है। चित्त को मानस-द्रव्य कहते हैं। यह पहली मंजिल के समान है। इससे मन, बुद्धि और अहंकार उत्पन्न होते हैं। यह (चित्त) महर्षि पतंजलि के राजयोग का शब्द है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने भी 'चित्त' का प्रयोग कई स्थलों पर किया है।

6.4 चित्त की परिभाषा

वेदान्त में चित्त एक भिन्न मनःशक्ति का प्रवर्ग है। कभी-कभी यह मन के ही अन्तर्गत आता है। सांख्य दर्शन में यह बुद्धि का महत् तत्व के ही अन्तर्गत है। पतंजलि ऋषि के राजयोग का 'चित्त' (योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः) वेदान्त के 'अन्तःकरण' के सदृश है।

वेदान्त की परिभाषा में अवचेतन मन को चित्त कहते हैं। आपके अवचेतन मन का अधिकांश भाग अन्तस्तल में छिपे हुए अनुभवों और पृष्ठभूमि में डाली हुई उन स्मृतियों का बना हुआ होता है जो फिर प्राप्त हो सकती है। चित्त एक शान्त सरोवर है। इसके ऊपर वृत्तियों की लहरें उठती हैं। नाम और रूप के कारण ही ये वृत्ति-रूपी लहरें उठती हैं। नाम और रूप के बिना कोई लहर नहीं उठ सकती। स्मृति या स्मरण, धारणा और अनुसन्धान चित्त के कार्य हैं। जब किसी मन्त्र का जप करते हैं तो चित्त स्मरण करता है। यह बहुत-सा कार्य करता है। यह मन या बुद्धि से भी अच्छा और अधिक कार्य करता है।

6.5 चित्त की प्रकृति

प्रकृति व पुरूष के संयोग के पश्चात सृष्टि के निर्माण के फलस्वरूप प्रथम चित्त का निर्माण हुआ है। यह त्रिगुणात्मक रूप में होता है। लेकिन इसमें सत्व गुण प्रधान होता है। चित्त के पश्चात अहंकार, इंद्रियां, पंच महाभूत आदि का निर्माण होता है। चित्त प्रथम विकार है। इसमें पुरूष का चेतन तत्व तथा प्रकृति का जड़ तत्व विद्यमान होता है। पुरुष निर्बीज, अव्यक्त, अनित्य, दृष्टा, तथा साक्षी भाव वाला होता है जो कि अपनी चेतना का स्पर्श प्रकृति को देता है। जिससे चित्त में मोक्ष, ज्ञान, कैवल्य के लिए जिज्ञासा उत्पन्न होती है और उसे पुरूष के ज्ञान का प्रकाश प्राप्त होता है।

चित्त प्रकृति का जड़ तत्व है जिसमें तीन गुण सत्, रज्, तथा तम होते हैं। इसमें योग की दशा को निम्न रूप में बताया गया है-

1. चित्त की रजोगुण व तमोगुण से मिश्रित सात्विक वृत्ति योग नही कही जा सकती ।

2. तमोगुण वाले सात्विक मन का निरोध भी योग नहीं कहा जा सकता क्योंकि अज्ञानादि बना ही रहता है।

3. रजोवृत्ति वाले सात्विक मन का निरोध ही योग नहीं है, क्योंकि इसमें रजोगुण के कारण मन शुद्ध नहीं होता है।

4. तामस वृत्तियों के निरोध को योग कहते हैं, क्योंकि सात्विक वृत्ति के उदय होने से विवेक ख्याति होती है।

5. तामस और राजस तथा सात्विक तीनों वृत्तियों के निरोध को उत्तम योग कहते हैं।

6.6 चित्त की भूमियाँ

चित्त की भूमियों का सामान्य अर्थ अवस्था है, जिसे अनेक टीकाकारों ने व्यास भाष्य के आधार पर समझाया है। ये भूमियाँ पूर्वोक्त वर्णित तीन गुणों के कारण ही अलग-अलग रूपों में होती है। तीन गुण मूल रूप में नहीं होता है अतः सभी का अंश उसमें विद्यमान होता है। चित्त भूमियां पाँच प्रकार की है- इसे महर्षि व्यास ने बताया है। उन्होंने अनेक प्रकार की चित्त- वृत्तियों को पाँच भागों में विभाजित कर बताया है, जो इस प्रकार है - अर्थात- (1) मूढ़ (2) क्षिप्त, (3) विक्षिप्त, (4) एकाग्र (5) निरूद्ध।

इसमें इन्होंने योग को समाधि कहा है तथा इसके पश्चात चित्त की भूमि का भी प्रथम सूत्र में ही वर्णन किया है

"क्षिप्त मूढं विक्षिप्तम एकाग्रे निरूद्धमिति चित्तभूमयः"

अर्थात क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरूद्ध ये चित्त की पाँच भूमियाँ है।

इन भूमियों को इन्होंने चित्त का सार्वभौम धर्म बताया है। अर्थात सभी भूमियों में समाधि हो सकती है। इसमें उन्होंने असंप्रज्ञात समाधि को निर्बीज समाधि कहा है।

6.6.1 मूढावस्था : मूढावस्था में चित्त किसी इन्द्रिय के विषय में पूर्णतया मोहित हो जाने पर सत्य चिन्तन करने में अयोग्य हो जाता है। इसी से वह विवेकहीन कार्यों में संलग्न हो जाता है। यही मनुष्य की मूढावस्था है।

कारण – काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि।

लक्षण – निद्रा, तन्द्रा, भय, मोह, आलस्य, दीनता आदि में मनुष्य की प्रवृत्ति होती है। इस अवस्था में तमोगुण प्रधान होता है, रज तथा सत्व दबे हुए गौण रूप से रहते हैं। यह अधम मनुष्यों की अवस्था है।

6.6.2 क्षिप्तावस्था : जो चित्त स्वभावत: अत्यन्त अस्थिर है, जिस चित्त में अतीन्द्रिय विषयों की विचारणा के लिए जितनी स्थिरता और बौद्धिक शक्ति की आवश्यकता है, उतनी नही होती। जिससे विषयोन्मुख बनकर सुख-दु:ख भोगता है। यही क्षिप्तावस्था है।

कारण – राग-द्वेष आदि।

लक्षण – धर्म-अधर्म, राग-विराग, ज्ञान-अज्ञान, ऐश्वर्य-अनैश्वर्य में प्रवृत्ति होती है। इसमें रजोगुण की प्रधानता होती है। तम और सत्व दबे हुए गौण रूप से रहते है। यह अवस्था साधारण संसारी मनुष्यों की होती है।

6.6.3 विक्षिप्तावस्था : विक्षिप्त का अर्थ है जो क्षिप्त से विशिष्ट हो । ज्यादातर योगसाधकों के चित्त विक्षिप्त अवस्था के होते हैं । जिस अवस्था में कभी चित्त शान्त हो जाता है तो कभी अशान्त, यही विक्षिप्तावस्था है ।

कारण – कर्मयोग है ।

लक्षण – मुख पर प्रसन्नता, श्रद्धा, धैर्य, चैतन्य, ओज, दान, करुणा आदि सद्गुण दिखाई देते है । इसमें सत्त्वगुण की प्रधानता रहती है । तम और रज दबे हुए गौण रूप से रहते है परन्तु रजोगुण के स्वभाव से व्यक्ति के चित्त में कभी-कभी विक्षेप भी रहता है । यह अवस्था सामान्य से विशिष्ट मनुष्यों की होती है ।

6.6.4 एकाग्रवस्था : एकाग्र का अर्थ है, जब चित्त का लक्ष्य व अवलम्बन एक ही हो, उसे एकाग्रचित्त कहते है । जब व्यक्ति चौबीसों घण्टों में अधिकांश समय एकाग्रचित्त रहता है । इस अबस्था में चित्त निर्मल स्फटिक के समान होता है ।

कारण – उच्च जिज्ञासाएँ उत्पन्न होती रहती है ।

लक्षण – निष्काम कर्म करने वाला, राग-द्वेष, काम, क्रोध, लोभ और मोहादि से रहित होता है । इसमें सत्त्वगुण की प्रधानता रहती है । तम और रज दबे हुए गौण रूप से रहते है । यह अवस्था योगियों की होती है । इस स्थिति की अन्तिम अवस्था विवेक-ख्याति है । इसी को योगदर्शन में 'सम्प्रज्ञात समाधि' कहते है ।

6.6.5 निरुद्धावस्था : निरुद्ध का अर्थ है, जब समस्त वृत्तियाँ पूर्णतया रुक जायें एवं विवेक ख्याति से भी वैराग्य भाव उत्पन्न हो जायें, उस अवस्था को निरुद्धावस्था कहते है ।

कारण – स्वभाविक गुण ।

लक्षण – जब योगी सम्प्रज्ञात समाधि में भी दोष देखने लगता है और उससे उत्पन्न 'परवैराग्य' घटित होने पर असम्प्रज्ञात समाधि व ईश्वर साक्षात्कार की स्थिति उत्पन्न हो जाती है तथा योगी परमानन्द, सत्चित्तानन्द हो जाता है । इस समय स्वभाविक और अस्वभाविक वृत्तियों का अभाव हो जाता है । द्रष्टा की स्वरूप स्थिति बन जाती है ।

बोधप्रश्न

१) चित्त का शाब्दिक अर्थ क्या हैं ?

२) किसको मानस द्रव्य कहते हैं ?

३) चित्त प्रकृति का जड़ तत्त्व है । जिसमें तीन गुण कौनसे होते हैं ?

४) महर्षि व्यास के अनुसार चित्त भूमियाँ (अवस्था) कितने प्रकार की हैं ?

५) मूढावस्था में किस गुण की प्रधानता रहती हैं ?

6.7 ग्रन्थ का मूलपाठ

"क्षिप्त मूढं विक्षिप्तम एकाग्रे निरूद्धमिति चित्तभूमयः" (योगभाष्य)

6.8 सारांश

इस प्रकार स्पष्ट है कि महर्षि व्यास के योग दर्शन के प्रथम सूत्र की व्याख्या में पाँच अवस्थाएं वर्णित हैं, जिनमें अंतिम तीन अवस्थाओं को योग के लिए उपयुक्त माना जाता है। मूढ़ और क्षिप्त में योग संभव नहीं है और

एकाग्र, निरूद्ध अवस्था को योग के लिए अधिक उपयुक्त भूमि माना जाता है। अर्थात् इन दोनों अवस्थाओं को योग के लिए अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है, विक्षिप्त अवस्था में योग की शुरूआत होने लगती है। तत्पश्चात् एकाग्र व निरूद्ध अवस्था की प्राप्ति होती है, जिसमें चित्त सत्वगुण प्रधान होता है।

6.9 शब्दावली

१)	चित्त	:	मन, ज्ञानानुभूति का साधन
२)	महाभूत	:	आकाश,वायु,अग्नि,जल,पृथिवी
३)	अव्यक्त	:	जिसे व्यक्त न किया जाए, अप्रकट
४)	सत्त्व	:	प्रकाश, बुद्धि, सत्त्व गुण
५)	रज	:	गति, रजोगुण
६)	तम	:	जड़ता, अंधेरा, तमोगुण
७)	मूढ	:	चित्त की एक अवस्था का नाम, मूर्ख

6.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. सरस्वती विज्ञानानन्द (2003), योग विज्ञान | योग निकेतन ट्रस्ट मुनि की रेति, ऋषिकेश।
2. निरजनानन्द (1994), योग दर्शन | श्री पंचदशनाम, परमहंस अलखवाड़ा, देवधर, विहार ।
3. जगदीशचन्द्र मिश्र 2012, भारतीय दर्शन । चौखम्भा सुर भारती प्रकाशन, वाराणसी।

6.11 सहायक ग्रन्थ

1. पाण्डेय राजकुमारी (2008), भारतीय योग परम्परा के विविध आयाम । राधा पब्लिकेशन, दिल्ली

2 व्यास महर्षि (2003), भगवदगीता। गीता प्रेस गोरखपुर।

3 योगेन्द्र पुरूषार्थी (1999), वेदो में योग विद्या । यौगिक शोध संस्थान, हरिद्वार।

4 परमहंस स्वामी अनन्त भारती (संवत 2056), योगदर्शन । स्वामी केशवानन्द योग संस्थान, दिल्ली-85

5. डा. अमृत लाल गुर्वेन्द्र, डा. गायत्री गुर्वेन्द्र (2020), योगाऽमृत । किताब महल, दरियागंज, नई दिल्ली

6 योग विज्ञान, योगसूत्र का परिचयात्मक अध्ययन (2002), मानव चेतना एवं योग विज्ञान संकाय, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, गायत्रीकुंज-शान्तिकुंज विस्तार, हरिद्वार ।

6.12 बोध प्रश्नोत्तर

१) देखना।

२) चित्त को।

३) सत्त्व, रज, तम।

४) पाँच।

५) तमोगुण।

6.13 अभ्यास प्रश्न

1. चित्त से आप क्या समझते हो ? स्पष्ट कीजिए ?
2. चित्त की प्रकृति को स्पष्ट कीजिए ?
3. चित्त की भूमियाँ से आप क्या समझते है ?
4. चित्त में गुणों का क्या महत्त्व हैं ?
5. मूढावस्था से आप क्या समझते हैं ?

सप्तम पाठ
चित्तवृत्ति एवं प्रकार

पाठ संरचना

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 चित्त वृत्ति का अर्थ

7.4 चित्त वृत्ति का स्वरूप

7.5 वृत्ति के प्रकार

7.5.1 प्रमाण वृत्ति

7.5.2 विपर्यय वृत्ति

7.5.3 विकल्प वृत्ति

7.5.4 निद्रा वृत्ति

7.5.5 स्मृति वृत्ति

बोधप्रश्न

7.6 ग्रन्थ का मूलपाठ

7.7 सारांश

7.8 शब्दावली

7.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

7.10 सहायक ग्रन्थ

7.11 बोध प्रश्नोत्तर

7.12 अभ्यास प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

इस से पूर्व पाठ में हमने चित्त की अवस्थाओं को समझा और अब प्रस्तुत पाठ में हम चित्तवृत्तियों के स्वरूप विस्तार से समझेंगे । योग दर्शन महर्षि पतंजलि जी द्वारा रचित बहुत ही सम्मानित ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ का एक-एक सूत्र अपने आप में बहुत गुढ़ता को सिमेटे हुए हैं। योग दर्शन राज योग साधना का मुख्य मार्ग बताता है। इसके प्रारम्भ में ही महर्षि ने साधक के मन और मन से भी सूक्ष्म साधक के चित्त की बात कही है जिसमें उन्होंने चित्त की समस्त गतिविधियों को वृत्तियों से प्रभावित हुआ बताया है। सारी सृष्टि सत्व, रजस और तमस इन तीनों गुणों का ही परिणाम रूप है। चित्त इन गुणों का सबसे प्रथम सत्वप्रधान परिणाम है। इसीलिए इसे चि भी कहते हैं। इसके बाह्य अथवा आभ्यांतर संसर्ग से जो चित्त सत्व में क्षण-क्षण गुणों का परिणाम हो

रहा है, उसे चित्त वृत्ति कहते है, जो पाँच प्रकार होते हैं। प्रस्तुत पाठ में चित्तवृत्ति के संदर्भ में समग्र अध्ययन करेंगे।

7.2 उद्देश्य - प्रस्तुत इकाई में आप जानेंगे-

- ❖ चित्तवृत्ति का स्वरूप।
- ❖ चित्तवृत्ति के प्रकार ।
- ❖ अक्लिष्ट व क्लिष्ट चित्तवृत्ति का स्वरूप ।

7.3 चित्तवृत्ति का अर्थ

वृत्ति शब्द वृत्त वर्तने धातु में 'ति' प्रत्यय लगने से बना है। जिसका अर्थ बर्ताव करना या घुमना । चित्त जो बर्ताव करता है या कार्य करता है वह सब वृत्तियों का रूप ले लेती है। जिस प्रकार जल में बर्तुलाकार गोल-गोल लहरें उठती है ठीक उसी प्रकार चित्त में भी एक के बाद एक वृत्तियाँ उठती है। चित्त कुछ न कुछ विचार, कल्पना आदि करता रहता है। इन सभी को वृत्तियाँ कहते है। हमारा चित्त सदैव ही चंचल रहता है जब यह बाह्य विषयों के सम्पर्क में आता है तो हलचल या परिणाम उत्पन्न होते है। इन्हीं परिणामों को वृत्तियाँ कहते है। इन्द्रियों का विषय से सम्पर्क होना इसका मुख्य कारण रहता है।

इन्द्रियाँ दो प्रकार की होती है-

1.कर्मेन्द्रियाँ

2.ज्ञानेन्द्रियाँ

कर्मेन्द्रियाँ- हाथ, पैर, मुख, गुदा, जननेन्द्रियाँ ।

ज्ञानेन्द्रियाँ- आँख, कान, नाक, जिहवा, त्वचा ।

जिस प्रकार वायु आदि के वेग से जलरूपी तरंगें उठती हैं, उसी प्रकार चित्त इंद्रियों द्वारा बाह्य विषयों से आकर्षित होकर उन तरंगों जैसे आकारों में परिणत होता रहता है। यह सब चित्त की वृत्तियाँ कहलाती है, जो अनंत हैं और प्रतिक्षण उदित होती रहती हैं। जिस प्रकार पानी पृथ्वी (स्थान विशेष) के संयोग से कहीं खारा, कहीं मृदु हो जाता है। उसी प्रकार चित्त भी राग द्वेषादि से परिवर्तित होता रहता है। भोज वृत्ति-

"वृत्तयः चित्त परिणामः विशेषः"

बाह्य और आभ्यांतर विषयों के संपर्क से जो चित्त में परिणाम होता है, उसी को वृत्ति कहा जाता है।

चित्त एक सरोवर के समान है, चित्त की वृत्तियाँ तरंगों की भाँति हैं। बाह्यवृत्ति के समय चित्त को ये तरंगे बाह्यविषयों की ओर प्रवाहित करती हैं और विषयोन्मुख करती है और अन्तर्मुखी होने पर इन्द्रियों से सम्पर्क न होने से इनका सम्पर्क परमात्मा रूपी गंगा से हो जाता है। चित्त को व्यास-भाष्य में अयस्कान्तमणि (चुम्बक पत्थर) के समान बताया है, यदि उसका निरोध न किया जाये, तो यह लोहे के सदृश बाह्यविषयों को अपनी और खींचता रहता है और जीवात्मा स्फटिकमणि (बिल्लोर) की भाँति शुद्ध है, परन्तु अपने समीपस्थ मन आदि के सदृश रंग वाला प्रतीत होता है। इसी भाव को सूत्रकार ने 'वृत्तिसारूप्य' कहकर स्पष्ट किया है। चित्त इन्द्रियों के सान्निध्य से जिस विषय को उपस्थित करता है, जीवात्मा उसको ग्रहण करता है। यही जीवात्मा की व्युत्थान दशा कहलाती है। समाधि-दशा इससे बिल्कुल भिन्न होती है, जिसमें बाह्यविषयों से सम्पर्क न होने से ब्रह्मानन्द की अनुभूतिमात्र ही होती है ।

7.4 चित्तवृत्ति का स्वरूप

चित्त के त्रिगुणात्मक होने के कारण उसकी वृत्तियाँ भी भिन्न-भिन्न होती है। इसे महर्षि पतंजलि ने इस प्रकार बताया है-

"वृत्तिसारूप्यमितरत्र" (पा.यो.सू. 1/4)

अर्थात दूसरे समय में दृष्टावृत्ति के साथ एक रूप होकर रहता है या अन्य दशाओं में चित्त वृत्तियों के समान रूपवाली प्रतीत होती है। महर्षि व्यास -

इन्होंने सूत्र में कहा है कि जिस प्रकार की वृत्तियाँ बनती हैं, पुरूष भी उसी प्रकार से स्थित होता है।

7.5 वृत्ति के प्रकार

ये वृत्तियाँ अनंत होती हैं लेकिन महर्षि पंतजलि ने इसके पाँच प्रकार बताये हैं, जो कि क्लिष्ट व अक्लिष्ट दो प्रकार की हैं-

'वृत्तय: पञ्चतय: क्लिट्याक्लिष्टाः" (पा.यो.सू. 1/5)

अर्थात चित्त की वृत्तियाँ पाँच अवयव वाली होती हैं, वे क्लिष्ट वृत्ति और अक्लिष्ट वृत्ति रूप से दो प्रकार की होती हैं।

1. क्लिष्ट वृत्तियाँ- ये तमोगुण प्रधान होती है। व्यक्ति को विवेक ज्ञान के विपरीत ले जाती हैं।

2. अक्लिष्ट वृत्तियाँ- ये सत्वगुण प्रधान होती हैं। व्यक्ति को विवेक ज्ञान की ओर ले जाती हैं।

महर्षि व्यास-

इन्होंने स्पष्ट किया है कि क्लिष्ट वृत्तियाँ समस्त कर्मसंस्कारों की क्षेत्रीभूत वृत्तियाँ हैं तथा विवेक, ज्ञान विषया और गुणाधिकार, विरोधनी वृत्तियाँ अक्लिष्ट हैं। ये वृत्तियाँ चित्त की निरोध करने योग्य अनंत प्रकार की होती है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि चित्त की वृत्तियाँ मुख्यतः दो प्रकार की हैं जो क्लिष्ट व अक्लिष्ट हैं। इसमें क्लिष्ट, पीड़ा, दुख देने वाली तथा अक्लिष्ट पीड़ाविहीन, विवेक, ज्ञान को देने वाली होती है। पुनः इसके पाँच भेद अर्थात इनके प्रकारों का वर्णन आगे महर्षि पंतजलि जी ने किया है जो पाँच प्रकार के हैं -

प्रमाण विपर्यय विकल्पनिद्रास्मृतयः । (पा.यो.सू 1/6)

अर्थात वे पाँच वृत्तियाँ हैं- प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा, स्मृति ।

7.5.1 **प्रमाण वृत्ति :** ज्ञान प्राप्ति का जो साधन है वहीं प्रमाण हैं । प्रमेय (सत्यासत्य ज्ञान) के सम्यक् ज्ञान के लिए प्रमाणों का अवलम्बन करना आवश्यक हैं क्योंकि लक्षण एवं प्रमाण से ही वस्तु (प्रमेय) को सिद्ध किया जा सकता है । प्रमाण – **"प्रत्यक्षानुमानाऽगमा: प्रमाणानि"** (पा.यो.सू 1/7) यानि प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम भेद के अनुसार 'प्रमाण' वृत्ति तीन प्रकार की है ।

अ) प्रत्यक्ष प्रमाण : "इन्द्रियार्थ सन्निकर्षजन्यं ज्ञानं प्रत्यक्षम्" अर्थात् जिन वस्तुओं का ज्ञान इन्द्रियों की सहायता से होता है वह 'प्रत्यक्ष प्रमाण' है । जैसे – आँखों देखी, कानों सुनी, जिह्वा से स्वाद, नासिका से गन्ध तथा त्वचा से स्पर्श का ज्ञान होना प्रत्यक्ष प्रमाण है ।

आ) अनुमान प्रमाण : "अनुमीयते अनेन प्रमाणेन इत्यनुमानम्" यानि जिस प्रमाण से अप्रत्यक्षीभूत वस्तु का अनुमान किया जाए उसे अनुमान प्रमाण कहते है । जैसे – किसी स्थान पर धूएँ को देखकर 'वहाँ अग्नि है' ऐसा जो निश्चय किया जाता है, वह अनुमान का कार्य है । अनु का अर्थ – बाद में और मान का अर्थ प्रमाण है । अन्य शब्दों में प्रत्यक्ष के बाद में अप्रत्यक्षभूत पदार्थ के ज्ञान के लिए जिसकी प्रवृत्ति हो उसे अनुमान प्रमाण कहा जाता है ।

इ) आगम प्रमाण : जो ज्ञान प्रत्यक्ष अथवा अनुमान प्रमाणों के आधार पर नहीं होता किन्तु विद्वानों तथा ज्ञानियों द्वारा कहे गए वचन तथा शास्त्र के वचन के आधार पर होता है; वह आगम प्रमाण है । **"आप्तवाक्यं शब्द: या आप्तोपदेश: शब्द:"** सत्य वक्ता के उपदेश वाक्य को शब्द (आगम) प्रमाण कहते हैं । **आचार्य ईश्वर कृष्ण** के अनुसार आप्त का लक्षण –

स्वकर्मण्यभियुक्तो यो रागद्वेषविवर्जित: ।
निर्वैर: पूजित: सद्भिराप्तो ज्ञेय: स तादृशा ॥

अर्थात् जिसने पदार्थ का निश्चयात्मक ज्ञान किया हो उसे आप्त कहते है । आप्तपुरुष रागद्वेष रहित होकर किसी वस्तु का अनुभव के आधार पर स्वरूप-कथन करते है; अत: उसके वचन को प्रमाण माना जाता है ।

7.5.2 **विपर्यय वृत्ति: "विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम्"** (पा.यो.सू. 1/8) अर्थात् जो उस वस्तु के स्वरूप में प्रतिष्ठित नहीं है, ऐसा मिथ्या ज्ञान विपर्यय है। इस का अभिप्राय यह है – किसी वस्तु के वास्तविक स्वरूप को न समझकर उसे दूसरी ही वस्तु समझ लेना जैसे को तैसा न जानना, अन्य में अन्य की भावना कर लेना – जैसे सीप में चाँदी का भ्रम होना, अंधेरे में रस्सी को देख कर सांप का आभास होना आदि – यह मिथ्या ज्ञान ही विपर्ययवृत्ति है। विपर्यय को ही अविद्या कहते है, यही समस्त अनर्थों की जननी है।

7.5.3 **विकल्प वृत्ति : "शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्प:"** (पा.यो.सू. 1/9) अर्थात् वस्तु के न रहते हुए भी शब्द ज्ञान मात्र से उत्पन्न चित्तवृत्ति को विकल्प कहते है। जैसे – बन्ध्या को पुत्र, आकाश में पुष्प, खरगोश व गधे के सींग होना आदि। इसी विकल्प वृत्ति से संशयात्मक ज्ञान उत्पन्न होता है।

7.5.4 **7.5.4 निद्रा वृत्ति : 'अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रा"** (पा.यो.सू. 1/10) अर्थात् जाग्रत तथा स्वप्न में होने वाले अनुभवों की 'अभाव' के रूप में प्रतीति कराने वाली वृत्ति 'निद्रा वृत्ति' कहलाती है। दूसरे शब्दों में – इसमें मनुष्य को किसी भी विषय का ज्ञान नहीं रहता किन्तु ज्ञान के अभाव की प्रतीति होती है। जैसे – गहरी नींद में भी मनुष्य को यह भान रहता है कि आज नींद गहरी आई। इस भान के कारण ही इसे **'वृत्ति'** कहा गया है।

7.5.5 **स्मृति वृत्ति : 'अनुभूतविषयाऽसम्प्रमोष: स्मृति:'** (पा.यो.सू. 1/11) अनुभव किए हुए विषय का विस्मरण या प्रकट हो जाना स्मृति है। दूसरे शब्दों में इन्द्रियों तथा मन से अनुभव किये विषयों के संस्कार चित्त पर पड़ते हैं उनका पुन: किसी निमित्त को पाकर प्रकट हो जाना ही 'स्मृति' है। संसार में रहकर अच्छे, बुरे, सामान्य, असामान्य, आनन्दप्रद, कटु, क्रोध, घृणा आदि से अनेक प्रकार के कर्म किये जाते हैं तथा मन द्वारा सोचे जाते हैं उनमें जिनका गहरा अनुभव होता है तथा जो बात गहराई तक पहुँच जाती है, उन्हें संस्कार कहते है। ये संस्कार चित्त पर स्थाई रूप से पड़ते है जिनका प्रभाव अनेक जन्मों तक रहता है, जब तक उनका भोग समाप्त नहीं हो जाता। यह संस्कार अच्छे, बुरे और मिश्रित तीनों प्रकार से व्यक्ति को प्रभावित करते हैं। चित्त पर पड़े संस्कार जब जागते हैं तभी उन्हें 'स्मृति' कहते है।

बोधप्रश्न

१) इन्द्रियाँ कितने प्रकार की होती हैं ? उनके नाम लिखों।

२) कर्मेन्द्रियाँ कितने प्रकार की होती है ? उनके नाम लिखों।

३) ज्ञानेन्द्रियाँ कितने प्रकार की होती है ? उनके नाम लिखों।

४) महर्षि पतञ्जलि के अनुसार वृत्तियाँ कितने प्रकार की होती हैं ?

५) महर्षि पतञ्जलि के अनुसार प्रमाण के कितने भेद हैं ? नाम लिखिए।

६) दुसरी वृत्ति का नाम .....है।

७) अक्लिष्ट वृत्तियाँ .....गुण प्रधान होती हैं।

7.6 ग्रन्थ का मूलपाठ

वृत्तयः चित्त परिणामः विशेषः (भोजवृत्ति)
प्रमाण विपर्यय विकल्पनिद्रास्मृतयः । (पा.यो.सू 1/6)
"प्रत्यक्षानुमानाऽगमा: प्रमाणानि" (पा.यो.सू 1/7)
"इन्द्रियार्थ सन्निकर्षजन्यं ज्ञानं प्रत्यक्षम्"
"अनुमीयते अनेन प्रमाणेन इत्यनुमानम्"
"आप्तवाक्यं शब्द: या आप्तोपदेश: शब्द:"
स्वकर्मण्यभियुक्तो यो रागद्वेषविवर्जित: ।
निर्वैर: पूजित: सद्भिराप्तो ज्ञेय: स तादृशा ॥ (आचार्य ईश्वर कृष्ण)
"विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम्" (पा.यो.सू. 1/8)
"शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्प:" (पा.यो.सू. 1/9)
'अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रा" (पा.यो.सू. 1/10)
'अनुभूतविषयाऽसम्प्रमोष: स्मृति:' (पा.यो.सू. 1/11)

7.7 सारांश

प्रस्तुत पाठ में हमने चित्त की वृत्तियों के बारे में विस्तृत चर्चा करी है। हमने जाना कि वृत्ति शब्द की उत्पत्ति कैसे हुई है? चित्त वृत्तियां क्या होती है? चित्त वृत्तियों के कितने प्रकार होते है? वृत्तियां अपने स्वभाव से कितने प्रकार की होती है? किसी प्रकार की वृत्तियां क्लेश उत्पन्न करती है? और किस प्रकार के वृत्तियां क्लेश उत्पन्न नहीं करती है?

अतः हम कह सकते है कि चित्त की वृत्तियाँ योग मार्ग में बाधक है इनका निरोध परम आवश्यक है यह निरोध की स्थिति ही साधक को परम लक्ष्य तक पहुंचाने में सहायक होती है। इसके लिये वृत्तियों से पूर्ण परिचित होना अत्यावश्यक होता है। प्रस्तुत पाठ में पाठकों की शंका का पूर्ण समाधान किया गया है। नये विषय को लेकर पाठकों में होने वाली जिज्ञासा की संतुष्टि प्रस्तुत पाठ में सम्भव हैं ।

7.8 शब्दावली

१) अक्लिष्ट : जो क्लेश उत्पन्न न करें
२) मूर्छा : बेहोशी
३) तटस्थ : स्थिर
४) विपर्यय : उल्टा, विपरित ज्ञान

7.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. सरस्वती विज्ञानानन्द (2003), योग विज्ञान | योग निकेतन ट्रस्ट मुनि की रेति, ऋषिकेश।

2. जगदीशचन्द्र मिश्र 2012, भारतीय दर्शन । चौखम्भा सुर भारती प्रकाशन, वाराणसी।

7.10 सहायक ग्रन्थ

1 व्यास महर्षि (2003), भगवदगीता। गीता प्रेस गोरखपुर।

2 योगेन्द्र पुरूषार्थी (1999), वेदो में योग विद्या । यौगिक शोध संस्थान, हरिद्वार।

3 पाण्डेय राजकुमारी (2008), भारतीय योग परम्परा के विविध आयाम। राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

4 परमहंस स्वामी अनन्त भारती (संवत 2056), योगदर्शन । स्वामी केशवानन्द योग संस्थान, दिल्ली-85

7.11 बोध प्रश्नोत्तर

१) दो । कर्मेन्द्रिया और ज्ञानेन्द्रियाँ ।

२) पाँच - हाथ, पैर, मुख, गुदा, जननेन्द्रियाँ ।

३) पाँच - आँख, कान, नाक, जिहवा, त्वचा ।

४) पाँच ।

५) तीन – प्रत्यक्ष, प्रमाण, आगम ।

६) विपर्यय।

७) सत्त्व ।

7.12 अभ्यास प्रश्न

1. प्रमाण वृत्ति से आप क्या समझते हैं ?

2. विकल्प वृत्ति से आप क्या समझते हैं ?

3. निद्रा व स्मृति से आप क्या समझते हैं ?

4. वृत्ति शब्द का अर्थ स्पष्ट करें ।

5. क्लिष्ट-अक्लिष्ट वृत्तियों को विस्तार से समझायें ।

6. वृत्ति क्या है ? स्पष्ट करते हुए महर्षि पतञ्जलि द्वारा वर्णित वृत्ति के प्रकारों को विस्तार से समझायें ।

अष्टम पाठ
चित्तवृत्ति निरोध के उपाय

पाठ संरचना

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 साधक के स्तर

8.4 अभ्यास वैराग्य

8.4.1 अभ्यास

8.4.2 वैराग्य

बोधप्रश्न

8.5 ग्रन्थ का मूलपाठ

8.6 सारांश

8.7 शब्दावली

8.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

8.9 सहायक ग्रन्थ

8.10 बोध प्रश्नोत्तर

8.11 अभ्यास प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

पूर्व पाठ में हमने चित्तवृत्तियों के संदर्भ में अध्ययन किया था। प्रस्तुत पाठ में महर्षि पातंजलि द्वारा वर्णित चित्तवृत्तियों के संदर्भ में उनके निरोध हेतु उपायों का वर्णन किया जा रहा है। अभ्यास से तमोगुण की और वैराग्य से रजोगुण की निवृत्ति होती है। अतः स्पष्ट है कि जो वृत्तियाँ महर्षि पतंजलि ने बताई है, उनका निरोध करने के लिए उन्होंने दो उपाय अभ्यास और वैराग्य बताया है। ये वे उपाय हैं, जिनके द्वारा वृत्तियाँ निरूद्ध हो जाती हैं। प्रस्तुत अध्याय में हम अभ्यास व वैराग्य के संदर्भ में अध्ययन करेंगे।

8.2 उद्देश्य - प्रस्तुत इकाई में आप जानेंगे-

- ❖ अभ्यास का स्वरूप।
- ❖ वैराग्य का स्वरूप।
- ❖ अभ्यास व वैराग्य का परिणाम का स्वरूप।

8.3 साधक के स्तर

महर्षि ने योग साधना के लिये साधक के स्तर के लिये भी उपाय बताये हैं। उन्होंने तीन स्तर के साधकों का वर्णन किया है, और उन्हीं के अनुरुप साधना भी बताई है, जो कि इस प्रकार है-

(1) उच्च स्तर के साधकों के लिये - अभ्यास वैराग्य

(2) मध्यम स्तर के साधकों के लिये - क्रिया योग

(3) निम्न स्तर के साधकों के लिये - अष्टांग योग

अभ्यास वैराग्य : समस्त वृत्तियों का निरोध करने के लिये दोनों साधनों की अत्यन्त आवश्यकता होती है। किसी एक के द्वारा निरोध सम्भव नहीं होता है। अभ्यास का अर्थ होता है- क्रिया को बार-2 दोहराना। वैराग्य का अर्थ होता है- राग (आसक्ति) रहित होना। इसे मानसिक तटस्थता की अवस्था कहा जा सकता है।

क्रिया योग : महर्षि पतंजलि द्वारा बताये गये किया योग में उन्होने तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान का वर्णन किया है। उन्होंने ये भी बताया है कि इनके अभ्यास से साधक योग के परम लक्ष्य प्राप्त करता है।

अष्टांग योग : महर्षि पतंजलि द्वारा बताये गये अष्टांग योग में 8 अंगों का वर्णन किया गया है। जिसमें यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार इन पांचों बहिरंग साधनों में अभ्यास एवं धारणा, ध्यान, समाधि इन अन्तरंग साधनों में वैराग्य की सिद्धि परमावश्यक होती है। इस प्रकार से हर तरह के साधक जो अपना कल्याण चाहते हैं वे उपरोक्त लिखित साधन विधियों द्वारा योग के परम लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं। आइये इन्हें विस्तार से जानें –

8.4 अभ्यास वैराग्य

चित्त वृत्तियों का प्रवाह परम्परागत संस्कारों के बल से संसारिक भोगो की ओर चलता रहता है उस प्रवाह को रोकने का उपाय वैराग्य है और उसे कल्याण मार्ग में ले जाने का उपाय अभ्यास है। महर्षि पतंजलि ने चित्तवृत्ति निरोध हेतु अभ्यास व वैराग्य का वर्णन किया है, जो इस प्रकार है- **"अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः"** (पा.यो.सू. 1/12) से अर्थात अभ्यास और वैराग्य से उनका (वृत्तियों) का निरोध होता है

महर्षिव्यास - "चित्त नामक नदी दोनों दिशाओं में बहती है । वह कल्याण के ओर भी बहती है और पाप की ओर भी। इनमें वैराग्य द्वारा विषयस्रोत कम हो जाता है और विवेक दर्शन के अभ्यास द्वारा विवेक स्रोत उद्घाटित होता है।" (व्यास भाष्य सूत्र 1/12)

अभ्यास से चित्त को विवेकज्ञान की ओर एकाग्र किया जाता है तथा वैराग्य नामक उपाय से चित्त की अविवेकपूर्ण विषयोन्यमुखता दूर की जाती है। ये दोनों उपाय ऐसे हैं, जो बहुत महत्वपूर्ण हैं, जिनका वर्णन **श्रीकृष्ण ने गीता** में भी किया है-

असंशयं महाबाहो, मनोदुर्निग्रहं चलम् । अभ्यासेन तु कौंतेय वैराग्येण च ग्रह्यते (गीता 6/35)

अर्थात मन को वश में करने के लिए अभ्यास और वैराग्य दोनों आवश्यक है अतः ये दोनों उपाय अत्यंत आवश्यक हैं। तभी हम योग मार्ग में आगे बढ़ते हुए सफलता या लक्ष्य प्राप्ति कर सकते हैं।

इसके पश्चात् महर्षि पतंजलि ने चित्तवृत्ति निरोध हेतु अभ्यास का वर्णन किया है, जो इस प्रकार है-

8.4.1 अभ्यास

"तन्त्र स्थितौ यत्नोभ्यासः" (पा.यो.सू. 1/13)

अर्थात उन दोनों में से (चित्त की) स्थिरता के लिए जो प्रयत्न करना है वह, अभ्यास है।

महर्षि व्यास - (निरोध के प्रवाह का नाम स्थिति है।) उसी स्थिति के लिए जो प्रयत्न या उसी स्थिति के संपादन करने की इच्छा से उसके साधन का जो बार-बार अनुष्ठान किया जाता है, वह अभ्यास है।

अतः स्पष्ट है कि यम-नियमादि अर्थात अष्टांग योग की सहायता से चित्त की निरूद्धावस्था प्राप्त की जा सकती है। यही अभ्यास का रूप है। अभ्यास एक ऐसी विद्या है। जिसके द्वारा हम असंभव प्रतीत होने वाले कठिन कार्य को भी सरलता से कर सकते है। कवि रहीम ने भी कहा है-

"करत करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।

रसरी आवत जात है, सिल पर परत निसान ।।"

अर्थात अभ्यास करते करते एकदम जड़मति भी सुजान हो जाते हैं। कुछ उसी तरह से जैसे निरंतर रस्सी की रगड़ से पाषाण पर भी निशान पड़ जाते हैं।

महर्षि पतंजलि ने सूत्र 1/13 में अभ्यास की चर्चा के पश्चात अगले सूत्र में अभ्यास की अवधि व उसे करने के नियम को बताया है, जो इस प्रकार है-

"स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढभूमिः" (पा.यो.सू. 1/14)

अर्थात किंतु यह अभ्यास दीर्घकाल, निरंतर और आदरपूर्वक सेवित होने पर दृढभूमि होता है। इन्हें हम इस प्रकार समझ सकते हैं-

1) **दीर्घकाल सेवित -** योगांगों का अभ्यास लम्बे समय तक करते रहना चाहिए। धैर्यपूर्वक दीर्घकाल तक करते रहना चाहिए। यहां दीर्घकाल का तात्पर्य कुछ वर्ष या माह नहीं बल्कि साधकों की स्थिति के अनुसार जन्म जमांतर तक भी हो सकता है।

2) **नैरन्तर्य सेवित -** अभ्यास को निरंतर व्यवहार रहित करते रहना चाहिए, ऐसा न हो कि कभी किया और कभी छोड़ दिया। जो बीच में निराशाग्रस्त नहीं होता वही योग मार्ग पर अग्रसर होता है।
3) **सत्कार सेवित-** अभ्यास, श्रद्धापूर्वक लगन एवं उत्साह के साथ करना चाहिए । श्रद्धा के अभाव में निरंतर अभ्यास में शिथिलता आने लगती है।

महर्षि पंतजलि ने दूसरे उपाय के रूप में वैराग्य का वर्णन किया है जो इस प्रकार है-

8.4.2 वैराग्य

वैराग्य शब्द का तात्पर्य विरक्ति है। योग सूत्रानुसार वैराग्य के दो भेद है - अपर वैराग्य व पर वैराग्य

क). अपर वैराग्य :

"द्रष्टानुश्रविकविषय वितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम् ।" (पा.यो.सू. 1/15)

अर्थात देखे हुए सुने हुए विषयों में जो पूर्णरूपेण तृष्णारहित है, ऐसे चित्त की वशीकार संज्ञा (अवस्था) को ही वैराग्य कहते हैं। उदाहरण मनुष्य के मन में दृश्य और अदृश्य सुखद वस्तुओं कामना रहती है। उन वस्तुओं में दोष देख उनमें आसक्ति न रखना ही अपर वैराग्य है।

ख). पर वैराग्य

"तत्परं पुरूषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम्' (पा.यो.सू. 1/16)

अर्थात पुरूष के ज्ञान से जो प्रकृति के गुणो में तृष्णा का सर्वथा अभाव होता है, उसे पर वैराग्य कहते है।

अपर वैराग्य द्वारा साधक दृष्ट एवं अदृष्ट विषयों के प्रति तृष्णा रहित हो जाता है इससे प्रज्ञात समाधि सिद्ध होती है। इस अपर वैराग्य के दृढ होने पर विवेकख्याति (विवेकज्ञान) का अभ्युद्य होता है। इस ख्याति में जैसे-जैसे अभ्यास बढ़ता है वैसे-वैसे चित्त निर्मल हो जाता है एवं योगी अंत में विवेकख्याति से भी विरक्त हो जाता है, यहीं पर वैराग्य है। इस पर वैराग्य से असंप्रज्ञात समाधि सिद्ध होती है।

महर्षिव्यास- दिव्य विषयों और अदिव्य विषयों के सम्मुख उपस्थित होने पर भी विषयों में दोष देखने वाले चित्त में विवेक बल से जब भोग न करने की वृत्ति होती है, उसे ही वैराग्य कहते है। इसी को वशीकार संज्ञा कहते हैं ।

महर्षि व्यास ने चार प्रकार के वैराग्य बताये हैं-

1) यतमान

2) व्यतिरेक

3) एकेन्द्रिय

4) वशीकार

1. यतमान- जिन विषयों के प्रति अपनी आसक्ति हो, तो उनके दोषों एवं दूषित परिणामों पर विचार या चिंतन करने के उपरांत उनके प्रति घृणा का भाव उत्पन्न हो जाए तो वह यतमान वैराग्य कहलायेगा।

2. व्यतिरेक - व्यतिरेक वैराग्य वह है जिसमें अभी तक भोगे गये भोगों को व्यर्थ माना जाता है और उसी को पर्याप्त मानकर संतोष किया जाता है।

3. एकन्द्रिय - जब व्यक्ति परिस्थितियों के कारण विवश हो जाए अथवा उसकी इन्द्रियां शिथिल हो जाए अथवा भोगों का मिलना कष्ट साध्य हो, ऐसी स्थिति मे विषयों के उपरांत हो जाना एकेन्द्रिय वैराग्य है।

4. वशीकार- देखे, सुने, दिव्य विषयों के उपस्थित होने पर भी उन्हें वैचारिक दृष्टि से आप्तोदेश से दुःखकारक समझकर तृष्णा का परित्याग करके, वासनाओं को नियंत्रित करके मन को भटकाव से रोकना।

बोधप्रश्न

१) महर्षि पतञ्जलि ने योग साधना के लिए उच्च स्तर के साधकों को कौनसी साधना बताई हैं ?

२) निम्न स्तर के साधकों महर्षि पतञ्जलि ने कौनसी साधना बताई हैं ?

३) 'तत्र स्थितौ.....' इस सूत्र को पूरा कीजिए ।

४) योग सूत्रानुसार वैराग्य के कितने भेद हैं ?

५) महर्षि व्यास ने वैराग्य के कितने भेद बताए हैं ?

8.5 ग्रन्थ का मूलपाठ

अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः (पा.यो.सू. 1/12)

असंशयं महाबाहो, मनोदुर्निग्रहं चलम् ।

अभ्यासेन तु कौंतेय वैराग्येण च ग्रह्यते (गीता **6/35**)

तन्त्र स्थितौ यत्नोभ्यासः (पा.यो.सू. **1/13**)

करत करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।

रसरी आवत जात है, सिल पर परत निसान ।। (रहिम)

स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढभूमिः (पा.यो.सू. **1/14**)

दृष्टानुश्रविकविषय वितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम् । (पा.यो.सू. 1/15)

तत्परं पुरूषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम् (पा.यो.सू. 1/16)

8.6 सारांश

चित्त की निरूद्धावस्था प्राप्त करने के लिए उस वृत्ति का निरंतर अनुष्ठान किया जाता है यहीं अभ्यास है। इस अभ्यास के द्वारा ही मनुष्य व पशु पक्षी आदि सभी जीव अपने आपको साध लेते हैं। अर्थात असंभव कार्य भी कर डालते है। इसके लिए उत्साह का होना आवश्यक है। अभ्यास और वैराग्य के द्वारा चित्त की वृत्तियाँ निरूद्ध हो जाती हैं, केवल एक उपाय के होने से उसी प्रकार चित्त वृत्तियाँ निरूद्ध नहीं होती, जिस प्रकार एक पहिये से रथ नहीं चल सकता।

योग में पुरुष को चेतना की उच्चतम अभिव्यक्ति मानते हैं जो मन की वृत्तियों तथा प्रकृति से एकदम निर्लिप्त होता है। सामान्यतः हमारी चेतना मन, बुद्धि और इन्द्रियों द्वारा संचालित होती है। ध्यान की अवस्था में चेतना गहन तल पर कार्यशील होती है, परन्तु उसमें अहम् बोध बना रहता है। धीरे-2 अभ्यास द्वारा वह भी समाप्त हो जाता है। गुणों से मुक्ति होने पर गुणों से सम्बन्धित अवस्थाओं का प्रभाव उन पर नहीं पड़ता। साधक को अपने भीतर केवल पुरुष का ही बोध रहता है। धीरे-2 आगे बढ़ते हुए वह मुक्ति को प्राप्त कर लेता है। प्रस्तुत प्रक्रिया को ही विस्तार से पाठ्य सामग्री के अन्दर समझाया गया है। हम कह सकते हैं कि अभ्यास और वैराग्य योग साधना में परम आवष्यक तत्व हैं, इनके अभाव में योग तत्व की प्राप्ति सम्भव नहीं है।

8.7 शब्दावली

१) वैराग्य : आसक्ति रहित ।
२) प्रत्याहार : इन्द्रिय संयम ।
३) क्रियायोग : तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान ।
४) बहिरंग : यम,नियम,आसन,प्राणायाम,प्रत्याहार ।
५) सिल : पत्थर ।
६) रसरी : रस्सी ।
७) वितृष्णा : तृष्णा रहित ।
८) वशीकार : वश में होना ।
९) विवेकख्याति : ज्ञान प्राप्ति की उच्च स्थिति ।

8.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. सरस्वती विज्ञानानन्द (2003), योग विज्ञान | योग निकेतन ट्रस्ट मुनि की रेति, ऋषिकेश।
2. निरजनानन्द (1994), योग दर्शन | श्री पंचदशनाम, परमहंस अलखवाड़ा, देवधर,विहार ।

3. जगदीशचन्द्र मिश्र 2012, भारतीय दर्शन । चौखम्भा सुर भारती प्रकाशन, वाराणसी।

8.9 सहायक ग्रन्थ

1 व्यास महर्षि (2003), भगवदगीता। गीता प्रेस गोरखपुर।

2 योगेन्द्र पुरूषार्थी (1999), वेदो में योग विद्या । यौगिक शोध संस्थान, हरिद्वार।

3 पाण्डेय राजकुमारी (2008), भारतीय योग परम्परा के विविध आयाम। राधा पब्लिकेशन्स, दिल्ली।

4 परमहंस स्वामी अनन्त भारती (संवत 2056), योगदर्शन । स्वामी केशवानन्द योग संस्थान, दिल्ली-85

8.10 बोध प्रश्नोत्तर

१) अभ्यास-वैराग्य ।

२) अष्टांग योग ।

३) यत्नोऽभ्यास: ।

४) दो – अपर वैराग्य व पर वैराग्य ।

५) चार ।

8.11 अभ्यास प्रश्न

1. अभ्यास से आप क्या समझते हैं ? यह चित्त वृत्तियों के निरोध में किस प्रकार सहायक है ?

2. वैराग्य से आप क्या समझते है ? चित्त वृत्ति निरोध में यह किस प्रकार सहायक है ?

3. महर्षि पतंजलि द्वारा बताए गए चित्त वृत्ति निरोध के उपायों का वर्णन करें।

4.पर वैराग्य क्या है ?

5. अपर वैराग्य क्या है ? स्पष्ट करें ।

6. योग साधना में अभ्यास-वैराग्य की भूमिका स्पष्ट करें ।

नवम पाठ
योग अंतराय एवं चित्त प्रसादन के उपाय

पाठ संरचना

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 योग अन्तराय

बोधप्रश्न

9.4 योग उप अन्तराय

9.5 चित्त प्रसादन के उपाय

9.5.1 चार भावनाएं

9.5.2 प्राणायाम

9.5.3 दिव्य विषय

9.5.4 ज्योतिष्मती

9.5.5 वीतराग पुरुषों का ध्यान

9.5.6 स्वप्न

बोधप्रश्न

9.6 ग्रन्थ का मूलपाठ

9.7 सारांश

9.8 शब्दावली

9.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

9.10 सहायक ग्रन्थ

9.11 बोध प्रश्नोत्तर

9.12 अभ्यास प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत पाठ में हम चित्त विक्षेप एवं चित्त प्रसादन के उपायों को विस्तार से अध्ययन करेंगे । योग साधना के नियमित अभ्यास के द्वारा साधक का मन अन्तर्मुखी होता है। और उसके साधना मार्ग में आने वाले व्यवधानों को वह धीरे-धीरे दूर कर साधना के उच्चतम लक्ष्य को प्राप्त करता है। परन्तु इसी के साथ-साथ साधना अभ्यास के दौरान इस मार्ग में अनेकों बाधाऐं भी आती है जो साधन में रूकावट उत्पन्न करती है। यदि ये बाधाऐं साधक को साधना छोड़ने के लिये दबाव डालती है और यदि साधक इनसे प्रभावित हो जाता है तो उसकी

साधना बीच में ही छूट जाती है और वह साधना की पूर्णता को प्राप्त करने में असमर्थ हो जाता है, और यदि साधक इन बाधाओं से प्रभावित न होकर इन पर विजय प्राप्त कर लेता है तो वह अपने लक्ष्य को पा जाता है।

प्रस्तुत पाठ में नौ प्रकार के विघ्नों का वर्णन करते हैं और उनके साथ-साथ होने वाले दूसरे अन्य पाँच उप विघ्नों का भी वर्णन करते हैं। उन विघ्नों को दूर करने हेतु वह साधक की योग्यतानुसार विभिन्न उपायों का वर्णन करते हैं। इन्हीं विघ्नों को योगान्तराय तथा इन्हें दूर करने के उपाय को चित्त प्रसादन का उपाय कहा है। प्रस्तुत पाठ में हम योग अंतराय एवं चित्त प्रसादन के उपाय के संदर्भ में अध्ययन करेंगे।

9.2 उद्देश्य - प्रस्तुत इकाई में आप जानेंगे -

- ❖ योग अन्तराय का अर्थ।
- ❖ चित्त अन्तराय के परिणाम।
- ❖ चित्त प्रसादन के उपाय।
- ❖ चित्त प्रसादन के परिणाम।

9.3 योग अन्तराय

अंतराय का अर्थ है विघ्न या विक्षेप अर्थात चित्त में जो भी विक्षेप होते हैं, चित्त अंतराय कहते हैं अथवा योग के विघ्नों को चित्त विक्षेप या अन्तराम कहते हैं। महर्षि पतंजलि नेचित्त को साक्षात् विक्षिप्त करने वाले विघ्नों को ही अन्तराम कहा है। वैसे तो, शब्दादि विषय और तजन्य कोई मोह भी महान् योगान्तराम हैं पर वे परम्परया चित्त को विक्षिप्त करते हैं साक्षात् नहीं अतः उनकी योगान्तरामों में गणना नहीं की गई। "अन्तः आयन्ति इति अन्तरायाः" इस व्युत्पत्ति के अनुसार अन्त-राय उन्हें कहते हैं जो योगाभ्यास के समय बीच-बीच में आ खड़े होते हैं और चित्त की एकाग्रता को भंग करते हैं।

महर्षि पतंजलि ने योगान्तरायों की संख्या नौ बताई है—व्याधि स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अवरति, भ्रान्ति दर्शन, अलब्धभूमिकत्व और अनवस्थितत्व।

"व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रांतिदर्शनालब्ध-भूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तराया:"

(पा.यो. सू 1/30)

1. व्याधि : धातु रस और इन्द्रियों की विषमता से शारीरिक अव्यवस्था को व्याधि कहते हैं। वात, पित्त और कफ की अनावश्यक वृद्धि और अल्पता धातु वैषम्यता कहलाती है। अश्ति पीत अन्न जलादि का सम्यरूपेण परिपाक होना रस वैषम्य है। नेत्र श्रोत्रादि इन्द्रियों की शक्ति में कमी होना करण वैषम्य है। धातु, रस और करण इन तीनों के संतुलित अवस्था में रहने से शरीर नीरोग रहता है। शारीरिक अस्वास्थ्य के कारण योग साधना में बाधा पहुंचती है क्योंकि चित्त व्याधि नाशार्थ चिन्तन रहने के कारण विक्षिप्त रहता

2. स्त्यान : चित्त की अकर्मण्यता स्त्यान कहलाती है। शरीर की रुग्णावस्था में भी साधक बलवती इच्छा से प्रेरित होकर योगसाधनरत रह सकता है। परन्तु चित्त की अकर्मण्यता में योगानुष्ठान सम्भव नहीं है ।

3. संशय : गुरू द्वारा उपदिष्ट योगमार्ग की उपयुक्तता तथा अनुपयुक्तता का निश्चय न कर पाना संशय कहलाता है । "यह मार्ग ठीक या गलत" अथवा "इस असिधर सम योग का अनुष्ठान में कर सकूँगा या नहीं" इत्याकारक संशय ग्रस्त साधक योगानुष्ठान में प्रवृत नहीं हो सकता। संशयात्मा का विनाश अवश्यं भावी है । अतः संशय योग का महान् अन्तराय है।

4. प्रमाद : समाधि के साधनों में उत्साह का अभाव प्रमाद होता है। अनुत्साह के कारण विक्षिप्त चित्त योगसाधना का मध्य में ही त्याग कर बैठता है। समाधि की परमावस्था तक दृढ़ उत्साह आवश्यक है। प्रमाद योग का अन्तराय है।

5. आलस्य : कफ की अनावश्यक वृद्धि से तथा कामभावनाओं से चित्त में तमोगुण की वृद्धि होती है। तमोगुण के आधिक्य से शरीर और चित्त भारीपन का अनुभव करते हैं। इस भारीपन से आलस्य बढ़ता है। जिससे योगसाधना में प्रवृति नहीं होती । अतः आलस्य योग का प्रतिपक्षी है ।

6. अविरति : विषयों के उपभोग से चित्त की तृष्णा बढ़ती है। तृष्णा की वृद्धि से योगसाधना में अनुरिक्त नहीं होती। अनुराग का यह अभाव ही अविरति है। अविरति योग का विघ्न है ।

7. भ्रान्तिदर्शन : "संसार दुःख का कारण नहीं"; "योग साधना से दुःखों का क्षय नहीं हो सकता" इत्याकारक विपरीत ज्ञान भ्रान्तिदर्शन कहलाता है। भ्रमात्किा बुद्धि साधक को योगमार्ग व्युत करती है। अतः भ्रान्तिदर्शन योगान्तराय है।

8. अलब्ध भूमिकत्व : योगशास्त्र में समाधि की चार अवस्थाएं बतायी गयी हैं। मधुमती, मधु प्रतीका, प्रज्ञाज्योति, तथा अतिक्रान्तभावनीय। ये चारों अवस्थाएं योग की भूमिका कहलाती हैं। निरन्तर अभ्यास करने पर भी यदि साधक योग की प्रथम भूमि को भी प्राप्त नहीं करता तो यह असफलता उसे उत्साहहीन बना देती है। योग साधना से ऊब कर वह उसे छोड़ बैठता है। अतः अलब्धभूमिकत्व योगांन्तराय है।

9. अनवस्थिति : योग की मधुमती आदि चार भूमियों में से प्रथम भूमि को ही प्राप्त करके जो साधक स्वयं को कृत्यकृत्य मान लेता है यह आगे समाधि साधन से विरत हो जाता है। अतः प्रथम भूमि की प्राप्ति होने पर समाधि साधन में चित्त का अवस्थित न रहना अनवस्थिति है और वह योगान्तराय है । स्पष्ट है कि ये सभी विघ्न ऐसे हैं जो कि चित्त में विक्षेप रूप में उत्पन्न होकर साधना मार्ग में आगे बढ़ने नहीं देते हैं। अतः आवश्यकता है कि हमें इन सभी को दूर करना चाहिए समर्पण भाव से चित्त एकाग्र करनी चाहिए।

बोधप्रश्न

१) योग साधना के नियमित अभ्यास के द्वारा साधक का मन कैसा होता है ?

२) अन्तराय का अर्थ है ?

३) महर्षि पतञ्जलि ने योग अन्तरायों की संख्या कितनी बताई हैं ?

४) चित्त की अकर्मण्यता क्या कहलाती हैं ?

५) क्फ की अनावश्यकता वृद्धि से तथा कामभावनाओं से चित्त में किस गुणों की वृद्धि होती है ?

६) गुरु द्वारा उपदिष्ट योग मार्ग की उपयुक्ता तथा अनुपयुक्ता का निश्चय न कर पाना क्या कहलाता है ?

9.4 योग उप अन्तराय : - **महर्षि पतंजलि** ने इन चित्त अंतरायों के अतिरिक्त अन्य विघ्नों की भी चर्चा की है-

"दुःखदौर्मनस्यांगमेजयत्वश्वासप्रश्वासा विक्षेपसहभुवः" (पा.यो. सू 1/31)

दुःख, दौर्मनस्य, अंगमेजयत्व, श्वास तथा प्रश्वास ये पाँच विघ्न भी विक्षेपों के साथ रहते है। इनका वर्णन इस प्रकार है-

1.दुःख- अर्थात् कष्ट; ये तीन प्रकार के होते है- आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक।

क) आध्यात्मिक दुःख - राग, द्वेष, काम-क्रोध, भय-चिंता आदि होने से मन, इंद्रियां और शरीर मे जो विकलता एवं वेदना होती है, उसी का नाम आध्यात्मिक दुःख है।

ख) आधिभौतिक दुःख - शत्रु, दस्यु, शेर, सर्प, मच्छर आदि द्वारा होने वाले कष्टों को आधिभौतिक दुःख कहते हैं।

ग) आधिदैविक दुःख - आंधी-तूफान, भूकम्प, बिजली, सर्दी-गर्मी आदि दैवी कारणों से जो पीड़ा होती है, उसे आधिदैविक दुःख कहते हैं।

2. दौर्मनस्य- मन की कोई इच्छा पूर्ण न होने से मन में जो क्षोभ उत्पन्न होता है।

3. अंगमेजयत्व- शरीर के अंग-अवयवों का कंपित होना।

4. श्वास- श्वास प्रक्रिया पर नियंत्रण न हो पाने के कारण बाहर की वायु का नासिका मार्ग के अंदर प्रवेश कर जाना अर्थात् बार्हिकुंभक में विघ्न हो जाना।

5. प्रश्वास- न चाहने पर भी (यौगिक क्रियाओं के समय) अंदर की वायु का बाहर निकल जाना (अंतकुंभक में विघ्न हो जाना) प्रश्वास ।

इन पाँच विघ्नों को उपविक्षेप भी कहते हैं, क्योंकि मुख्य विक्षेप नौ हैं।

स्पष्ट है कि पूर्व वर्णित विक्षेपों के अलावा उनके रहने पर ही ये उपविक्षेप आते है अतः इन्हें या तो दूर करना चाहिए अन्यथा स्वामी विवेकानंद जी के अनुसार साधना में ही रम कर उस ओर ध्यान नही देने से भी साधना द्वारा वे दूर हो जायेंगे।

9.5 चित्त प्रसादन के उपाय

प्रसादन का सामान्य अर्थ है- निर्मलता। अर्थात् चित्त प्रसादन का तात्पर्य है - चित्त को निर्मल या एकाग्र करने का उपाय। महर्षि पतंजलि ने चित्त को निर्मल करने के अनेक उपायों का वर्णन किया है, जिसे चित्त प्रसादन कहा गया है। ये उपाय हैं-

9.5.1 चार भावनाएं
9.5.2 प्राणायाम
9.5.3 दिव्य विषय
9.5.4 ज्योतिष्मती
9.5.5 वीतराग पुरुषों का ध्यान
9.5.6 स्वप्न

9.5.1 चार भावनाएं : **महर्षि पतंजलि** के अनुसार-

"मैत्री करूणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावानातश्चित्तप्रसादनम्" (पा.यो. सू 1/33)

अर्थात सुख दुःख पुण्यापुण्य, पुण्यात्मा व पाप आत्मा क्रमशः जिन -गुणों- के विषय हैं। ऐसे मैत्री, करूणा, मुदिता, प्रसन्नता एवं उपेक्षा की भावना से चित्त निर्मल हो जाता है। आनंदित व्यक्ति के प्रति मैत्री, दुखी व्यक्ति के प्रति करूणा, पुण्यवान के प्रति मुदिता तथा पापी के प्रति उपेक्षा, इन भावनाओं का संवर्धन करने से मन शांत हो जाता है।

व्यास भाष्य के अनुसार- इस प्रकार भावना करते करते शुक्ल धर्म उत्पन्न होता है जिससे चित्त प्रसन्न व निर्मल होता है। प्रसन्न चित्त एकाग्र होकर स्थितिपद पाता है।

क) मैत्री - सुखी के प्रति मैत्री का भाव रखना चाहिए क्योंकि सामान्यतया लोग किसी को सुखी देखकर ईर्ष्या करते हैं।

ख) करूणा - दुःखी के प्रति करूणा का भाव होना चाहिए तथा उनकी सहायता करनी चाहिए।

ग) मुदिता - अर्थात् प्रसन्नता। अच्छा कार्य करने वाले पुण्यात्मा लोगों के प्रति प्रसन्नता का भाव, प्रशंसा, प्रोत्साहन देने का भाव होना चाहिए।

घ) उपेक्षा - दुरात्मा आदि जो हमें कष्ट पहुंचाने की चेष्टा करते है उनके प्रति क्रोध या बदले की भावना न रखकर उपेक्षा व उदासीनता का भाव रखना चाहिए।

अर्थात जैसे सुखी जनों में मैं सुखी हूँ, ऐसा समझ कर उनके साथ प्रेम करें, न कि ईर्ष्या अर्थात उनकी बड़ाई का सहन न करना। दुःखियों को देख कर इनके दुःख की निवृत्ति कैसे हो? इस प्रकार दया ही करें न कि घृणा व तिरस्कार | पुण्य आत्माओं में उनके पुण्य की बड़ाई करके अपनी प्रसन्नता ही प्रकट करें, पापियों में उदासीनता व उपेक्षा धारण करें अर्थात उनके पाप में सम्मति प्रकट करें न कि उनसे द्वेष करें।

जब इस प्रकार मैत्री आदि की भावना करने से चित्त प्रसन्न व निर्मल होता है, तब इससे समाधि प्रकट होती है इनके होने पर समाधि प्राप्त नही की जा सकती क्योकि ये चित्त के मल-विघ्न हैं।

9.5.2 प्राणायाम : प्राणायाम को दूसरे उपाय के रूप में महर्षि पतंजलि ने बताया है-

प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य (पा.यो. सू 1/34)

अर्थात प्राण का बारम्बार प्रच्छर्दन - बाहर निकालने और विधारण-बाहर रोकने का प्रयास करने से भी चित्त निर्मल हो जाता है।

मानसिक स्थिति के अनुरूप हो। योगशास्त्र में वायु के पाँच प्रकार है-

1. प्राण 2. अपान 3. समान 4. उदान 5. व्यान।

1) प्राण वायु- प्राणवायु वह है जो हृदय से निकलकर नासिका तक विचरती है। यह श्वास को अंदर- बाहर ले जाती, खाए हुए भोजन को पचाती, पानी का स्वेद व मूत्र बनाती तथा वीर्य आदि का निर्माण करती है।

2) अपान वायु- यह नाभि से होकर पैरों तक परिभ्रमण करती है यह अपान वायु गुदा मार्ग से मल को, उपस्थ मार्ग से मूत्र का तथा अंडकोशों से वीर्य को ले जाती है।

3) समान वायु- यह नाभि से हृदय तक विचरण करती है। पचे हुए रस को समस्त अंगो में नाड़ियों के माध्यम से पहुंचाने का कार्य करती है।

4) व्यान वायु- इसका स्थान लिंगेंद्रिय से ऊपर माना गया है। समस्त नाड़ियों में रक्त का संचार व्यान वायु ही करती है।

5) उदान- यह कंठ से सिर तक संचरण करती है। शरीर को उठाये रखने का कार्य इसी का ही है।

9.5.3 दिव्य विषय : महर्षि पतंजलि के अनुसार-

"विषयवती वा प्रवृत्ति रूत्पन्ना मनसः स्थितिनिबंधनी ।" (पा.यो. सू 1/35)

विषयावली प्रवृत्ति उत्पन्न हो कर वह भी मन की स्थिति को बांधने वाली हो जाती है। अर्थातजब ध्यान के अभ्यास से (दिव्य विषयों का साक्षात कराने वाली) अतींद्रिय संवेदना उत्पन्न होती है, तो मन आत्म विश्वास पाता है और इसके कारण साधना में निरंतरता बनी रहती है।

9.5.4 ज्योतिष्मती :

"विशोका वा ज्योतिष्मती" (पा.यो. सूत्र 1/36)

अथवा इसके अतिरिक्त शोकरहित ज्योतिष्मति (प्रकाशवाला) वृत्ति मन को स्थिर करने वाली होती हैं। विषयवती प्रवृत्ति की भांति विषयों का वृत्ति में हृत्पद्म में मन को स्थिर किया जाता है।

यह विशोका प्रवृत्ति दो प्रकार की है- विषयवती तथा अस्मितामात्र । इन्हें ज्योतिष्मती कहा जाता है। इनके द्वारा, योगी का चित्त स्थितिपद प्राप्त करता है।

सभी करणों में या शरीर में फैले हुए अभिमान का केन्द्र हृदय है। हृदयदेश को लक्ष्य कर, सर्वशरीर को स्थिर कर, सर्वशरीर पर व्याप्त उस स्थिरता के बोध या प्रकाश भाव की भावना करनी पड़ती है।

9.5.5 वीतराग पुरुषों का ध्यान :

"वीतरागविषयं वा चित्तम्" (पा.यो. सूत्र 1/37)

अर्थात् वीतराग पुरूषों का विषय करने वाला चित्त भी स्थिर हो जाता है। अथवा वीतराग वह है जिसके सभी राग, द्वेष, आसक्ति, आकांक्षाए समाप्त हो चुकी है।

9.5.6 स्वप्न :

"स्वप्ननिद्राज्ञानालंबन वा" (पा.यो. सूत्र 1/38)

अर्थात् जो चित्त स्वप्न एवं निद्रा के ज्ञानवत अवलंबन करने वाला है, वह भी स्थिर हो सकता है।

महर्षि व्यास

"स्वप्रज्ञानालंबन निद्राज्ञानालंबनं वा तदाकारं

योगिनश्चित्तं स्थितिपदं लभत इति"

अर्थात् स्वप्न-ज्ञान तथा निद्रा-ज्ञान का आलंबन करने वाला चित्त भी स्थिति पद पाता है।

महर्षि पतंजलि ने स्वप्न के माध्यम से चित्त एकाग्र करने को कहा है। स्वप्न में कभी-कभी दिव्य अनुभूतियाँ होती हैं, वह दिव्य दृश्य दिखाई देते हैं अतः उन क्षणों को जाग्रतावस्था में रखकर उनका ध्यान करना चाहिए। सत्व गुण के प्रधान होने के कारण दिव्य संस्कार का प्रभाव चित्त पर पड़ता है। इस प्रकार वह चित्त में एकाग्रता उत्पन्न करता है। अतः स्वप्न व निद्रा का आलंबन भी लिया जा सकता है।

अंत में महर्षि पतंजलि साधक को सुविधानुसार ध्यान करने को कहते हैं। अर्थात्

"यथाभिमतध्यानाद्वा" (पा.यो. सूत्र 1/39)

अर्थात् जिसका जैसा अभिमत हो उसके ध्यान से भी। (मन स्थिर हो जाता है)

महर्षि व्यास - जो भी ईष्ट (अवश्य ही योग को लक्ष्य कर) है, उसका ध्यान करें। उसमें स्थिति लाभ करने पर अन्यत्र भी स्थिति लाभ होता है।

स्वामी विवेकानन्द - जो कोई भली वस्तु तुम्हें अच्छी लगे, जो स्थान तुम्हें पसंद हो, जो दृश्य या जो भाव तुम्हे बहुत अच्छा लगता हो, जिससे तुम्हारा चित्त एकाग्र हो जाता है, उसी का चिंतन करो।

इसलिए महर्षि पतंजलि ने अंत में साधक को अपने अनुसार चित्त स्थिर करने हेतु उपर्युक्त उपाय करने को कहा है, क्योंकि उससे भी चित्त स्थिर हो जाता है।

बोधप्रश्न

7) दु:ख कितने प्रकार के होते हैं ?
8) शत्रु, शेर, सर्प, मच्छर आदि द्वारा होने वाले कष्टों को कहते हैं ?
9) आंधी, तूफान, भूकम्प, बिजली गिरना, सर्दी-गर्मी आदि द्वारा होने वाला दु:ख क्या कहलाती हैं ?
10) मन की कोई इच्छा पूर्ण न होने से मन में जो क्षोभ उत्पन्न होता है, उसे कहते हैं ?
11) योग शास्त्र में प्राणवायु के कितने प्रकार हैं ?
12) जो कण्ठ से सिर तक संचरण करती है और शरीर को उठाये रखने का कार्य करती है, वह .....वायु हैं।

9.6 ग्रन्थ का मूलपाठ

"व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रांतिदर्शनालब्ध-भूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तराया:" (पा.यो. सू 1/30

"दु:खदौर्मनस्यांगमेजयत्वश्वासप्रश्वासा विक्षेपसहभुवः" (पा.यो. सू 1/31)

"मैत्री करूणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावानातश्चित्तप्रसादनम्" (पा.यो. सू 1/33)

प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य (पा.यो. सू 1/34)

"विषयवती वा प्रवृत्ति रूत्पन्ना मनसः स्थितिनिबंधनी ।" (पा.यो. सू 1/35)

"विशोका वा ज्योतिष्मती" (पा.यो. सूत्र 1/36)

"वीतरागविषयं वा चित्तम्" (पा.यो. सूत्र 1/37)

"यथाभिमतध्यानाद्वा" (पा.यो. सूत्र 1/39)

"स्वप्रज्ञानालंबन निद्राज्ञानालंबनं वा तदाकारं

योगिनश्चित्तं स्थितिपदं लभत इति" (महर्षि व्यास)

9.7 सारांश

चित्त अन्तराय हमारे चित्त की वृत्तियों के परिणाम हैं। योग मार्ग के अतिरिक्त हमारे व्यावहारिक जीवन में भी विभिन्न प्रकार की वृत्तियों के कारण विभिन्न विघ्न-बाधाएं आती रहती हैं। महर्षि पतंजलि ने अपने अन्तरायों में उन सभी विघ्नों को सम्मिलित कर लिया है, जो प्रत्येक के जीवन से संबंधित होती हैं। उन विघ्नों के फलस्वरूप होने वाले परिणाम के सन्दर्भ में भी वह स्पष्ट करते हैं और इन विघ्नों के समाधान हेतु मैत्री, करूणा, मुदिता, उपेक्षा व प्राणायाम, स्वप्न, निद्रा आदि विधियों का चित्त प्रसादन के रूप में वर्णन करते हैं और अंत में स्पष्ट करते हैं कि जिसका जैसा मत हो वह उसी के अनुरूप उपाय कर सकता है।

9.8 शब्दावली

१)	व्याधि	:	शारीरिक रोग
२)	स्त्यान	:	मानसिक आलस्य
३)	प्रमाद	:	लापरवाही
४)	अविरति	:	मोह, राग
५)	आलस्य	:	शारीरिक अकर्मण्यता
६)	भ्रान्तिदर्शन	:	जो सत्य नही है, उसको देखना
७)	दौर्मनस्य	:	मन की इच्छा पूर्ण न होने से मन में क्षोभ उत्पन्न होना
८)	उपेक्षा	:	नजर अन्दाज करना या उदासीनता
९)	प्रसादन	:	शुद्धि
१०)	अंगमेजयत्व	:	शरीर के अंग-अवयवों का कम्पित होना
११)	मुदिता	:	प्रसन्नता
१२)	वीतराग	:	राग-द्वेष रहित

9.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. सरस्वती विज्ञानानन्द (2003), योग विज्ञान | योग निकेतन ट्रस्ट मुनि की रेति,ऋषिकेश।

2. निरजनानन्द (1994), योग दर्शन | श्री पंचदशनाम, परमहंस अलखवाड़ा, देवधर,विहार ।

3. जगदीशचन्द्र मिश्र 2012, भारतीय दर्शन । चौखम्भा सुर भारती प्रकाशन, वाराणसी।

9.10 सहायक ग्रन्थ

1 योगेन्द्र पुरूषार्थी (1999), वेदो में योग विद्या । यौगिक शोध संस्थान, हरिद्वार।

2 पाण्डेय राजकुमारी (2008), भारतीय योग परम्परा के विविध आयाम। राधा पब्लिकेशन्स, दिल्ली।

3 परमहंस स्वामी अनन्त भारती (संवत 2056), योगदर्शन । स्वामी केशवानन्द योग संस्थान, दिल्ली-85

9.11 बोध प्रश्नोत्तर

१) अन्तर्मुखी ।

२) विघ्न या विक्षेप ।

३) नव ।

४) स्त्यान ।

५) तमोगुण ।

६) संशय ।

७) तीन ।

८) आधिभौतिक दु:ख ।

९) आधिदैविक दु:ख ।

१०) दौर्मनस्य ।

११) पाँच ।

१२) उदान ।

9.12 अभ्यास प्रश्न

1. महर्षि पतंजलि ने कितने चित्त अन्तराय बताये हैं ?

2. चित्त प्रसादन के उपाय कौन-कौन से हैं ?

3. चित्त प्रसादन की चार भावनाएँ कौन-कौन सी है।

4. स्त्यान विक्षेप को समझायें ।

5. व्याधि विक्षेप क्या है ? यह किस प्रकार से साधना में विघ्न हैं ।

6.विक्षेप सहभुव क्या हैं ? विस्तार से स्पष्ट करें ।

7. वीतराग पुरुषों का ध्यान करने से क्या चित्त प्रसादन हो सकता है ? स्पष्ट करें ।

दशम पाठ
पंचक्लेश एवं कर्माशय

पाठ संरचना

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 क्लेश का अर्थ एवं पंचक्लेश

10.3.1 अविद्या क्लेश

10.3.2 अस्मिता क्लेश

10.3.3 राग क्लेश

10.3.4 द्वेष क्लेश

10.3.5 अभिनिवेश क्लेश

10.4 कर्माशय

10.4.1 कर्माशय के प्रकार

10.4.1 कर्माशय के परिणाम

बोधप्रश्न

10.5 ग्रन्थ का मूलपाठ

10.6 सारांश

10.7 शब्दावली

10.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

10.9 सहायक ग्रन्थ

10.10 बोध प्रश्नोत्तर

10.11 अभ्यास प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

महर्षि पतंजलि द्वितीय अध्याय साधनपाद में क्रियायोग का स्वरूप, समाधि तथा क्लेश को तनु करने के लिए बताते हैं। क्रियायोग के वर्णन से पूर्व हम प्रस्तुत पाठ में पंचक्लेश व कर्माशय के संदर्भ में अध्ययन करेंगे परंतु महर्षिपतंजलि पंचक्लेश व कर्माशय का वर्णन क्रियायोग के बाद करते हैं। क्लेशों के संदर्भ में हम यहां उनका स्वरूप तथा उनकी अवस्थाओं के भेद का अध्ययन करेंगे। इसके पश्चात् महर्षि पतंजलि द्वारा वर्णित कर्माशय का भी अध्ययन करेंगे। जिसमें वे स्पष्ट करते हैं क्लेशों का कारण हमारे कर्म संस्कार ही हैं, जो कि भूत,

भविष्य और वर्तमान के कर्मफल के रूप में कर्माशय में विद्यमान होते हैं। पंचक्लेश एवं कर्माशय के संदर्भ में पा.यो.सू. से संबंधित विभिन्न टीकाएं एवं भाष्य जिन व्याख्याकारों ने की हैं, उनमें से कुछ का वर्णन भी प्रस्तुत पाठ में किया गया है ।

10.2 उद्देश्य - प्रस्तुत पाठ में आप जानेंगे -

- ❖ पंचक्लेश का स्वरूप।
- ❖ क्लेशों को दूर करने के उपाय ।
- ❖ अविद्या को समस्त क्लेशों का मूल क्यों जाना गया ?
- ❖ कर्माशय का स्वरूप ।

10.3 क्लेश का अर्थ एवं पञ्चक्लेश

क्लेशो का शाब्दिक अर्थ है- पीड़ा देना, सताना, दुःख देना। ये क्लेश ही सभी दुःखो का मूल कारण है। ये क्लेश हमारे चित्त में निवास करते है। जब चित्त के ये क्लेश बाह्य वातावरण के संपर्क में आते है तो चित्त में वृत्तियों को जन्म देते हैं। चित्त की इन्हीं वृत्तियों के कारण ही व्यक्ति बाह्य विषयों में लिप्त होकर अपने स्वयं के स्वरूप को भूल जाता है तथा विभिन्न प्रकार के दुःखों व बंधनो में जकड़ मूल कारण क्लेश ही है। जाता है। इन क्लेशों के कारण ही कर्माशय(चित्त) का निर्माण होता है। अर्थात कर्माशय के निर्माण का मूल कारण क्लेश ही है।

क्लेश द्वारा चित्तवृत्तियों का निर्माण होता है तथा इन वृत्तियों के कारण होने वाले कर्मों के फलस्वरूप सुख तथा दुःख की प्राप्ति ही हमारे कर्माशय का निर्माण करती है। इन्हीं कर्मों के सुख दुःख के फलस्वरूप व्यक्ति को जन्म तथा मृत्यु के चक्र में फंसकर संसार में दुःख भोगने पड़ते है।

क्लेश→बाह्य वातावरण→ चित्त वृत्ति→चित्त विक्षेप→संस्कार । इस प्रकार ये चक्र चलता रहता हैं ।

महर्षिपतंजलि ने पाँच प्रकार के क्लेशों का वर्णन किया है जो इस प्रकार है-

"अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशा: क्लेशा:" (पा.यो.सूत्र 2/3)

अर्थात् अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश ये पाँचों क्लेश है।

महर्षिव्यास - क्लेश अर्थात् विपर्यय। वे वृत्तिमान होकर गुणाधिकार को दृढ़ करते हैं, परिणाम को अवस्थापित करते हैं, कार्य कारण स्रोत को उद्भावित करते हैं।

स्वामी विवेकानंद - यह अविद्या ही हमारे दुख का एकमात्र कारण है। शेष चार क्लेश इसके कार्य हैं। आत्मा के ये समस्त दुःख केवल भ्रममात्र हैं।

क्लेश का सामान्य अर्थ दुःख देने वाला होता है। महर्षिपतंजलि ने इन्हीं पंचक्लेशों की समाप्ति एवं उन्हें तनु करने हेतु क्रियायोग बताया है। क्रियायोग की प्रक्रिया इसलिए अपनायी जाती है क्योंकि ये क्लेश दुर्बल हो जायें, जिससे योग साधना की जा सके।

अविद्या- महर्षि पतंजलि अविद्या को ही अन्य चार क्लेशों के मूल कारण के रूप में बताते हैं और क्लेशों की अवस्थाओं के भेद बताते हैं जो इस प्रकार है-

"अविद्या क्षेत्रमुत्तरेशां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम्" (पा.यो.सूत्र 2/4)

जो प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न और उदार अवस्थाओं में (वर्तमान) रहने वाले है एवं जिनका वर्णन अविद्या के बाद किया गया है। उन (अस्मितादि चारों क्लेशों) का मूल कारण अविद्याही है।

महर्षिव्यास- यह अविद्या, क्षेत्र या प्रसवभूमि है अन्य चार प्रकार की प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न और उदार अवस्थाओं की।

स्वामी विवेकानंद - "अविद्या ही अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश का कारण है। ये संस्कार समूह विभिन्न मनुष्यों के मन में विभिन्न अवस्थाओं में रहते हैं। कभी-कभी वे प्रसुप्त रुप में रहते हैं।

इन चारों अवस्थाओं को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है-

1. प्रसुप्त - ये चित्त में स्थिर रहकर भी अपना कार्य संपादित नहीं कर पाते हैं। जैसे बाल्यवस्था में विषय भोगों की वासनाएं बीज रूप में होते हुए भी दबी रहती हैं तथा मनुष्य के युवक होते ही सभी वासनाएं। जाग्रत होकर सक्रिय हो उठती है।

2. तनु - जिन क्लेशों को क्रियायोग (कर्मयोग) द्वारा शक्ति से रहित कर दिया जाता है लेकिन उनकी वासनाएं बीज रुप में निंरतर चित्त में विद्यमान रहती हैं। ऐसी स्थिति में व्यक्ति कार्य करने में समर्थ न होकर शांत रहते है।

3. विच्छिन्न - अस्मिता आदि में से किसी भी क्लेश के उदार अथवा शक्तिमान होने से दूसरा क्लेश दब जाता है। जिस प्रकार से उदार अवस्था के समय में द्वेष दब जाता है, उसी प्रकार से द्वेष की उदार स्थिति के समय में राग दब जाता है। यही स्थिति उसकी विच्छिन्न अवस्था कहलाती है।

4. उदार - जब क्लेश अपने समस्त सहयोगी विषय भोगों को प्राप्त करके अपना कार्य पूर्णरूपेण ढंग से संपन्न कर रहे हों, तो उस समय वह 'उदार' अवस्था कहलाती है।

स्पष्ट है कि यहां क्लेशों के अविद्या क्षेत्र का वर्णन किया गया है। अविद्या अर्थात भ्रम या अज्ञान। जब हमें भ्रम होता है तब हम वास्तविक चीजों से अनजान होते हैं। अतः यही एकमात्र जड़ है। यदि हम इसे दूर कर लें तों समस्याएं दूर हो जाएंगी क्योकि अविद्या ही क्लेशों की जननी है। इसके पश्चात महर्षिपतंजलि ने सर्वप्रथम अविद्या क्लेश तथा उसके पश्चात् शेष क्लेशों के स्वरूप का वर्णन किया है, जो इस प्रकार है-

10.3.1 अविद्या क्लेश

"अनित्याषुचिदुःखानात्मसु नित्यषुचिसुखात्मख्यातिरविद्या" (पा.यो.सूत्र 2/5)

अर्थात् अनित्य, अपवित्र, दुःख और अनात्मा (जड़) में नित्य, पवित्र, सुख और आत्मभाव अर्थात चेतना का ज्ञान, अविद्या है।

महर्षिव्यास- अविद्या अर्थात् अनित्य कार्य में नित्यख्याति ।

जिसके चार भेद निम्न प्रकार से हैं -

1) **अनित्य में नित्य का ज्ञान होना -** लोक तथा परलोक के सभी भोग तथा भोंगों के आयतन (क्षमता वाला) यह मानव शरीर भी नाशवान है। इस बात की नित्य कल्पना करना ही अनुभूति रुप अविद्या है।
2) **अपवित्र को पवित्र की संज्ञा देना -** ऐसे ही हाड़, मांस, मज्जा, मलमूत्रादि अपवित्र धातुओं के समूहरुप स्वयं के तथा स्त्री पुत्रादि के शरीरों को अपवित्र मानते हुए भी जिसके कारण मनुष्य अपने में पवित्रता का अहंकार करता है व प्यार करता है।
3) **दुःख में सुख की अनुभूति होने का ज्ञान -** इस नश्वर जगत के समस्त विषयों को दुःख देने वाले हैं, ऐसा मानते हुए भी विषय भोंगों को सुख देने वाले समझ उनके भोगने में सदा प्रवृत्त हुआ रहता है। यही अनुभूति अविद्या है।
4) **अनात्मा में आत्मा की अनूभुति होना -** देह मन सहित दस इन्द्रियां एवं चित्त जड़ कहे गये हैं तथा आत्मा से पृथक है किन्तु मनुष्य इसे जानते हुए भी अविद्या द्वारा इसी को ही अपना स्वरुप मान लेता है।

स्वामी विवेकानंद - "मैं शरीर हूँ" शुद्ध, ज्योतिर्मय, नित्य, आनंद स्वरुप आत्मा नहीं' यह अविद्या इसके पश्चात महर्षिपतंजलि ने अस्मिता क्लेश का वर्णन किया है, जो इस प्रकार है-

10.3.2 अस्मिता क्लेश

"दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिता" (पा.यो.सूत्र 2/6)

अर्थात् दृक् शक्ति और दर्शन शक्ति इन दोनों का एकस्वरुप सा हो जाना, अस्मिता क्लेश है।

महर्षिव्यास- पुरूष दृक् शक्ति और बुद्धि दर्शन शक्ति है। इन दोनों की एकस्वरूपाख्याति को ही अस्मिता क्लेश कहा जाता है।

10.3.3 राग क्लेश

"सुखानुषयी रागः" (पा.यो.सूत्र 2/7)

अर्थात् सुख भोगने के पीछे जो चित्त में उसके भोग की इच्छा रहती है, उसका नाम राग है।

महर्षिव्यास- सुख में या सुख के साधन में जो स्पृहा, तृष्णा या लोभ होता है वही राग है।

स्वामी विवेकानंद - "हम किसी विषय में सुख पाते हैं। जिसमें हम सुख पाते हैं, मन एक प्रवाह के समान उसकी ओर प्रवाहित होता है। सुख केन्द्र की ओर दौड़ने वाले मन के इस प्रवाह को ही राग या 'आसक्ति' कहते हैं।"

10.3.4 द्वेष क्लेश

"दुःखानुषयी द्वेषः" (पा.यो.सूत्र 2/8)

अर्थात् दुःख की प्रतीति के पीछे रहने वाला क्लेश द्वेष कहलाता है।

महर्षिव्यास- दुःख के साधनों में प्रतिघ, मृत्यु तथा क्रोध होता है, वहीं द्वेष है।

स्वामी विवेकानन्द - जिससें हम दुःख पाते हैं उसे तत्क्षण त्याग देने का प्रयत्न करते हैं।

इसके पश्चात महर्षिपतंजलि ने अभिनिवेश क्लेश का वर्णन किया है, जो इस प्रकार है-

10.3.5 अभिनिवेश क्लेश

"स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारूढोऽभिनिवेशः" (पा.यो.सूत्र 2/9)

भावार्थ - जो परंपरानुसार स्वभाववश चला आ रहा है, जो मूढ़ो की भांति ज्ञानी पुरुषों में भी आरुढ़ हुआ देखा जाता है, वह मृत्युरुपी क्लेश, अभिनिवेश अर्थात गहराई में प्रतिष्ठित हुआ कहा गया है।

महर्षिव्यास - यह अभिनिवेश क्लेश स्वरसवाही है। यह जाति मात्र, जीव कृमि में भी देखा जाता है।

स्वामी विवेकानंद - " अत्यंत विद्वान मनुष्यों में भी जो जानते हैं कि यह शरीर एक दिन चला जाएगा, जो कहते है कि आत्मा की मृत्यु नहीं, हमारे तो सैकड़ो शरीर है, अतएव भय किस बात का ऐसे विद्वान पुरुषों में भी उनकी सारी विचारजनित धारणाओं के बावजूद हम इस जीवन के प्रति प्रगाढ़ ममता देखते हैं।"

10.4 कर्माशय

महर्षिपतंजलि कर्माशय को सभी प्रकार के कर्म का आशय बताते हैं कि

"क्लेशमूल: कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः" (पा.यो.सूत्र 2/12)

अर्थात् क्लेशमूलक कर्म संस्कारों का समुदाय दृष्ट (वर्तमान) तथा अदृष्ट (भविष्य में होने वाले) दोनों प्रकार के ही जन्मों में भोगा जाने वाला है।

महर्षिव्यास – उनमें पुण्य-अपुण्यात्मक कर्माशय काम, लोभ और कोध से प्रसूत होते हैं। ये द्विविध कर्माशय दृष्ट वेदनीय तथा अदृष्ट वेदनीय है।

10.4.1 कर्माशय के प्रकार

1) दृश्य जन्म वेदनीय - जो वर्तमान जन्म में जाना जाए।

2) अदृश्य जन्म वेदनीय- जो दूसरे जन्म में जाना जाए।

अर्थात कर्माशय का भोग कुछ इसी जन्म तथा कुछ कर्मों का भोग आने वाले जन्मों में भोता जाता है।

स्वामी विवेकानंद - कर्माशय का अर्थ है- समस्त संस्कारों की समष्टि । हम जो भी कार्य करते हैं, वह चित्तरूपी सरोवर में एक लहर उठा देता है। अतएव हर एक कार्य, हर एक विचार वह चाहे शुभ हो, चाहे अशुभ, मन के गहरे प्रदेश में जाकर सूक्ष्मभाव धारण कर लेता है और वहीं संचित रहता है। शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के विचार को क्लेश कहते हैं क्योंकि योगियों के मतानुसार दोनों ही अंत में दुःख उत्पन्न करते हैं। इन्द्रियों से जो सुख मिलता है। वह अंत में दुःख ही लाता है।

इसके पश्चात् महर्षिपतंजलि ने कर्माशय के परिणाम को बताया है, जो इस प्रकार है-

10.4.1 कर्माशय के परिणाम

"सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः" (पा.यो.सूत्र 2/13)

अर्थात् मूल के विद्यमान रहने तक उस (कर्माशय) का परिणाम, पुनर्जन्म, आयु और भोग होता है।

महर्षिव्यास- सभी क्लेश मूल में रहने से कर्माशय के फल आरंभी होता हैं। क्लेशमूल उच्छिन्न होने पर ऐसा नहीं होता। ऐसे कर्माशय का विपाक त्रिविध है- जाति, आयु तथा भोग।

स्वामी विवेकानन्द - "कारण विद्यामान रहने से फल या कार्य अवश्यमेव होगा। यह फल पहले जाति के रुप में प्रकाशित होता है। कोई लोग मनुष्य होंगे, तो कोई देवता, कोई पशु तो कोई असुर। फिर जीवन में इस कर्म के त्रिविध परिणाम होते हैं।"

इसके पश्चात् महर्षि पतञ्जलि इस कर्माशय को ही पुण्य व अपुण्य फल देने वाला बताते हैं, जो इस प्रकार हैं –

ते ह्लादपरितापफलाः पुण्यापुण्यहेतुत्वात् (पा.यो.सूत्र 2/14)

अर्थात् वे (जन्म, आयु और भोग) हर्ष और शोकरूप फल को देने वाले होते हैं क्योंकि उनके पुण्यकर्म और पापकर्म दोनों ही कारण हैं।

महर्षिव्यास- वे जन्म, आयु और भोग ये पुण्य रूप हेतु प्राप्त होने से सुखफल तथा अपुण्यरूप हेतु प्राप्त होने से दुःखफल होते हैं।

स्वामी विवेकानन्द - "वे (जाति, आयु और भोग) हर्ष और शोकरूप फल के देने वाले होते हैं, क्योकि उनके कारण है - पुण्य और पाप कर्म ।"

बोधप्रश्न

१) क्लेश का शाब्दिक अर्थ क्या हैं ?
२) कर्माशय के निर्माण का मूल कारण क्या है ?
३) महर्षि पतञ्जलि ने कितने प्रकार के क्लेशों का वर्णन किया हैं ?
४) कर्माशय के कितने भेद है ?
५) अनित्य में नित्य की प्रतीति होना, यह कौनसा क्लेश हैं ?
६) सुख भोगने की इच्छा बनना, यह कौनसा क्लेश हैं ?

10.5 ग्रन्थ का मूलपाठ

"अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशा: क्लेशा:" (पा.यो.सूत्र **2/3)**

"अविद्या क्षेत्रमुत्तरेशां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम्" (पा.यो.सूत्र **2/4)**

"अनित्याषुचिदुःखानात्मसु नित्यषुचिसुखात्मख्यातिरविद्या" (पा.यो.सूत्र **2/5)**

"दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिता" (पा.यो.सूत्र 2/6)

"सुखानुषयी रागः" (पा.यो.सूत्र 2/7)

"दुःखानुषयी द्वेषः" (पा.यो.सूत्र 2/8)

"स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारूढोऽभिनिवेशः" (पा.यो.सूत्र 2/9)

"क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः" (पा.यो.सूत्र 2/12)

"सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः" (पा.यो.सूत्र 2/13)

ते ह्लादपरितापफलाः पुण्यापुण्यहेतुत्वात् (पा.यो.सूत्र 2/14)

10.6 सारांश

स्पष्ट है कि हमारे जीवन में विभिन्न प्रकार की समस्याओं का कारण है- पंचक्लेश । तथा पंचक्लेश का मूल कारण अविद्या है। अविद्या के कारण ही पाप कर्म होते हैं तथा हमारे कर्माशय का कारण बनते हैं। अविद्यारूपी क्लेश को समाप्त कर हम पंचक्लेशों से बच सकते हैं। इस प्रकार जिसने अच्छे कर्म किये वह पुण्य प्राप्त करके उसके अनुसार अगले योनि में जन्म लेकर सुख का भोग करता है और पापकर्म होने पर निम्नकोटि का जीव के रूप में दुःख भोगता है। जो सुख-दुःख उसने अन्य प्राणी को दिया है, उसका फल उसे अवश्य ही प्राप्त होता है, उसने चाहे जिस किसी भी योनि में जन्म धारण किया हो। क्रियायोग के माध्यम से कर्मसंस्कारों को क्षीण एवं समाप्त किया जा सकता है। व्यावहारिक जीवन में भी हम अपने साथ अप्रत्याशित घटनाओं को कर्माशय के रूप में समझ सकते हैं तथा क्रियायोग के माध्यम से अपने कर्माशय को क्षीण कर सकते हैं।

10.7 शब्दावली

१)	अविद्या	:	अज्ञान
२)	अस्मिता	:	मैं का भाव
३)	राग	:	सुख के प्रति आसक्ति
४)	द्वेष	:	दुःख के प्रति घृणा का भाव
५)	अभिनिवेश	:	मृत्यु का भय
६)	नित्य	:	जो हमेशा रहने वाला है
७)	अनात्मा	:	जो आत्मा नही है
८)	विपाक	:	कर्म के फल का नाम
९)	कर्माशय	:	समस्त संस्कारों की समष्टि
१०)	द्रष्टा	:	देखने वाला, पुरुष, चेतन
११)	दृश्य	:	प्रकृति, बुद्धि, जड़

10.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. सरस्वती विज्ञानानन्द (2003), योग विज्ञान | योग निकेतन ट्रस्ट मुनि की रेति,ऋषिकेश।

2. निरजनानन्द (1994), योग दर्शन | श्री पंचदशनाम, परमहंस अलखवाड़ा, देवधर,विहार ।

3. जगदीशचन्द्र मिश्र 2012, भारतीय दर्शन । चौखम्भा सुर भारती प्रकाशन, वाराणसी।

10.9 सहायक ग्रन्थ

1. पाण्डेय राजकुमारी (2008), भारतीय योग परम्परा के विविध आयाम । राधा पब्लिकेशन, दिल्ली

2 व्यास महर्षि (2003), भगवदगीता। गीता प्रेस गोरखपुर।

3 योगेन्द्र पुरूषार्थी (1999), वेदो में योग विद्या । यौगिक शोध संस्थान, हरिद्वार।

4 परमहंस स्वामी अनन्त भारती (संवत 2056), योगदर्शन । स्वामी केशवानन्द योग संस्थान, दिल्ली-85

10.10 बोध प्रश्नोत्तर

१) पीड़ा देना, सताना ।

२) क्लेश ।

३) पाँच ।

४) दो – दृश्य जन्मवेदनीय, अदृश्य जन्मवेदनीय ।

५) अविद्या ।

६) राग ।

10.11 अभ्यास प्रश्न

1. पंचक्लेश से आप क्या समझते हैं ?

2. पंचक्लेश की अवस्थाओं को स्पष्ट कीजिए ?

3. कर्माशय से आप क्या समझते हैं ?

4. अविद्या रूपी क्लेश को विस्तार से स्पष्ट कीजिए ।

5. राग-द्वेष एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, व्याख्या कीजिए ।

एकादश पाठ
योग दर्शन में ईश्वर का स्वरूप

पाठ संरचना

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 ईश्वर के स्वरूप का वर्णन

11.4 ईश्वर के गुणों का वर्णन

11.5 ईश्वर की महिमा का वर्णन

11.6 ईश्वर का प्रणव रूप में वर्णन

11.7 ईश्वर प्राप्ति के लिए जप का वर्णन

बोधप्रश्न

11.8 ग्रन्थ का मूलपाठ

11.9 सारांश

11.10 शब्दावली

11.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

11.12 सहायक ग्रन्थ

11.13 बोध प्रश्नोत्तर

11.14 अभ्यास प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत पाठ में ईश्वर के स्वरूप को जानेंगे और इससे पूर्व पाठ में पञ्चक्लेश और कर्माशय के विषय में विस्तार से जाना। विद्यार्थियों जैसे ही ईश्वर का नाम आता है वैसे ही अपने आराध्य ईष्ट देवता का स्मरण आता है। अलग-अलग शास्त्रों में तथा अनेकानेक विद्वानो ने ईश्वर के स्वरूप की कल्पनायें की हैं। महर्षि पतंजलि ने योग शास्त्र में आत्मा से परमात्मा का मिलन हेतु एक सूत्र दिया है। **'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'** अर्थात चित्त की वृत्तियों का सर्वथा निरोध हो जाना ही योग है। वृत्तियों को शान्त करने, उनके निरोध हेतु उन्होंने पहला अभ्यास और वैराग्य का मार्ग बताया है, इसके अतिरिक्त उन्होंने अन्य एक दूसरा सुलभ मार्ग भी बताया है जो ईश्वर प्राणिधान का है। यह निर्बीज समाधि प्राप्त करने का सुलभ मार्ग है। इसका वर्णन करते हुए पतंजलि ऋषि कहते हैं- 'ईश्वरप्रणिधानाद्वा'। अर्थात- ईश्वर प्राणिधान से भी निर्बीज समाधि की प्राप्ति हो सकती है। जिस तरह बाह्य चित्त वृत्तियों को अभ्यास और वैराग्य के द्वारा शान्त कर दिया जाता है, उसी प्रकार समस्त वृत्तियों को

ईश्वर को समर्पित कर देने और अनासक्त कर्मयोग को अपना लेने से वृत्तियाँ चन्चलता रहित हो जाती हैं। जब साधक संसार से विरक्त होकर अपनी समस्त भावनाएँ ईश्वर में समर्पित कर देता है तब ईश्वर कृपा करके भक्त की सारी वृत्तियों को समाप्त कर देता है। जिससे निरुद्धावस्था प्राप्त कर साधक निर्बीज समाधि को सिद्ध हो जाता है।

इस प्रकार का निष्काम और ईश्वर समर्पण कर्म ही ईश्वर प्रणिधान है। "ईश्वर प्रणिधान से सांसारिक लाभ प्राप्त करना अज्ञान दर्शाता है। ईश्वर प्रणिधान से ईश्वर की अभिमुखता प्राप्त करके उनकी कृपा से विषेष ज्ञान पाया जाता है। प्रस्तुत पाठ में अब हम ईश्वर के स्वरूप का वर्णन करेगें।

11.2 उद्देश्य – प्रस्तुत पाठ को पढकर आप जानेंगे -

- ईश्वर क्या है ?
- ईश्वर का स्वरूप
- ईश्वर के गुण
- ईश्वर की महिमा
- ईश्वर का प्रणव रूप में वर्णन
- ईश्वर प्राप्ति के लिए जप

11.3 ईश्वर के स्वरूप का वर्णन

संस्कृत व्याकरण पर अगर दृष्टिपात करे तो ईश्वर शब्द ईश + वरच् से बनता है। **"ईश"** धातु का अर्थ है ईशनशील अर्थात इच्छा मात्र से जो कैवल्य की प्राप्ति करा दें। शास्त्रो में कहा गया है कि-

"ईशनशील इच्छामात्रेण सकलजगदुद्धरणक्षमः ।" अर्थात- जो ईशनशील है यानि इच्छा मात्र से सम्पूर्ण जगत के उद्धार करने में समर्थ है वही ईश्वर है। अगर ईश्वर के स्वरूप की बात करे तो स्पष्ट है कि- **"त्रैकालिक बन्ध शून्य'** अर्थात- भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालों में जो बन्धन आदि से मुक्त है।

महर्षि पतंजलि के अनुसार ईश्वर स्वरूप - जिस प्रकार परमेश्वर के प्रणिधान से शीघ्र समाधि लाभ होता है, महर्षि पतंजलि उस ईश्वर के स्वरुप का वर्णन करते हुए कहते हैं कि -

'क्लेश कर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः' (पा०यो०सू०1/24) अर्थात- क्लेश, कर्म, विपाक, आशय इन चारों से जो मुक्त है वह पुरुष विशेष परम आत्मा ही ईश्वर है। महर्षि पतंजलि ने पांच प्रकार के क्लेश का वर्णन किया है। अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश। क्लेश वे होते हैं जो दुःख दें। इन्हीं क्लेशों में जीवात्मा फँसी रहती है जो कि ईश्वर में नहीं है।

11.4 ईश्वर के गुणों का वर्णन

महर्षि पतंजलि जी के अनुसार- **"तत्र निरतिशयं सर्वज्ञ बीजम्"** (पा०यो०सू०1/25)

अर्थात- उस ईश्वर में (सर्वज्ञ बीजम्) सर्वज्ञता का ज्ञान (निरतिशयं) सर्वोच्च है। जिससे बढ़कर कोई दूसरा हो वह सतिशय कहलाता है। किन्तु जिससे बढ़कर कोई दूसरा न हो उसे निरतिशय कहते हैं। ईश्वर का ज्ञान सर्वोच्च है। वह सर्वज्ञ है, उसके ज्ञान से अधिक किसी का ज्ञान नहीं है। संसार में जो भी ज्ञान-विज्ञान और ऐश्वर्य आदि है इन सभी की सीमा ईश्वर है। आत्मा में यह वस्तुऐं सीमित हैं पर परमात्मा में असीमित हैं।

11.5 ईश्वर की महिमा का वर्णन

महर्षि पतंजलि के अनुसार- महर्षि पतंजलि ने ईश्वर की महिमा का वर्णन करते हुऐ महर्षि पतंजलि कहते हैं कि- **'स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्'** (पा०यो०सू०1/26)

अर्थात- वह ईश्वर पूर्वजों का भी गुरु है। क्योंकि उसका काल से अवच्छेद नहीं है। अर्थात वह काल के द्वारा सीमित नहीं है। सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न होने के कारण ब्रह्माजी को सबका गुरु माना गया है। परन्तु वह काल द्वारा सीमित हैं। परन्तु ईश्वर काल से बँधा नहीं है। वह सृष्टि के पूर्व तथा महाप्रलय के पश्चात भी हर स्थिति में विद्यमान रहता है। वह सभी देवताओं को भी ज्ञान प्रदान करता है। अतः वह गुरुओं का भी गुरु है।

11.6 ईश्वर का प्रणव रूप में वर्णन

ईश्वर की महिमा बताकर अब उसकी उपासना (प्रणिधान) किस प्रकार से करनी चाहिऐ यह बताने के लिये उसका वाचक नाम का वर्णन किया गया है -

महर्षि पतंजलि के अनुसार- महर्षि पतंजलि ने योग सूत्र के समाधिपाद में कहा है कि- **'तस्य वाचकः प्रणवः'** (पा०यो०सू०1/27) अर्थात- उसका वाचक नाम प्रणव है। प्रणव अर्थात ओमकार । 'अव रक्षणे' धातु से ओम् शब्द बनता है। जिसका अर्थ है रक्षा करना । अवतीति ओम् यह उसकी व्युत्पत्ति है अर्थात- जो रक्षा करे वह ओम् परमेश्वर है। ईश्वर को ओम् वाचक शब्द के द्वारा जाना जाता है। नामी का नाम से अनादि और बहुत गहरा सम्बन्ध है। इसलिये शास्त्रों में नाम जप की महिमा वर्णित है। विभिन्न भाषाओं में और देशों में ईश्वर के भिन्न-2 नाम हैं।

"एकं सतविप्राः बहुधा वदंति" अर्थात- एक ही सद् वस्तु है, उसी को वेद, शास्त्र, उपनिषद अनेक नामों से बोलते हैं। ईश्वर के विभिन्न नामों में सर्वश्रेष्ठ नाम ॐ माना गया है।

11.7 ईश्वर प्राप्ति के लिए जप का वर्णन

ईश्वर प्राप्ति के लिए प्रणव जप करना भी एक साधन बताया गया है जिसके माध्यम से ईश्वर प्रणिधान हो जाता है। इसका वर्णन करते हुए महर्षि कहते हैं कि-

'तज्जपस्तदर्थभावनम्' (यो०सू० 2/28)

अर्थात- उस प्रणव का जप, उस प्रणव के अर्थ भूत ईश्वर का पुनः चिन्तन करना ईश्वर प्रणिधान है।

ओमकार का मानसिक जाप करना और उसमें ईश्वर के स्वरूप का, गुणों का भाव करके पुनः पुनः ध्यान करना ईश्वर प्रणिधान होता है। चित्त को सब ओर से निवृत करके केवल ईश्वर में स्थिर कर देने का नाम भावना है। इस भावना से अविद्या आदि क्लेश, सकाम कर्म, कर्म फल और वासनाओं के संस्कार जो बन्धन का कारण होते हैं । ये सभी चित्त से घुल जाते हैं, और सात्विक शुद्ध ज्ञार का संस्कार उदय होता है। विभिन्न स्थानों में ईश्वर के स्वरुप को उपरोक्त समझाया गया है। भारतीय दर्शन में विभिन्न विद्वानों ने अपने अनुभव के आधार पर ईश्वर के स्वरुप को भिन्न प्रकार से बताया है।

बोधप्रश्न

१) योगदर्शन में ईश्वर का स्वरूप किस पाद में वर्णित हैं ?
२) जो क्लेश, कर्म, विपाक, आशय इन चारों से जो युक्त है, वह पुरुष विशेष कौन है ?
३) ईश्वर का वाचक नाम .....है।
४) जो पूर्वजों का भी गुरु और काल से अवच्छेद नही है, वह ..... है।

11.8 ग्रन्थ का मूलपाठ

"ईशनशील इच्छामात्रेण सकलजगदुद्धरणक्षमः ।"

'क्लेश कर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः' (पा०यो०सू०1/24)

"तत्र निरतिशयं सर्वज्ञ बीजम्" (पा०यो०सू०1/25)

'स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्' (पा०यो०सू०1/26)

'तस्य वाचकः प्रणवः' (पा०यो०सू०1/27)

"एकं सतविप्राः बहुधा वदंति"

'तज्जपस्तदर्थभावनम्' (यो०सू० 2/28)

11.9 सारांश

विद्यार्थियों अगर देखा जाये तो प्रणव और ईश्वर में गहरा सम्बन्ध दिखाया गया है। शास्त्रों में कहीं-2 प्रणव ध्वनि को केवल ध्यानावस्था में अनुभव करने योग्य बताया गया है, जिसका मुख से उच्चारण सम्भव नहीं है। तथापि गौण रुपी जो प्रणव मन्त्र उच्चारण किया जाता है। व अ, उ, म् रूप में होता है। जिसके तीन अक्षर त्रिगुणमयी प्रकृति क्रमशः अपने तीनों गुणों सत, रज, तम अथवा कारण, सूक्ष्म, स्थूल तीनों जगत तथा सर्वशक्तिमान परमेश्वर उनके अधिष्ठाता विराट हिरण्यगर्भ और ईश्वररूप से अथवा सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय, एवं ब्रह्मा, विष्णु, महेश विद्यमान हैं।

प्रस्तुत पाठ में आपने ईश्वर के स्वरूप के बारे में विस्तार से जाना आपने जाना कि -

- ईश्वर क्या है ?
- ईश्वर का स्वरूप कैसा है ?
- विभिन्न ग्रंथों में ईश्वर सम्बन्धी चर्चा किस प्रकार से की गई है ?
- ईश्वर को और किस नाम से जाना जाता है ?
- ईश्वर प्रणिधान का क्या अर्थ है ?

ईश्वर शब्द इतना विराट है कि इसकी जितनी व्याख्या की जाए उतनी कम ही है। यह चेतना न भौतिक है, न मानसिक यह शुद्ध आध्यात्मिक चेतना होती है यदि कोई आध्यात्मिक साधक श्रद्धा और उर्जा के सोपानों से गुजरने में स्वयं को सक्षम नहीं पाता है तो उसे ईश्वर के प्रति तीव्र समर्पण करना चाहिए । महर्षि पतञ्जलि ने इसी विधि को समझाया है जिससे सामान्य जन भी उचित विधि से समाधि को प्राप्त कर सकता है ।

11.10 शब्दावली

१) सतिशय : जिससे बढकर दूसरा हो ।
२) निरतिशय : जिससे बढकर दूसरा कोई दूसरा न हो ।
३) अवच्छेद : काल से काटा न जाये ।
४) त्रिगुणमयी : तीन गुणों से युक्त (सत्व-रज-तम) ।
५) प्रलय : विनाश ।
६) प्रणव : ओमकार ।
७) निवृत्त : हटाकर ।

11.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. सरस्वती विज्ञानानन्द (2003), योग विज्ञान | योग निकेतन ट्रस्ट मुनि की रेति,ऋषिकेश।

2. निरजनानन्द (1994), योग दर्शन | श्री पंचदशनाम, परमहंस अलखवाड़ा, देवधर,विहार ।

3. जगदीशचन्द्र मिश्र 2012, भारतीय दर्शन । चौखम्भा सुर भारती प्रकाशन, वाराणसी।

11.12 सहायक ग्रन्थ

1. पाण्डेय राजकुमारी (2008), भारतीय योग परम्परा के विविध आयाम । राधा पब्लिकेशन, दिल्ली

2 व्यास महर्षि (2003), भगवदगीता। गीता प्रेस गोरखपुर।

3 योगेन्द्र पुरूषार्थी (1999), वेदो में योग विद्या । यौगिक शोध संस्थान, हरिद्वार।

4 परमहंस स्वामी अनन्त भारती (संवत 2056), योगदर्शन । स्वामी केशवानन्द योग संस्थान, दिल्ली-85

5 योग सूत्र - प्रकाश गीता प्रेस गोरखपुर

6 भारतीय योगदर्शन - हरेन्द्र प्रसाद सिनदा

7 योग प्रभाकर - स्वामी केशवानन्द जी

11.13 बोध प्रश्नोत्तर

१) प्रथम पाद ।

२) ईश्वर ।

३) प्रणव ।

४) ईश्वर ।

11.14 अभ्यास प्रश्न

1- ईश्वर क्या है? इसके स्वरुप की व्याख्या कीजिए ।

2- महर्षि पतंजलि ने ईश्वर प्राप्ति का क्या साधन बताया है ?

3- 'प्रणव' शब्द का विस्तार से व्याख्या करें ।

4- ईश्वर को गुरु के रुप में किस प्रकार समझाया गया है?

5- पुरुष विशेष के रुप में ईश्वर के स्वरुप को स्पष्ट करें ।

द्वादश पाठ
समाधि का अर्थ एवं भेद

पाठ संरचना

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 समाधि का अर्थ

12.4 समाधि के भेद

12.4.1 सम्प्रज्ञात समाधि एवं भेद

12.4.2 असम्प्रज्ञात समाधि एवं भेद

बोधप्रश्न

12.5 ग्रन्थ का मूलपाठ

12.6 सारांश

12.7 शब्दावली

12.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

12.9 सहायक ग्रन्थ

12.10 बोध प्रश्नोत्तर

12.11 अभ्यास प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत पाठ आप समाधि का अर्थ एवं भेदों को समझेंगे । इससे पूर्व पाठ में हमने ईश्वर के स्वरूप को जाना । महर्षि पतंजलि चित्त एवं उसकी वृत्तियों का वर्णन कर उसके निरोध के उपाय बताते हैं । तत्पश्चात निरोध के फलस्वरूप प्राप्त होने वाली अवस्था समाधि का विस्तृत वर्णन करते हैं, उन्होंने समाधि के मार्ग में आने वाले विघ्न तथा समाधि की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन भी किया हैं। समाधि के कितने भेद होते हैं और किस अवस्था को किस समाधि से सम्बोधित किया गया हैं, वह आप अध्ययन करेंगे ।

अष्टांग योग में समाधि का विशेष स्थान है। यह साधना की वह चरम अवस्था है। जिसमें साधक का बाहय जगत से सम्बन्ध टूट जाता है। इस अवस्था में योगी उत्कर्ष की प्राप्ति कर मोक्ष प्राप्ति की ओर अग्रसर होता है। यही मोक्ष प्राप्त करना मनुष्य जीवन का मुख्य उद्धेश्य है। अतः मोक्ष प्राप्ति से पूर्व मनुष्य को समाधि की स्थिति को प्राप्त करना आवश्यक है। समाधि मोक्ष प्राप्ति का मुख्य साधन है। इस प्रकार समाधि को उपलब्धि कहा जा सकता है। यह साधना ना होकर एक घटना है। जो कि ध्यान के स्थिर होने पर, स्वयं घटित होती है।

12.2 उद्देश्य - प्रस्तुत पाठ में आप जानेंगे-

- ❖ समाधि का अर्थ एवं स्वरूप ।
- ❖ संप्रज्ञात समाधि का स्वरूप ।
- ❖ असम्प्रज्ञात समाधि का स्वरूप ।
- ❖ संप्रज्ञात और असंप्रज्ञात समाधि के भेद ।

12.3 समाधि का अर्थ

समाधि शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है। 'सम' और 'आधि'। सम का अर्थ है बराबर, समान हो जाना या शांत हो जाना तथा आधि कहते हैं- मन के विकारों को। यहाँ मन की बीमारी या चित्त वृत्तियों की अस्थिरता को 'आधि' कहा गया है। क्योंकि मन तरंगित व उद्वेगित होता ही रहता है। अतः मन के विकारों को समान या शांत करना समाधि है।

जब चित्त की कोई भी वृत्तियाँ शेष न हो, केवल शांति ही शांति हो तथा वे निश्चल स्थिरता अनवरत रूप से बहने लगे तो उसे समाधि की अवस्था कहा जा सकता है। इस अवस्था में बाह्य विषयों का ज्ञान नही रहता है।

महर्षि पतंजलि योग को परिभाषित करते हुए स्पष्ट करते हैं कि **"योगश्चितवृत्तिनिरोधः"** (पा.यो.सू. 1/2) अर्थात् योग, चित्त वृत्तियों का सर्वथा रूक जाना है अर्थात् यहां चित्त निश्चल, स्थिर हो जाता है। समाधि अवस्था में भी चित्त शांत, स्थिर हो जाता है अतः इसलिए योग को समाधि कहा जा सकता है क्योंकि दोनों में चित्तवृत्तियों का अभाव हो जाता है। इसलिए महर्षि व्यास ने भी प्रथम सूत्र के ही भाष्य में योग की परिभाषा समाधि द्वारा दी है।

"योगः समाधिः" (व्यास भाष्य सूत्र 1/1)

अर्थात् योग का अर्थ है समाधि।

योग व समाधि दोनों से ही यह अर्थ तो स्पष्ट हो गया है कि योग अर्थात् चित्त वृत्तियों का निरोध, तभी समाधि की अवस्था प्राप्त होगी। दोनों में ही चित्त वृत्तियाँ समाप्त हो जाती है। समाधि ही योग है। महर्षि पतंजलि ने इसे अष्टांग योग के प्रकरण में भी बताया है।

"तदेवर्थमात्र निर्भासं स्वरूपशून्यभिव समाधिः" (पा.यो.सू. 3/3)

अर्थात जब (ध्यान में) मात्र (लक्ष्य) ध्येय की ही प्रतीति होती है तथा चित्त का निज स्वरूप शून्य सा हो जात है तब वही (ध्यान ही) समाधि हो जाता है। यहाँ धारणा, ध्यान के बाद की स्थिति को बताया गया है जो कि समाधि की स्थिति में बदल जाती है, जब ध्यान ही अनवरत चलता रहे, कुछ भान न रहे।

महर्षि व्यास- "ध्येयाकार ध्यान ही जब ध्येय स्वभाव के आवेश से अपने ज्ञानात्मक स्वभाव से शून्य के समान होता है, तब उसे समाधि कहते हैं। " (3/3 व्यास भाष्य सूत्र) अतः यह ध्यान की ही परिष्कृत स्थिति है।

12.4 समाधि के भेद

समाधि को संप्रज्ञात व असंप्रज्ञात दो भेद के रूप में बांटा गया है। इसके पश्चात संप्रज्ञात समाधि के पुनः चार भेद किये गये हैं, प्रस्तुत रेखाचित्र से आप समाधि के भेदों को स्पष्टतया समझ सकते हैं-

समाधि के दो भेद हैं - संप्रज्ञात (सबीज) और असंप्रज्ञात (निर्बीज)

1) **संप्रज्ञात** (सबीज) – वितर्कानुगत, विचारानुगत, अस्मितानुगत और आनन्दानुगत ।

अ) **वितर्कानुगत** – सवितर्क और निर्वितर्क ।

आ) **विचारानुगत** – सविचार और निर्विचार ।

2) **असंप्रज्ञात** (निर्बीज) – भव प्रत्यय और उपाय प्रत्यय ।

12.4.1 सम्प्रज्ञात समाधि एवं भेद

संप्रज्ञात समाधि में समस्त अविद्यादि क्लेश नष्ट हो जाते हैं परन्तु उसके चार प्रकार के जो संस्कार है अर्थात् बोध है वह वितर्क, विचार, आनंद व अस्मिता के रूप में होने पर वह पूर्ण निरोधावस्था नहीं होती है। असंप्रज्ञात समाधि में जब कोई भी वृत्ति शेष नही होती है तब पूर्ण निरूद्धावस्था की स्थिति होती है।
महर्षिपतंजलि ने संप्रज्ञात समाधि के भेद निम्न प्रकार बताये हैं-

"वितर्कविचारानंदास्मितानुगमात्संप्रज्ञातः" (पा.यो.सू. 1/17)

अर्थात् वितर्क, विचार, आनन्द तथा अस्मिता इन चारों के सम्बन्ध से युक्त (चित्तवृत्ति का समाधान) संप्रज्ञात समाधि कहलाता है।

1. वितर्कानुगत- पंचभूतों तथा इंद्रियों के भाव के आधार पर जो समाधि होती है वह वितर्कानुगत समाधि होती है। स्थूल पदार्थों पर स्थूल इंद्रियों के माध्यम से जो त्राटक इत्यादि क्रियाएँ जैसे सूर्य, चन्द्र, दुर्गा, शिव, कृष्ण आदि का ध्यान करते हुए उनमें चित्त को तन्मय कर लिया जाता है, इसी के अंतर्गत आती हैं।

महर्षि व्यास अनुसार -

"वितर्कश्चित्तस्यालंबने स्थूल आभोगः"

अर्थात् चित्त के आलंबन (ध्येय विषय) में पूर्णरूप से स्थूलाकारारितत्व हो जाना समाधि है।
वितर्कानुगत के दो भेद-सवितर्क व निर्वितर्क होते हैं।

2. विचारानुगत समाधि - जब स्थूल पदार्थों के साक्षात् कर लिया जाता है, तब सूक्ष्म पदार्थों मे सूक्ष्म तन्मात्राओं (शब्द, स्पर्श, रूप रस, गंध) के भावनात्मक विचार के द्वारा जो समाधि की स्थिति बनती है। जैसे सूर्य आदि स्थूल पदार्थों के उपरांत उनके तेज आदि सूक्ष्म रूपों का ध्यान करना।

महर्षि व्यास अनुसार -

"चित्तस्यालंबने सूक्ष्मो विचारः"

अर्थात् आलंबन से चित्त की पूर्णरूपेण सूक्ष्मकारिता विचारानुगत समाधि है।

विचारानुगत के दो भेद- सविचार व निर्विचार होते हैं।

3. आनंदानुगत समाधि- जब अंतःकरण को रज व तम इन दोनों से गुणों से रहित किया जाता है, तब इसे आनन्दानुगत समाधि कहते हैं। इस समाधि में विचारशून्यता की स्थिति आ जाती है। मात्र आनंद ही शेष बचता है।

ब्रह्मर्षि व्यास अनुसार -

"चित्तस्यालबने आनंदो हलादः'

अर्थात् चित्त की पूर्णतः सुखाकारकरितता आनंद है।

4. अस्मितानुगत समाधि- इसमें आनन्द भी समाप्त हो जाता है। साधक अपने आत्मस्वरूप की अनुभूति करते हुए 'अस्मि' (हूं) में ही अविस्थत हो जाता है।

महर्षि व्यास अनुसार -

"एकात्मिकासंविद अस्मिता"

अर्थात् बुद्धिस्थ पुरूष प्रतिबिंब अस्मिता है अर्थात् बुद्धि समस्त ज्ञान को उसी पुरूष प्रतिबिंब को अर्पित करती है। चित्त व पुरूष दोनों की एकाकारता-सी स्थिति होना अस्मिता है।

12.4.2 असम्प्रज्ञात समाधि एवं भेद

महर्षि पतंजलि ने सूत्र 1/17 में संप्रज्ञात समाधि की चर्चा की थी। इसके पश्चात् वे असंप्रज्ञात समाधि की चर्चा करते हैं और उसका स्वरूप बताते हैं-

"विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कारशेषोन्यः" (पा.यो.सू. 1/18)

अर्थात् विराम प्रत्यय का अभ्यास जिसकी पूर्व अवस्था है और जिसमें चित्त का स्वरूप 'संस्कार' मात्र ही शेष रहता है, वह अन्य (असंप्रज्ञात) है। अर्थात विराम प्रत्यय (सर्ववृत्ति निरोध) का जो कारण अर्थात वैराग्य है, उसके अभ्यास से चित्त की वृत्ति शून्य होकर संस्कार मात्र अवशिष्ट अवस्था जिस समाधि में होती है, वहीं असंप्रज्ञात समाधि है।

महर्षि पतंजलि ने इसके पश्चात उपर्युक्त अवस्था किस प्रकार शीघ्र से शीघ्र सिद्ध होती है, यह समझाने के लिए असंप्रज्ञात समाधि की दो अवस्थाओं का वर्णन किया है। इसे हम असंप्रज्ञात समाधि के प्रकार के रूप में समझ सकते हैं-

1. भव प्रत्यय

2. उपाय प्रत्यय

1. भव प्रत्यय - महर्षि पतंजलि ने भव प्रत्यय का वर्णन किया है, जो इस प्रकार है-

"भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम् (पा.यो.सू. 1/19)

विदेह प्रत्यय और प्रकृतिलीनों को भवप्रत्यय (नामक असंप्रज्ञात समाधि) होता है।

महर्षि व्यास -

"विदेहानां देवानां भवप्रत्ययः"

अर्थात् विदेह देवताओं का भवप्रत्यय होता है।

जिन योगियों ने वितर्कसमाधि द्वारा स्थूल तत्वों का द्वारा साक्षात् कर लिया और देह में अहं भाव को प्राप्त कर लिया है वे विदेह कहे जाते हैं, और जिन्होनें इससे भी आगे की साधना करके प्रकृति के सब भेदो का साक्षात्कार करके उसका लय कर लिया, उनको प्रकृतिलय कहते है। इन स्थितियों को जिन्होनें पूर्व जन्म में प्राप्त किया था वे दूसरे जन्म में आरम्भ से ही पर-वैराग्य प्राप्त कर विराम प्रत्यय के अभ्यास पूर्वक असंप्रज्ञात समाधि प्राप्त कर लेते है। उनकी समाधि इस जन्म में प्रयत्नजन्य नहीं, इसलिए उनको भव प्रत्यय कहते है।

2. उपाय प्रत्यय - महर्षि पतंजलि ने इसके पश्चात् उपाय प्रत्यय का वर्णन किया है, जो इस प्रकार है-

"श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम्" (पा.यो.सू. 1/20)

अर्थात् श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि और प्रज्ञापूर्वक क्रम से अन्य साधकों को (असंप्रज्ञात प्राप्त होती हैं)।

महर्षि व्यास

"उपाय प्रत्ययो योगिनां भवति"

अर्थात योगियों को उपायप्रत्यय होता है।

अन्य योगी जो विदेह और प्रकृतिलय स्थिति वाले नही हैं, उन्हें श्रद्धा, पुरूषार्थ, स्मृति, समाधि और प्रज्ञा के द्वारा असंप्रज्ञात समाधि की स्थिति प्राप्त होती है। जो विदेह और प्रकृतिलय योगी नहीं हैं उनको प्रारम्भ में शास्त्र तथा आचार्यों के कथन पर अटल विश्वास करके श्रद्धालु बनना चाहिए। साधन की श्रद्धा से योग साधन की तत्परता उत्पन्न करने वाले अभ्यास को वीर्य कहते है, यहीं प्रयत्न है। प्रयत्न से यम, नियम आदि क्रम से करते हुए स्मृति अर्थात पिछले जन्मों के अक्लिष्ट कर्म और ज्ञान के संस्कार जागृत होते है। उसके बाद चित्त एकाग्र और स्थिर होने लगता है। तत्पश्चात् विवेकज्ञान उदित होता है और इसके अभ्यास से पर-वैराग्य और पर- वैराग्य से असंप्रज्ञात समाधि होती है।

बोधप्रश्न

१) 'समाधि' शब्द का क्या अर्थ है ?
२) समाधि के कितने भेद है ?
३) सम्प्रज्ञात समाधि के कितने प्रकार हैं ?
४) असम्प्रज्ञात समाधि के कितने भेद हैं ?
५) व्यासभाष्यकार ने योग शब्द का क्या अर्थ लिया है ?
६) सबीज समाधि किस समाधि को कहा जाता है ?

12.5 ग्रन्थ का मूलपाठ

"योगश्चितवृत्तिनिरोधः" (पा.यो.सू. 1/2)

"योगः समाधिः" (व्यास भाष्य सूत्र 1/1)

"तदेवर्थमात्र निर्भासं स्वरूपशून्यभिव समाधिः" (पा.यो.सू. 3/3)

"वितर्कविचारानंदास्मितानुगमात्संप्रज्ञातः" (पा.यो.सू. 1/17)

"वितर्कश्चित्तस्यालंबने स्थूल आभोगः" (व्यास भाष्य)

"चित्तस्यालंबने सूक्ष्मो विचारः" (व्यास भाष्य)

"चित्तस्यालबने आनंदो हलादः'(व्यास भाष्य)

"एकात्मिकासंविद अस्मिता"(व्यास भाष्य)

"विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कारशेषोन्यः" (पा.यो.सू. 1/18)

"भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम् (पा.यो.सू. 1/19)

"विदेहानां देवानां भवप्रत्ययः" (व्यास भाष्य)

"श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम्" (पा.यो.सू. 1/20)

"उपाय प्रत्ययो योगिनां भवति" (व्यास भाष्य)

12.6 सारांश

महर्षि पतंजलि प्रथम अध्याय में भी समाधि का वर्णन करते हैं। वह संप्रज्ञात व असंप्रज्ञात दो प्रकार की समाधि का वर्णन करते हैं। संप्रज्ञात समाधि को स्पष्ट करते हुए वह बताते हैं कि समस्त बाह्यवृत्तियाँ क्षीण होने पर अपने स्वरूप में स्थित हो जाना ही संप्रज्ञात समाधि या समापत्ति अवस्था है। संप्रज्ञात समाधि के भेद वितर्कानुगत, विचारानुगत, आनंदानुगत तथा अस्मितानुगत हैं, इसी प्रकार असंप्रज्ञात समाधि के भेद के रूप में भव प्रत्यय व उपाय प्रत्यय का वर्णन किया गया है।

12.7 शब्दावली

१) आधि : मन के विकार।

२) तन्मात्रा : शब्द,स्पर्श,रूप,रस,गन्ध।

३) विदेह : जिस योगी का शरीर में अभिमान समाप्त हो गया है।

४) असम्प्रज्ञात : सम्प्रज्ञात का भी अभाव, ध्येय अर्थमात्र का भी निरोध होना।

५) अज्ञान : मिथ्या ज्ञान।

६) विराम प्रत्यय : चित्तवृत्ति निरोध का कारण परवैराग्य।

७) वितर्क : विशेष तर्क, जिस समाधि में वितर्क रहता है, वह सवितर्क समापत्ति है।

12.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. सरस्वती विज्ञानानन्द (2003), योग विज्ञान | योग निकेतन ट्रस्ट मुनि की रेति, ऋषिकेश।

2. निरजनानन्द (1994), योग दर्शन | श्री पंचदशनाम, परमहंस अलखवाड़ा, देवधर, विहार ।

3. जगदीशचन्द्र मिश्र 2012, भारतीय दर्शन । चौखम्भा सुर भारती प्रकाशन, वाराणसी।

12.9 सहायक ग्रन्थ

1 योगेन्द्र पुरूषार्थी (1999), वेदो में योग विद्या । यौगिक शोध संस्थान, हरिद्वार।

2 परमहंस स्वामी अनन्त भारती (संवत 2056), योगदर्शन । स्वामी केशवानन्द योग संस्थान, दिल्ली-85

3 योग सूत्र - प्रकाश गीता प्रेस गोरखपुर

4 भारतीय योगदर्शन - हरेन्द्र प्रसाद सिनदा

5 योग प्रभाकर - स्वामी केशवानन्द जी

12.10 बोध प्रश्नोत्तर

१) समान हो जाना / शान्त हो जाना ।

२) दो – सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात ।

३) चार ।

४) दो ।

५) समाधि ।

६) सम्प्रज्ञात ।

12.11 अभ्यास प्रश्न

1. समाधि से आप क्या समझते हैं ?

2. वितर्कानुगत और विचारानुगत समाधि से आप क्या समझते हैं ?

3. अस्मितानुगत और आनन्दानुगत समाधि से आप क्या समझते हैं ?

4. असंप्रज्ञात समाधि से आप क्या समझते हैं ?

5. सम्प्रज्ञात समाधि के भेदों की व्याख्या कीजिए ।

त्रयोदश पाठ
क्रियायोग का स्वरूप एवं महत्व

पाठ संरचना

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 क्रियायोग के अंग

13.4 स्वामी विवेकान्द अनुसार क्रियायोग

13.5 श्रीमद्भगवद्गीता में क्रियायोग

13.6 क्रियायोग का महत्त्व

बोधप्रश्न

13.7 ग्रन्थ का मूलपाठ

13.8 सारांश

13.9 शब्दावली

13.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

13.11 सहायक ग्रन्थ

13.12 बोध प्रश्नोत्तर

13.13 अभ्यास प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत पाठ आप क्रियायोग के बारे में पढने जा रहे हैं। प्रथम पाद में महर्षिपतंजलि ने समाहित चित्त वाले योग के उत्तम अधिकारियों के लिए योग का स्वरुप उसके भेद और उसका फल संप्रज्ञात और असंप्रज्ञात समाधि का विस्तार के साथ वर्णन किया है। इसमें उन्होनें योग के मुख्य उपाय अभ्यास और वैराग्य को बताया है। इन विधियों का लाभ केवल सहज शुद्ध अंत:करण संम्पन्न योगीजन ही उठा सकते है। क्योंकि विक्षिप्त चित्त वाले मध्यम अधिकारी जिनका चित्त सांसारिक वासनाओं तथा राग, द्वेष आदि से कलुषित (मलिन) है। उनके लिए अभ्यास और वैराग्य का होना कठिन है। उनकी चित्त स्थिति के अनुसार महर्षिपतंजलि ने द्वितीय पाद में सामान्य साधकों के लिए क्रमानुसार अंतस की सहज निर्मलतापूर्वक निर्बीज समाधि को प्राप्त करने का उपाय क्रियायोग के रूप में बताया है। जिसका वर्णन इस पाठ में अध्ययन करेंगे -

13.2 उद्देश्य - प्रस्तुत पाठ में आप जानेंगे -

- ❖ क्रियायोग का स्वरूप ।
- ❖ क्रियायोग का उद्देश्य ।

- ❖ विवेकानन्दानुसार क्रियायोग ।
- ❖ श्रीमद्भगवद्गीतानुसार क्रियायोग ।
- ❖ क्रियायोग का महत्त्व ।

13.3 क्रियायोग के अंग

महर्षि पतंजलि स्पष्ट करते हैं कि-

"तपः स्वाध्यायेष्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः" (पा.यो.सू.2/1)

अर्थात् तप स्वाध्याय एवं ईश्वर प्रणिधान अर्थात (शरणागति) ये तीनों ही क्रियायोग है।

1) **तप -** क्रिया योग में पहले अंग के रूप में तप का वर्णन है। अपने वर्ण, आश्रम, परिस्थिति और योग्यता के अनुरूप स्वधर्म का पालन करना और उसके पालन में अधिक से अधिक मानसिक व शारीरिक कष्ट को सहर्ष स्वीकार करना ही 'तप' है। व्रत, उपवास आदि भी तप के अंग है। निष्कामभाव से तप करने से अन्तः करण स्वयं शुद्ध हो जाता है।
2) **स्वाध्याय -** जिनसे अपने कर्तव्य अकर्तव्य का बोध हो, ऐसे वेद, शास्त्र, महापुरूषों के लेख आदि का पठन-पाठन और ईश्वर के ओंकार आदि किसी नाम का या मंत्र का जप करना 'स्वाध्याय' है।
3) **ईश्वर प्रणिधान** - ईश्वर के नाम रूपादि का श्रवण, कीर्तन तथा मनन करना, समस्त कर्मों को ईश्वर में समर्पित कर देना और उसी के अनुरूप कार्य करना ये सभी ईश्वप्रणिधान के अंतर्गत आते हैं। क्रियायोग के तीनों अंग योगसाधना के महत्वपूर्ण उपाय हैं।

महर्षिव्यास - अतपस्वी को योग सिद्ध नहीं होता। प्रणवादि पवित्र मंत्रो का जप अथवा मोक्ष शास्त्र का अध्ययन स्वाध्याय है। ईश्वर प्रणिधान परमगुरु ईश्वर को समस्त कर्मों अथवा कर्मफल आकांक्षा का त्याग ।

13.4 स्वामी विवेकान्द अनुसार क्रियायोग

स्वामी विवेकानन्द ने इस प्रकार से क्रियायोग का वर्णन निम्नवत किया हैं –

1) **तपस्या -** इस शरीर और इंद्रियों को चलाते समय लगाम अच्छी तरह थामें रहना, उन्हें अपनी इच्छानुसार काम न करने देकर अपने वश में किये रहना।
2) **स्वाध्याय -** स्वाध्याय का अर्थ है- "प्रत्येक वस्तु के सब पहलू देखकर विचार करना। इस विचार का अंत होने पर वह किसी एक मीमांसा या सिद्धान्त पर पहुचता है।"
3) **ईश्वरप्रणिधान -** ईश्वर में कर्मफल अर्पित करने का तात्पर्य -कर्म के लिए स्वयं कोई प्रशंसा या निंदा न लेकर इन दोनों को ही ईश्वर को समर्पित कर देना और शांति से रहना।

13.5 श्रीमद्भगवद्गीता में क्रियायोग

श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार भगवान श्रीकृष्ण भी गीता में क्रियायोग के संदर्भ में बताते हैं -

"युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।

युक्तस्वनावबोधस्य योगो भवति दुःखः ।" गीता 6/17

भावार्थ - सर्व दुःखनाशी योग तो अनुशासित संतुलित आहार-विहार जीवनचर्या अपनाने वाले जाग्रति एवं निद्रा में संतुलन रखने वाले सत्पुरुषों को ही सिद्ध रुप में प्राप्त होती है।

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन् ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोस्त्वकर्मणि ॥" गीता 2/47

भावार्थ - तू कर्म करने में ही स्वाधिकारी सम्पन्न है। कर्मो की फलप्राप्ति में तू स्वाधिकारी नहीं है। अतएव तू कर्मों के फल की हेतु स्थिति से मुक्त रह तथा कर्म, धर्म पालन में भी आसक्ति से मुक्त रह ।

स्पष्ट है कि मध्यम वर्ग के साधको के लिए क्रियायोग का बहुत महत्व है। इसमें तप, स्वाध्याय व ईश्वर प्रणिधान सम्मिलित रूप से है। इसका अर्थ है स्वयं को परिष्कृत करना और अंत में ईश्वर को सभी कर्म समर्पित करना।

इसको करने पर ही क्रियायोग संपन्न होता हैं क्योंकि इससे हमारी इन्द्रियादि संयमित होती है और उससे निर्मल चित्त की प्राप्ति होती है।

13.6 क्रियायोग का महत्त्व

क्रियायोग को स्पष्ट करने के पश्चात महर्षिपतंजलि ने इसकी महिमा का वर्णन किया है, तथा वह क्रियायोग के फल का वर्णन करते हुए स्पष्ट करते हैं-

समाधिभावनार्थः क्लेशतनुकरणार्थश्च ।" (पा.यो.सू.2/2)

अर्थात निश्चय ही वह (क्रियायोग) समाधि की सिद्धि करने वाला, और, अविद्यादि क्लेशों को क्षीण करना वाला है।

महर्षिव्यास- क्रियायोग भलीभांति आचरित होने पर समाधि अवस्था को उत्पन्न करता है और क्लेशों को प्रकृष्ट रुप से क्षीण करता है।

स्वामी विवेकानन्द- "क्रियायोग का सतत् अभ्यास आवश्यक है। जिससे मन को संयत करके अपने वश में लाया जा सके। क्रियायोग द्वारा मन को वशीभूत कर लेना उसे अपना कार्य कर न करने देना।"

अर्थात् क्रियायोग ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा समाधि तक पहुँचा जा सकता है। अर्थात् यह साधना है जिसमें हमारे संचित अविद्यादि क्लेश खत्म होते हैं । लेकिन इसका अभ्यास नियमित रूप से किया जाना चाहिए यह सभी विद्वानों ने स्वीकार किया है। अतः क्रियायोग क्लेश को तनु करने का साधन है ।

गीता परमात्मा प्राप्ति स्वरुप जिस स्थिति में योगी असहय दुःख से भी विचलित नहीं होता है। (6/22)

बोधप्रश्न

१) क्रियायोग के दूसरे अंग का नाम ..... है ।
२) क्रियायोग का वर्णन योगसूत्र के किस पाद में किया गया है ?
३) वेद, शास्त्र, महापुरुषों के लेख आदि पढना क्या कहलाता है ?
४) समाधि की सिद्धि कराने वाला और अविद्यादि क्लेशों को क्षीण करने वाला क्या है ?

13.7 ग्रन्थ का मूलपाठ

"तपः स्वाध्यायेष्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः" (पा.यो.सू.2/1)

"युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वनावबोधस्य योगो भवति दुःखः ।" गीता 6/17

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन् ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोस्त्वकर्मणि ॥" गीता 2/47

समाधिभावनार्थः क्लेशतनुकरणार्थश्च ।" (पा.यो.सू.2/2)

13.8 सारांश

इस प्रकार स्पष्ट है कि महर्षि पतंजलि ने मध्यम कोटि (विक्षिप्तचित्त) वाले साधकों का क्रियायोग के माध्यम से साधना क्षेत्र का मार्ग प्रशस्त किया है। जिसे अनेक भाष्यकारों ने व्याख्या की है। क्रियायोग के अंतर्गत तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर प्रणिधान सम्मिलित रूप से आते हैं। किसी एक अंग के न होने पर क्रियायोग की प्रक्रिया अधूरी रह जाती है तथा उससे वह परिणाम प्राप्त नहीं होते, जिनका वर्णन महर्षि पतंजलि ने किया है। क्रियायोग वास्तविक रूप में जीवन की संपूर्ण क्लेशों को समाप्त करने की सहज प्रक्रिया है, जिसे हम व्यावहारिक जीवन में अपनाकर अपनी समस्याओं से मुक्त रह सकते हैं ।

13.9 शब्दावली

१) तप : शारीरिक-मानसिक कष्टों को सहर्ष सहन करना ।
२) स्वाध्याय : स्वयं का अध्ययन, वेद शास्त्र अध्ययन ।
३) ईश्वरप्रणिधान : समस्त कर्मों को ईश्वर के प्रति समर्पण कर देना ।
४) युक्ताहार : यथायोग्य आहार ।
५) तनु : (अविद्यादि क्लेशों को) क्षीण करना ।

13.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. सरस्वती विज्ञानानन्द (2003), योग विज्ञान | योग निकेतन ट्रस्ट मुनि की रेति, ऋषिकेश।

2. निरजनानन्द (1994), योग दर्शन | श्री पंचदशनाम, परमहंस अलखवाड़ा, देवधर,विहार ।

3. जगदीशचन्द्र मिश्र 2012, भारतीय दर्शन । चौखम्भा सुर भारती प्रकाशन, वाराणसी।

13.11 सहायक ग्रन्थ

1. पाण्डेय राजकुमारी (2008), भारतीय योग परम्परा के विविध आयाम । राधा पब्लिकेशन, दिल्ली

2 व्यास महर्षि (2003), भगवदगीता। गीता प्रेस गोरखपुर।

3 परमहंस स्वामी अनन्त भारती (संवत 2056), योगदर्शन । स्वामी केशवानन्द योग संस्थान, दिल्ली-85

4 भारतीय योगदर्शन - हरेन्द्र प्रसाद सिनदा

5 योग प्रभाकर - स्वामी केशवानन्द जी

13.12 बोध प्रश्नोत्तर

१) स्वाध्याय ।

२) साधन पाद ।

३) स्वाध्याय ।

४) क्रियायोग ।

13.13 अभ्यास प्रश्न

1. क्रियायोग से आप क्या समझते है ?

2. क्रियायोग के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए ?

3. स्वामी विवेकान्द अनुसार क्रियायोग क्या हैं ?

4. श्रीमद्भगवद्गीता अनुसार क्रियायोग को स्पष्ट कीजिए ।

5. क्रियायोग का क्या प्रयोजन है ? व्याख्या कीजिए ।

चतुर्दश पाठ
अष्टांग योग

पाठ संरचना

14.1 प्रस्तावना

14.2 उद्देश्य

14.3 अष्टांग योग का महत्त्व एवं संक्षिप्त परिचय

14.3.1 यम

14.3.2 नियम

14.3.3 आसन

14.3.4 प्राणायाम

14.3.5 प्रत्याहार

14.3.6 धारणा

14.3.7 ध्यान

14.3.8 समाधि

बोधप्रश्न

14.3 ग्रन्थ का मूलपाठ

14.4 सारांश

14.5 शब्दावली

14.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

14.7 सहायक ग्रन्थ

14.8 बोध प्रश्नोत्तर

14.9 अभ्यास प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत पाठ में अष्टांग योग का संक्षिप्त परिचय का अध्ययन करने जा रहे हैं और इससे पूर्व पाठ में क्रियायोग का स्वरूप एवं महत्त्व को पढा । व्यक्तिगत विकास और उन्नति की दृष्टि से तो योग का महत्व प्रकट ही है। योग से सब प्रकार की शारीरिक और मानसिक शक्तियों की वृद्धि इच्छानुसार हो सकती है और फिर उन्हीं के द्वारा तरह-तरह के सांसारिक उद्देश्यों की प्राप्ति अधिक उत्तम रीति से और सहज में हो जाती है। संसार में जितने प्रसिद्ध पुरुष हुए हैं जिन्होनें कोई महान कार्य करके जगत् में यश प्राप्त किया है, वे किसी न किसी दृष्टि से योगी थे। यह सम्भव है कि उन्होनें योग और उसकी विधियों का कभी नाम भी न सुना हो पर संस्कारवश या शिक्षा के

द्वारा उन्होनें अपनी मानसिक शक्तियों को एकाग्र करके एक लक्ष्य पर केन्द्रितकरने की विधि का अभ्यास अवश्य किया था और इसी से वे अपने जीवन-कार्यों में सफलता प्राप्त करने में समर्थ हुए थे। योग शास्त्र में यौगिक क्रियाओं के फलस्वरूप प्राप्त होने वाले लाभों का वर्णन मिलता है जो इस प्रकार है-

श्वेताश्वतरोपनिषद् के अनुसार –

'न तस्य रोगो न जरा न मृत्यः प्राप्तस्योगाग्निमयं शरीरम् ।' 2/12

अर्थात् - योगी पर रोग, बुढ़ापा, कष्टों का कुछ प्रभाव नहीं पड़ता।

हठप्रदीपिका के अनुसार –

लघुत्वमारोग्यं लोलुपत्वं वर्ण-प्रसादः स्वरसौष्ठवञ्च

गन्ध शुभोमूत्रपुरीषमल्पं योग-प्रवर्तिं प्रथमा वदन्ति ॥ 2/78

अर्थात योगाभ्यास द्वारा शरीर मल रहित होकर हल्का हो जाता है स्वस्थ रहता है। विषय- वासना संयमित हो जाती है, कान्ति बढ़ जाती है, स्वर में माधुर्यं आ जाता है। ये सब योग के आरम्भिक लाभ है। ये ही सब जीवन की सफलता के साधन है।

अष्टांग योग योगसाधना हेतु महत्वपूर्ण एवं व्यावहारिक विधि है। प्रस्तुत अध्याय में अष्टांग योग के संदर्भ में अध्ययन करेंगे। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि से प्राप्त होने वाले व्यावहारिक लाभ के संदर्भ में हम इस अध्याय में अध्ययन करेंगे।

14.2 उद्देश्य - प्रस्तुत पाठ में आप जानेंगे-

- ❖ अष्टांग योग का स्वरूप ।
- ❖ यम -नियम का स्वरूप।
- ❖ आसन-प्राणायाम का स्वरूप।
- ❖ प्रत्याहार, धारणा- ध्यान, समाधि का स्वरूप।

14.3 अष्टांग योग का महत्त्व एवं संक्षिप्त परिचय

अष्टांग योग के आठ अंग निम्नलिखित है- **"यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोष्टावंगानि"** (पा.यो.सू. 2/29) अर्थात् - यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये आठ अंग है ।

योग की पूर्ण साधना के लिए इन आठों अंगों का क्रमशः अभ्यास आवश्यक है। क्रमशः एक-एक अंग पर पूर्ण अधिकार हो जाने पर ही अग्रिम योगांगों में प्रवृत्ति होती हैं। इन अष्टांगों में से प्रथम दो(यम-नियम) प्रधानतः आचार सम्बन्धी अभ्यास है, उसके बाद के दो अंग (आसन-प्राणायाम) शरीर को भौतिक रूप से योगाभ्यास योग्य बनाने के उपाय हैं। पाँचवा अंग प्रत्याहार प्रधानतः इन्द्रियनिग्रह का उपाय है और उसके बाद की प्रक्रियाएँ (धारणा, ध्यान तथा समाधि) पूर्ण रूप से मानसिक त आध्यात्मिक नियमन की साधनाएं है। यम,

नियम, आसन, प्राणायाम तथा प्रत्याहार को **बहिरंग योग** कहा जाता है और इसके विपरीत धारणा, ध्यान एवं समाधि को अन्तरंग योग कहा जाता है। ये संयुक्त रूप से 'संयम' कहलाते है। प्रत्याहार अन्तरंग तथा बहिरंग योग के बीच का एक महत्वपूर्ण **सेतु** है। बिना प्रत्याहार के **अन्तरंग योग** में प्रवृत्ति नहीं हो सकती।

14.3.1 यम

यम अष्टागंयोग का प्रथम अंग है। जो इस प्रकार है-

"अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः" सूत्र 2/30

1. अहिंसा, 2. सत्य, 3. अस्तेय, 4. ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह - ये पाँच यम बताये है। यम के इन अंगों का अर्थ और व्यावहारिक महत्व इस प्रकार है-

1) अहिंसा- मनसा, वाचा, कर्मणा किसी भी प्राणी को कभी भी, किसी प्रकार का दुःख न देना अहिंसा है। करता है। इसके अभ्यास से एक व्यापक प्रेम तथा भाई-चारे की भावना का विकास होता है, जो चित्त की शुद्धि घृणा की भावना का बहिष्कार भी अहिंसा का ही अंग है। महात्मा गांधी ने सत्य और अहिंसा को ही अपने दर्शन का आधार बनाया । उसके सर्वोदय तथा सत्याग्रह के मार्ग में सत्य और अहिंसा महत्वपूर्ण है। अहिंसा परोक्ष रूप से सत्य का निदेशक है। इस प्रकार हम समझ सकते हैं कि मात्र अहिंसा के माध्यम से ही चित्त की शुद्धता और भावनाओं को परिष्कृत किया जा सकता है।

2) सत्य- यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है, क्योंकि सत्य पर ही अन्य यम तथा नियमों का पालन निर्भर है। महात्मा गांधी ने सत्य पर विशेष बल दिया और सत्य को ही अपनी कार्य-पद्धति का आधार बनाया । उनके अनुसार सत्याग्रही व्यक्ति का समाज सत्याग्रह के माध्यम से सर्वोदय के पथ पर अग्रसर हो सकता है। सत्य के माध्यम से हम अपनी वाणी को संयमित और पवित्र बना सकते हैं।

3) अस्तेय - अस्तेय का तात्पर्य है दूसरे के धन, वस्तु या विचारों का अपने हित में प्रयोग की प्रवृत्ति से

विरत होना। अस्तेय से व्यक्तिगत चित्तशुद्धि के अतिरिक्त व्यापक सामाजिक तनाव भी कम होता है। अर्थात् दूसरों के वैभव-ऐश्वर्य को देखकर हमारे अंदर ईर्ष्या, द्वेष अथवा लोभ का भाव न आना। अस्तेय के माध्यम से हम इस प्रकार की मानसिक दुर्भावनाओं से दूर रहते हैं।

4) ब्रह्मचर्य - ब्रह्मचर्य स्वधर्म से विरत न होने का बोधक है। यह केवल मात्र मैथुनकर्म से विरत होना नहीं है। परन्तु मैथुन कर्म से विरत रहना ब्रह्मचर्य का एक महत्वपूर्ण अंग अवश्य है, क्योंकि यह साधक के मन व शरीर की शुद्धि के साथ-साथ उसे सामाजिक तथा शारीरिक दृष्टि से सबल रखता है, ताकि साधना के पथ पर वह कुशलता से अग्रसर हो सके।

5) **अपरिग्रह**- अपने स्वार्थ के लिए ममतापूर्वक धन, सम्पत्ति और भोग सामग्री का संचय करना 'परिग्रह' है इसके अभाव का नाम 'अपरिग्रह' है। अपरिग्रह अर्थात् आवश्यकतानुसार ही भौतिक साधनों का संचय व उपयोग करना ।

इस प्रकार पाँच प्रकार के यमों का पालन करने के रूप में योग-दर्शन ने उन कर्तव्यों की शिक्षा दी है जिनके बिना समाज का अस्तित्व तथा सुस्थिरता कायम नहीं रह सकती और आध्यात्मिक उन्नति तो क्या मनुष्य साधारण रूप से भी जीवन निर्वाह कर सकने, शान्तिपूर्वक खा सकने तथा सो सकने में असमर्थ हो जायेगा। ये पाँचों कर्तव्य या व्रत ऐसे है जो प्रत्येक सभ्य व्यक्तियों के लिए पालन करने आवश्यक है।

14.3.2 नियम

नियम अष्टागं योग का द्वितीय अंग है। पतन्जलि के अनुसार -

"शौचसंतोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः" । सूत्र 2/32

1. शौच, 2. सन्तोष, 3. तप, 4. स्वाध्याय, 5. ईश्वरप्रणिधान- ये पाँच नियम बताये हैं।

1) शौच - शौच का तात्पर्य है जीवन के शारीरिक, मानसिक क्रिया-कलाप के प्रत्येक क्षेत्र में शुद्धता का अभ्यास। शरीर, वस्त्र और आवास आदि के मल को दूर करना बाह्य शुद्धि है। वर्णाश्रम और योग्यतानुसार प्रमाणपूर्वक अन्न, धन आदि पवित्र व्यवहार करना भी बाह्य शुद्धि ही है। जप, तप और शुद्ध विचारों द्वारा तथा मैत्री आदि की भावना से अन्तः करण के राग द्वेषादि मलों का नाश करना आभ्यन्तर शौच है।

2) सन्तोष - शौच के बाद सन्तोष दूसरा नियम है। कर्तव्य-कर्म का पालन करते हुए उसका जो परिणाम हो तथा प्रारब्ध के अनुसार स्वयं जो कुछ प्राप्त हो तथा जिस परिस्थिति में रहना पड़े, उसी से सन्तुष्ट और अन्य किसी प्रकार की कामना न करना 'संतोष' है। संतोष के माध्यम से व्यक्ति के जीवन में शांति और सुख का आगमन होता है।

3) तप - इसका शाब्दिक अर्थ है-तपाना, जलाना, चमकाना, कष्ट सहना अथवा उष्णता से जलना । इसलिए इसका अर्थ है, जीवन में एक निश्चित ध्येय की प्राप्ति के लिए किन्ही भी स्थितियों में सतत् अथक प्रयत्न। इसमें पवित्रता, आत्मसंयम और कठिन तपस्या समाविष्ट है। महयोगी तप से शरीर, मन, और चरित्र की शक्ति का विकास करता है। वह साहस, ज्ञान, स्थिरता, खरापन और सादगी प्राप्त करता है। तप दिव्यात्मा से अंतिम मिलन की प्राप्ति का और इस उद्देश्य के मार्ग में बाधक बनने वाली सभी चित्त परमात्मा तह पहुँच नहीं सकता है। कामनाओं को जलाने का जागृत प्रयत्न है। तप के बिना जीवन प्रेमहीन हृदय के समान है। तप के बिना

4) स्वाध्याय - स्व का अर्थ है स्वयं और अध्याय का अर्थ है अध्ययन करना। इसलिए स्वाध्याय आत्मअध्ययन है। यह अपनी जीवन दशा का उचित मूल्यांकन एवं जीवन का सही दिशा निर्धारण है। स्वस्थ, प्रसन्न एवं शान्त जीवन बनाने के लिए पवित्र स्थान में दिव्य (धार्मिक) ग्रंथों का नियमित अध्ययन आवश्यक है। संसार के धार्मिक ग्रंथों का यह अध्ययन साधक को ध्यान केन्द्रित करने में और जीवन की कठिन समस्याओं, जब वे उपस्थित होगी, तब उन्हें सुलझाने में समर्थ बनाएगा। वह अज्ञान को मिटाकर ज्ञान को सुलभ कराएगा। उन्नत विचार जो स्वाध्याय से निकलते है वे व्यक्ति की रक्तवाहिनी में पहुँचते हैं जिससे वे व्यक्ति के जीवन और अस्तित्व के अंग हो सकें।

5) ईश्वरप्रणिधान - ईश्वर प्रणिधान का तात्पर्य है कि ईश्वर के पूर्ण भक्ति भावनापूर्वक आत्म समर्पण सहित उपासना जिस के द्वारा आराधित ईश्वर उपासक के अभीष्ट को सिद्धि करता है। इसका सही-सही अभ्यास वस्तुतः अविद्यादि पंचक्लेशों का मूलोछेदन करते हुए मानसिक शांति एवं व्यक्तित्व संगठन का ठोस आधार बनाता है।

14.3.3 आसन

योगाङ्गों में आसनों का तृतीय स्थान है। आसन शब्द संस्कृत के 'अस् उपवेशने' धातु से 'ल्युट्' प्रत्यय लगकर बना है। जिससे उसका अर्थ है, स्थिरता से बैठना। आसनों का पूर्ण वर्णन हठयोग से ग्रन्थों में ही उपलब्ध होता है। हठयोग प्रदीपिका में आसन का योगाभ्यास में प्रथम स्थान है। हठयोग में आसनों के अनेक भेद बतलायें गये हैं, परन्तु योगसूत्रकार **महर्षि पतंजलि** के अनुसार -

"स्थिरंसुखमासनम्" सूत्र 2/46

अर्थात् साधक अपनी आवश्यकता के अनुसार जिस भी विधि से स्थिरभाव से सुखपूर्वक बहुत समय तक बैठ सके, वही आसन है।

श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है - **'समं काय शिरोमीव्र धारयन्न चलं स्थिरः'** (गीता 6/13)

अर्थात् कमर से लेकर गले तक का भाग सिर और गले को सीधे अचल धारण करके तथा दिशाओ को ना देंखे अपनी नासिका के अग्र भाग को देखते हुए स्थिर होकर बैठना ही आसन है। योगसूत्र के अनुसार - 'स्थिर सुखमासनम्।'- पा० यो० सू० 2/46 अर्थात् स्थिर और सुखपूर्वक बैठना आसन कहलाता है। आसन के लाभ का वर्णन करने हुए योगसूत्र में कहा गया है।

'ततो द्वन्दाभिघातः' । पा० यो० सू० 2/48 अर्थात् आसन की सिद्धि से किसी भी प्रकार के द्वन्द अर्थात् सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास, हर्ष, विषाद आदि का आघात नहीं लगता है, और साधना में बाधा उत्पन्न नहीं होती हैं।

आसनों का अभ्यास शरीरिक एवं मानसिक विकास तथा, व्याधि-निवारण, हेतु बताया गया है। इसी कारण से आधुनिक समाज में आसनों का अभ्यास दैनिक जीवन के तनाव को कम करने के किया जाता है।

14.3.4 प्राणायाम

प्राणायाम का अर्थ है-प्राण का विस्तार करना। स्थूल रूप में यह जीवनी शक्ति प्राण से संबंधित है। योगसूत्रकार **महर्षिपतंजलि** के अनुसार -

"तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविछेदः प्राणायामः" सूत्र 2/49

अर्थात् उस आसन की सिद्धि होने के बाद श्वास और प्रश्वास की गति का स्थिर होना ही प्राणायाम हैं। प्राणायाम के तीन अंग हैं -

- पूरक-श्वास को अंदर खींचना,
- कुंभक-श्वास को रोकना तथा

❖ रेचक-श्वास को बाहर छोड़ना।

फिर भी इसका प्रयोग विशिष्ट ढंग से क्रमबद्ध शरीर क्रियात्मक विकास तथा मनोदैहिक विश्रांति के लिए करते हैं। प्राणायाम से अंतःस्रावी ग्रंथियों तथा चयापचयात्मक क्रियाओं में विकास, हृदय तथा फेफड़ों की क्रिया में सुधार के लक्षण देखे गये हैं। महर्षिपतंजलि के अनुसार प्राणायाम केवल श्वसनिक व्यायाम ही नहीं अपितु एक विशिष्ट प्रकार की विधि है, जिससे शारीरिक तथा मानसिक स्वस्थता का अनुभव होता है। प्राणायाम चित्त की एकाग्रता एवं स्थिर दृढ़ता प्रदान करने वाली। विज्ञानसम्मत यौगिक विद्या है।

'धारणासु च योग्यता मनसः' (पा.यो.सू. 2/53) अर्थात् प्राणायाम की सिद्धि हो जाने से मन में धारणा की योग्यता आ जाती है ।

14.3.5 प्रत्याहार

प्रत्याहार वस्तुतः महर्षि पतञ्जलि के अष्टांगयोग में अन्तरंग तथा बहिरंग अवस्थाओं में सेतु रूप माना है। **महर्षिपतंजलि** के अनुसार -

"स्वविषयासप्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः**"** सूत्र **2/54**

अर्थात् अपने विषयों के सम्बन्ध से रहित होने पर इंद्रियों का जो चित्त स्वरूप में तदाकार सा हो जाता है वह प्रत्याहार है। प्रत्याहार स्वनियन्त्रण की प्रक्रिया है, जिसका अर्थ अपनी इन्द्रियों को उनके विषयों से पृथक रखना है। प्रत्याहार मनोनिरोध एवं इन्द्रिय-व्यापार से मन को अलग करने की प्रक्रिया है। वस्तुतः प्रत्याहार द्वारा योगी अपने मन को स्वयं में केन्द्रित कर इसे इन्द्रियों द्वारा प्राप्त तरंगों से पृथक कर लेता है। व्यावहारिक रूप से प्रत्याहार जीवन के अवांछनीय प्रवाह से स्वयं को समेटने व आत्मान्मुख करने का अभ्यास है। प्रत्याहार सिद्ध होने पर साधक अपनी इन्द्रियों, विचारों एवं भावनाओं पर नियंत्रण प्राप्त कर लेता है।

साधना में प्रवृत्त होने के लिए इन्द्रियों को संयमित करना जरूरी है अतः प्रत्याहार अत्यन्त आवश्यक है। प्रत्याहार के सिद्ध होने पर ही धारणा, ध्यान, समाधि की अवस्था क्रमशः प्राप्त होती है। प्रत्याहार का फल -

'ततः परमावश्यतेन्द्रियाणाम' (पा०यो सू०2/55)

अर्थात् इस प्रत्याहार के सिद्ध होने पर इन्द्रिया पूर्ण तथा मनुष्य के वश में हो जाती है।

14.3.6 धारणा

धारणा पतन्जलि के अष्टांगयोग में छठे, अंग के रूप में वर्णित है। पतंजलि ने धारणा को अन्तरंगयोग मानते हुए संयम का अंग माना है। **महर्षिपतंजलि** के अनुसार –

"देशबंधश्चित्तस्य धारणा" सूत्र 3/1

अर्थात् किसी एक देश में चित्त को ठहराना धारणा है।

वस्तुतः यह एक प्रकार का मानसिक व्यायाम है, जो साधक को आगे ध्यान तथा समाधि के अभ्यास में समर्थ बनाता है। धारणा में भी वही साधक पूर्ण सफल होता है, जो बहिरंग योगाभ्यास के साथ-साथ प्रत्याहार का सफल अभ्यास कर रहा है। धारणा से मन की एकाग्रता व स्थिरता में वृद्धि होती है, जो कि व्यक्तित्व विकास हेतु अनिवार्य घटक है। इस तरह धारणा व्यक्तित्व के संगठन को सुदृढ़ बनाने में सहायक है।

14.3.7 ध्यान

धारणा के पश्चात् योगांग का सातवाँ अंग ध्यान की प्रक्रिया है। ध्येय का निरन्तर मनन ही ध्यान है । पतंजलि के अनुसार

"तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ।" सूत्र 3/2

अर्थात् जहां चित्त को लगाया जाय उसी में वृत्ति का लगातार चलना ध्यान है। जब धारणाभ्यासी देश-विशेष में मन को लगाते हुए मन को ध्येय विषय पर स्थिर कर लेता है तो उसे ध्यान कहते हैं। यह समाधि-सिद्धि के पूर्व की अवस्था है। अर्थात जिस अवस्था में केवल ध्येय मात्र की ही वृत्ति का प्रवाह बने तथा ध्याता व ध्येय के बीच में कोई भी दूसरी वृत्ति न उठे वही ध्यान है। वस्तुतः मानवीय चेतना के सभी स्तरों को प्रकाशित करता है तथा चेतना को परिष्कृत करता है।

यह चेतन मन को जाग्रत करने की प्रक्रिया है तथा अचेतन मन की दबी हुई ग्रंथियों का निराकरण कर चेतना की उच्च अवस्था तक पहुँचाने की विधि है। इस तरह ध्यान के द्वारा समूचा मन सशक्त तथा संगठित होता है।

14.3.8 समाधि

समाधि पातंजलि अष्टांगयोग का आठवां तथा अन्तिम लक्ष्य है। प्रायः योग की सभी विचारधाराओं में समाधि को अन्तिम लक्ष्य स्वीकार किया गया है। यह मन की समस्त वृत्तियों के निरोध या विनाश की अवस्था है। **पतंजलि के** अनुसार-

"तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः" सूत्र 3/3

अर्थात् जब ध्यान में केवल ध्येय मात्र की ही प्रतीत होती है और चित्त का निज स्वरूप शून्य हो जाता है, तब वही (ध्यान ही) समाधि हो जाता है।

धारणाभ्यास में बाह्यकर्षण कम हो जाते है और ध्यान की अवस्था में निजस्वरूपाभाष की आवृत्ति कम होते होते समाधि अवस्था में पहुँचने तक चेतना पूर्णरूप से अहं तथा अन्य विकारों से रहित हो जाती है और चेतना के क्षेत्र में ध्येय मात्र शेष रह जाता है। इस स्थिति में किसी तरह का तनाव, द्वन्द्व आदि की ग्रंथियां नहीं रहते। यह मानसिक स्वास्थ्य संतुलन एवं कार्यक्षमता की चरम अवस्था है और भारतीय चिंतन में जीवन का परम एवं चरम ध्येय भी है।

बोधप्रश्न

१) यम, नियम, आसन, प्राणायाम तथा प्रत्याहार को क्या कहा जाता है ?

२) 'अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रह.....' रिक्त स्थान को भरें ।

३) मनसा,वाचा,कर्मणा से किसी को भी कभी दु:ख न देना कहलाता है ?
४) सम्पत्ति और भोग सामग्री का संचय करना क्या कहलाता है ?
५) बहिरंग योग का वर्णन योगसूत्र के किस पाद में किया गया है ?
६) योगांग के किस अंग का आचार-विचार से सम्बन्ध है ?
७) प्राणायाम की सिद्धि हो जाने पर मन में .....की योग्यता आ जाती है।
८) अष्टांग योग का पाँचवा अंग .....है।

14.3 ग्रन्थ का मूलपाठ

'न तस्य रोगो न जरा न मृत्यः प्राप्तस्योगाग्निमयं शरीरम् ।' (श्वेताश्वतरोपनिषद् 2/12)

लघुत्वमारोग्यं लोलुपत्वं वर्ण-प्रसादः स्वरसौष्ठवञ्च

गन्ध शुभोमूत्रपुरीषमल्पं योग-प्रवर्तिं प्रथमा वदन्ति ॥ (हठप्रदीपिका 2/78)

"यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोष्टावंगानि" (पा.यो.सू. 2/29)

"अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः" (पा.यो.सू. 2/30)

जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम् (पा.यो.सू. 2/31)

शौचसंतोषतप:स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमा: (पा.यो.सू. 2/32)

वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम् (पा.यो.सू. 2/33)

वितर्का हिंसादय: कृतकारितानुमोदिता लोभक्रोधमोहपूर्वका मृदुमध्याधिमात्रा दु:खाज्ञानानन्तफला इति प्रतिपक्षभावनम् (पा.यो.सू. 2/34)

अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्याग: (पा.यो.सू. 2/35)

सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम् (पा.यो.सू. 2/36)

अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम् (पा.यो.सू. 2/37)

ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभ: (पा.यो.सू. 2/38)

अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासंबोध: (पा.यो.सू. 2/39)

शौचात्स्वाङ्गजुगुप्सा परैरसंसर्ग: (पा.यो.सू. 2/40)

सत्त्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियजयात्मदर्शनयोग्यत्वानि च (पा.यो.सू. 2/41)

संतोषादनुत्तमसुखलाभ: (पा.यो.सू. 2/42)

कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपस: (पा.यो.सू. 2/43)

स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोग: (पा.यो.सू. 2/44)

समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात् (पा.यो.सू. 2/45)

स्थिरसुखमासनम् (पा.यो.सू. 2/46)

प्रयत्नशैथिल्यानन्तसमापत्तिभ्याम् (पा.यो.सू. 2/47)

ततो द्वन्द्वानभिघात: (पा.यो.सू. 2/48)

तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेद: प्राणायाम: (पा.यो.सू. 2/49)

बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकालसंख्याभि: परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्म: (पा.यो.सू. 2/50)

बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थ: (पा.यो.सू. 2/51)

तत: क्षीयते प्रकाशावरणम् (पा.यो.सू. 2/52)

धारणासु च योग्यता मनस: (पा.यो.सू. 2/53)

स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहार: (पा.यो.सू. 2/54)

तत: परमा वश्यतेन्द्रियाणाम् (पा.यो.सू. 2/55)

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा (पा.यो.सू. 3/1)

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् (पा.यो.सू. 3/2)

तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधि: (पा.यो.सू. 3/3)

त्रयमेकत्र संयम (पा.यो.सू. 3/4)

14.4 सारांश

अष्टांग योग के ये अंग ऐसे उपाय हैं जिनसे शारीरिक तथा मानसिक विकास होता है। वास्तव में अष्टांग योग के प्रत्येक अंग पृथक रूप से योग के अभ्यास में एक-एक सीढ़ी की तरह हैं जो कि जीवन के लिए उपयोगी व श्रेष्ठ है। अष्टांग योग के प्राथमिक अंग यम, नियम, आसन, प्राणायाम बहिरंग योग कहलाते हैं तथा धारणा, ध्यान, समाधि अंतरंग योग कहलाते हैं। प्रत्याहार इन दोनों के मध्य सेतु के समान है। बहिरंग को साधने के पश्चात ही अंतरंग योग की प्राप्ति की जा सकती है। जीवन की सभी समस्याओं की गुत्थियों को सुलझाने के लिए अष्टांग योग अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस पाठ में हमने अष्टांग योग के महत्व और संक्षिप्त अध्ययन किया । इस प्रकार मनुष्य कैवल्य या मोक्ष की प्राप्ति कर संसार सागर से पार हो जाता है । यही मानव जीवन का अन्तिम पुरुषार्थ व लक्ष्य है ।

14.5 शब्दावली

१) जरा : बुढापा।
२) अहिंसा : हिंसा न करना।
३) अस्तेय : चोरी न करना।
४) अपरिग्रह : अत्यधिक वस्तु संग्रह न करना।
५) शौच : पवित्रता।
६) तप : कष्ट सहना, जलाना, तपाना।
७) ऐकतानता : (वृत्ति का) एकतार चलना, चित्त की पूर्ण एकाग्रता।
८) प्रत्याहार : इन्द्रिय संयम, इन्द्रियों को अन्तर्मुखी बनाना।
९) प्राणायाम : प्राण का विस्तार, प्राण का नियन्त्रण।

14.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. विज्ञानानन्द सरस्वती (2003), योग विज्ञान | योग निकेतन ट्रस्ट मुनि की रेति, ऋषिकेश।

2. निरजनानन्द (1994), योग दर्शन | श्री पंचदशनाम, परमहंस अलखवाड़ा, देवधर, विहार।

14.7 सहायक ग्रन्थ

1. पाण्डेय राजकुमारी (2008), भारतीय योग परम्परा के विविध आयाम। राधा पब्लिकेशन, दिल्ली

2 व्यास महर्षि (2003), भगवदगीता। गीता प्रेस गोरखपुर।

3 योगेन्द्र पुरूषार्थी (1999), वेदो में योग विद्या। यौगिक शोध संस्थान, हरिद्वार।

4 परमहंस स्वामी अनन्त भारती (संवत 2056), योगदर्शन। स्वामी केशवानन्द योग संस्थान, दिल्ली-85

5 मुक्ति के चार सोपान - स्वामी दयानन्द सरस्वती

6 योग सूत्र - प्रकाश गीता प्रेस गोरखपुर

7 नन्दलाल दशोरा (2006), पातंजल योगसूत्र। रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार।

8 पातञ्जल योग प्रदीप (1999), गीता प्रेस गोरखपुर।

14.8 बोध प्रश्नोत्तर

१) बहिरंग योग।
२) यमा:।
३) अहिंसा।
४) परिग्रह।

५) साधन पाद ।

६) यम-नियम ।

७) धारणा ।

८) प्रत्याहार ।

14.9 अभ्यास प्रश्न

1. यम के अंग क्या हैं ? तथा यह हमारे जीवन के लिए क्यों महत्वपूर्ण हैं ?
2. नियम के अंग क्या हैं ? तथा यह हमारे जीवन के लिए क्यों महत्वपूर्ण है ?
3. प्रत्याहार से आप क्या समझते हैं ?
4. बहिरंग योग का सविस्तार वर्णन कीजिए ।
5. अन्तरंग योग साधना से आप क्या समझते हैं ? स्पष्ट कीजिए ।
6. आसन के स्वरूप की व्याख्या कीजिए ।
7. अष्टांग योग का जीवन में क्या महत्त्व हैं ? सविस्तार वर्णन कीजिए ।

पञ्चदश पाठ

संयम और विभूतियों का स्वरुप

पाठ संरचना

15.1 प्रस्तावना

15.2 उद्देश्य

15.3 संयम का स्वरूप

15.4 संयम का परिणाम

15.5 विभूति का अर्थ एवं स्वरूप

15.6 विभूतियों के भेद

15.6.1 ज्ञानात्मक विभूतियाँ

15.6.2 क्रियात्मक विभूतियाँ

बोधप्रश्न

15.7 ग्रन्थ का मूलपाठ

15.8 सारांश

15.9 शब्दावली

15.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

15.11 सहायक ग्रन्थ

15.12 बोध प्रश्नोत्तर

15.13 अभ्यास प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

पिछले पाठ में आपने महर्षिपतंजलि द्वारा वर्णित अष्टांगयोग का अध्ययन किया था। प्रस्तुत पाठ में संयम और विभूतियों के स्वरूप का अध्ययन करेंगे । महर्षि पतञ्जलि ने संयम को ही विभिन्न विभूतियों का आधार माना है और स्पष्ट किया है कि संयम की सिद्धि से क्रमशः बुद्धि का आलोक तथा इसका विनियोग स्थूल और सूक्ष्म विषयों पर करने से विभिन्न विभूतियाँ प्राप्त होती हैं। ये विभूतियां क्रमशः ज्ञानात्मक एवं क्रियात्मक रूप में वर्णित हैं। प्रस्तुत अध्याय में हम विभूतियों के संदर्भ में अध्ययन करेंगे।

15.2 उद्देश्य - प्रस्तुत पाठ में आप जानेंगे -

- संयम का अर्थ ।
- संयम का स्वरुप ।
- संयम का परिणाम ।

- ❖ विभूतियों का अर्थ ।
- ❖ ज्ञानात्मक विभूतियों का स्वरूप ।
- ❖ क्रियात्मक विभूतियाँ का स्वरूप ।

15.3 संयम का स्वरूप

धारणा, ध्यान तथा समाधि को सम्मिलित रूप से संयम कहा जाता है। धारणा एक प्रकार मानसिक प्रक्रिया है, जिसमें मन को एक विशिष्ट क्षेत्र में सीमित कर स्थिर रखा जाता है। इसके बाद ध्यान की स्थिति आती है, जिसमें मानसिक तरंगों में स्थिरता आ जाती है। इसके बाद समाधि की अवस्था आती है। वस्तुतः धारणा, ध्यान और समाधि एक ही उच्च मानसिक अवस्था की प्राप्ति के लिए संघटक अवस्थाएँ है। इन्हीं के एकीकृत अवस्था को संयम कहते हैं। इस एकीकृत अवस्था को त्रिपुटी के नाम से भी जाना जाता है। संयम के अध्ययन से पहले हम त्रिपुटी के संदर्भ में अध्ययन करेंगे, जिससे कि संयम का स्पष्टीकरण हो सके, जो इस प्रकार है-

महर्षिपतंजलि ने संयम को निम्न सूत्र में धारणा, ध्यान व समाधि तीनो की एकीकृत अवस्था बताया है-

"त्रयमेकत्र संयमः" सूत्र 3/4

महर्षिव्यास - एक विषय के तीनों साधनों को संयम कहते हैं। इन तीनो की शास्त्रीय परिभाषा संयम है।

15.4 संयम का परिणाम

ये तीनो एक ही विषय वस्तु होने पर परिणाम या फल देते हैं। **महर्षि पतंजलि** ने इसे निम्न सूत्र

में बताया है-

"तज्जयात्प्रज्ञालोकः " सूत्र 3/5

उसको (संयम को) जीत लेने से बुद्धि का आलोक प्राप्त होता है।

महर्षिव्यास - "संयम जय से समाधि प्रज्ञा का आलोक होता है।"

स्वामी विवेकानन्द - "जब कोई मनुष्य इस संयम के साधन में सफल हो जाता है, तब सारी शक्तियां

उसके हाथ में आ जाती है।"

15.5 विभूति का अर्थ एवं स्वरूप

विभूति का शाब्दिक अर्थ- विभूति का शाब्दिक अर्थ 'विलक्षण ऐश्वर्य' होता है। विभूति शब्द उन ऐश्वर्यो का वाचक है जिनके द्वारा संपूर्ण सृष्टि के कार्यों पर नियंत्रण प्राप्त किया जा सके।" विभूति अर्थात

संपदा। संपदावान व्यक्ति विभूति संपन्न माने जाते हैं। सामान्य से अलग विशेष गुणों का, सिद्धियों का विकसित होना ही विभूति है।

पतंजलि के योग सूत्र में विभूतियों की विशेष चर्चा है। योग सूत्र चार पादों में से तीसरे पाद का नामकरण ही विभूतिपाद है जो कैवल्य पाद के पूर्ववर्ती है। कैवल्य हेतु योगाभ्यास कर रहे साधक की साधना एकाग्रता एवं चित्त की शुद्धि की प्रगाढ़ता के क्रम में उसके अन्दर अनेकों अद्भूत रहस्यमयी शक्तियों का जागरण होने लगता है जिन्हें विभूतियाँ कहा गया है। अष्टांग योग (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि) साधना से प्राप्त होने वाली विभूतियों को समझने के लिए उन्हें निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है

क. वहिरंग योग साधना जन्य विभूतियाँ

ख. अंतरंग योग साधना जन्य विभूतियाँ/ संयम जन्य विभूतियाँ।

वहिरंग योग साधना जन्य विभूतियाँ : अष्टांग योग के प्रथम पाँच अंगों- 1. यम 2. नियम 3. आसन 4. प्राणायाम और 5.प्रत्याहार को वहिरंग योग कहा गया है।

अंतरंग योग साधना जन्य विभूतियाँ : अष्टांग योग के अन्तिम तीन अंगों- 1. धारणा 2. ध्यान 3. समाधि को अन्तरंग योग कहा गया हैं ।

ये संपदाएं लौकिक व अलौकिक रूप में दो प्रकार की होती हैं-

1) **लौकिक -** लौकिक विभूति के अंतर्गत सांसारिक गुण एवं धन सम्पदाएं आती हैं। कलाकारों, धनवानों आदि प्रतिभासंपन्न व्यक्तियों को इसी विभूति के अंतर्गत रखा जाता है।
2) **अलौकिक -** मुख्यतः अलौकिक संपदाओं को ही विभूति माना जाता है। महर्षि पंतजलि ने अलौकिक गुणों को ही विभूति कहा है।"

15.6 विभूतियों के भेद

महर्षि पतंजलि द्वारा वर्णित विभूतियों को मुख्यतः दो भागों में बांटा गया है।

1. ज्ञानात्मक
2. क्रियात्मक

15.6.1 ज्ञानात्मक विभूतियाँ - **ज्ञानात्मक -** इसके अतंर्गत वे विभूतियाँ आती हैं, जिनका मात्र ज्ञान होता है,

वे क्रिया में नहीं आती अर्थात वह केवल अनुभवजन्य ज्ञान है जिसे सामान्य व्यक्ति प्राप्त नहीं कर सकता। इसका वर्णन तीसरे अध्याय विभूतिपाद के सूत्र संख्या 16-37 तक किया गया है।

महर्षिपतंजलि ने सर्वप्रथम ज्ञानात्मक विभूतियों का वर्णन किया है जो इस प्रकार है-

1. पूर्व जन्म का ज्ञान-

संस्कारसाक्षात्करणात् पूर्वजातिज्ञानम्। सूत्र 3/18

संस्कारों का साक्षात् कर लेने से पूर्वजन्म ज्ञान (हो जाता है)।

2. समस्त लोकों का ज्ञान-

भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात् । सूत्र 3/26

सूर्य पर संयम करने से समस्त लोकों का ज्ञान हो जाता है।

पुराणों में चौदहों भुवनों का वर्णन आता है, उनमें से एक भूलोक है, उन चौदहों भुवनों का ज्ञान, सूर्य में संयम करने से हो जाता है।

3. तारा व्यूह का ज्ञान-

चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम्। सूत्र 3/27

चन्द्रमा में संयम करने से सब तारों के व्यूह (स्थिति-विशेष) का ज्ञान हो जाता है। चन्द्रमा में संयम करने से कौन सा तारा किस स्थान में स्थित है, इसका यथावत् ज्ञान हो जाता है।

4. तारों की गति का ज्ञान-

ध्रुवे तद्गतिज्ञानम् । सूत्र 3/28

ध्रुव तारों में संयम करने से उन ताराओं की गति का ज्ञान हो जाता है। ध्रुवतारा निश्चल है और सब ताराओं की गति का उससे संबंध है, अतः उसमें संयम करने से समस्त ताराओं की गति का अर्थात् कौन सा तारा कितने समय किस राशि और नक्षत्र पर जायेगा- इसका पूरा-पूरा ज्ञान हो जाता है।

5. शरीर संस्थान का ज्ञान-

नाभिचक्रे कायव्यूहज्ञानम् । सूत्र 3/29

नाभि चक्र में (संयम करने से) शरीर के व्यूह (उसकी स्थिति) का पूरा ज्ञान हो जाता है। नाभि में स्थित जो चक्र है, जिसमें शरीर की समस्त नाड़ियां गुर्थी हुई हैं, उसमें संयम करने से शरीर के व्यूह का ज्ञान हो जाता है अर्थात शरीर का संगठन किस प्रकार हुआ है, उसमें कौन सी धातु किस प्रकार कहाँ स्थित है, इन सबका और समस्त नाड़ियों का योगी को पूरा-पूरा ज्ञान हो जाता है।

6. भूख प्यास पर विजय-

कण्ठकूपे क्षुत्पिपासानिवृत्तिः । सूत्र 3/30

कण्ठकूप में (संयम करने से) भूख और प्यास की निवृत्ति हो जाती है। जिह्वा के नीचे एक तन्तु है (जिसे जिह्वामूल भी कहते हैं), उसके नीचे कण्ठ है, उसके नीचे कूप (गड्ढा) है। उस कण्ठकूप में संयम करने से भूख प्यास की बाधा मिट जाती है। इसमें यह कारण बतलाया जाता है कि उस कण्ठ कूप से प्राणवायु टकराती है, उसी से भूख-प्यास की बाधा होती है, उसमें संयम करने के बाद वह नहीं होते।

7. स्थिरता की प्राप्ति-

कूर्मनाड्यां स्थैर्यम् । सूत्र 3/31

कूर्माकार (नाड़ी में संयम करने से) स्थिरता होती है। कण्ठकूप के नीचे वक्षःस्थल में एक कछुए के आकार वाली नाड़ी है, उसमें संयम करने से स्थिर स्थिति की प्राप्ति हो जाती है अर्थात् चित्त और शरीर- दोनों स्थिर हो जाते हैं।

8. सिद्ध पुरूषों के दर्शन-

मूर्धज्योतिषि सिद्धदर्शनम् । सूत्र 3/32

मूर्ध की ज्योति में (संयम करने से) सिद्ध पुरुषों का ज्ञान होता है । सिर के कपोल में एक छिद्र है । वहाँ जो प्रकाशमयी ज्योति है, उसमें संयम करने वाले को पृथ्वी और स्वर्ग लोक के बीच में विचरने वाले सिद्धों के दर्शन होते हैं ।

15.6.2 क्रियात्मक विभूतियाँ - क्रियात्मक - ज्ञानात्मक विभूति से पुरूषज्ञान की प्राप्ति होती है। इसके पश्चात क्रियात्मक सिद्धियों का वर्णन है जो क्रिया रूप में क्रियान्वित होती है। कहा जाता है कि जब योगी केन्द्र में पहुंचता है तो क्रियात्मक सिद्धियाँ आती हैं। इसका वर्णन तीसरे अध्याय विभूतिपाद के सूत्र संख्या 38-55 तक किया गया है।

महर्षिपतंजलि ने ज्ञानात्मक विभूतियों के पश्चात क्रियात्मक विभूतियों का वर्णन किया है, जो इस प्रकार है- प्रातिभ श्रवण, वेदन, आदर्श, आस्वाद, वार्ता ।

ततः प्रातिभश्रावणवेदनादर्शास्वादवार्ता जायन्ते । सूत्र 3/36

उस (स्वार्थ-संयम) से; प्रातिभ, श्रावण, वेदन, आदर्श, आस्वाद और वार्ता-ये (छः सिद्धियाँ) प्रकट होती हैं। ये छहों सिद्धियाँ साधक को पुरुषज्ञान के पहले प्राप्त होती हैं। इनके लक्षण इस प्रकार हैं-

(1) प्रातिभ - इससे भूत भविष्य और वर्तमान एवं सूक्ष्म, ढकी हुई और दूर-देश में स्थित वस्तुएँ प्रत्यक्ष हो जाती हैं।

(2) श्रावण - इससे दिव्य शब्द सुनने की शक्ति आ जाती है।

(3) वेदन - इससे दिव्य स्पर्श का अनुभव करने की शक्ति आ जाती है।

(4) आदर्श - इससे दिव्य रूप का दर्शन करने की शक्ति आ जाती है।

(5) आस्वाद - इससे दिव्य रस का अनुभव करने की शक्ति आ जाती है।

(6) वार्ता - इससे दिव्य गन्ध का अनुभव करने की शक्ति आ जाती है।

सृष्टि का व्यवस्था क्रम निश्चित व सुव्यवस्थित गति से चलने के बावजूद भी अटल नहीं है। मनुष्य उस प्रकृति की मर्यादा में बंधा तो है परंतु मानवीय चेतना प्रकृति से शक्तिमान है, वह चाहे तो भवबंधनों से छूटकर, प्रकृति के अनुयायी न रहकर उसे अपनी अनुगामिनी बनाकर अनेकों विभूतियाँ हस्तगत कर लेता है।

महर्षि पतंजलि ने विभूतिपाद में धारणा, ध्यान, समाधि तीनों के एकत्रीकरण को 'संयम' कहा है व विभिन्न विषयों पर संयम करने से विभिन्न परिणामों (विभूतियों) की प्राप्ति का वर्णन किया है।

बोधप्रश्न

१) धारणा, ध्यान और समाधि तीनों अंगों को किस नाम से जाना जाता है ?

२) संस्कारों का साक्षात कर लेने से .....का ज्ञान हो जाता है ।

३) किसमें संयम करने से समस्त भुवनों का ज्ञान हो जाता है ?

४) चन्द्रमा में संयम करने से किसका ज्ञान होता है ?

५) कण्ठ कूप में संयम करने से किसकी निवृत्ति होती है ?

15.7 ग्रन्थ का मूलपाठ

त्रयमेकत्र संयम: (पा.यो.सू. 3/4)
तज्जयात्प्रज्ञालोकः (पा.यो.सू.3/5)
संस्कारसाक्षात्करणात् पूर्वजातिज्ञानम्। सूत्र 3/18
भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात् । सूत्र 3/26
चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम्। सूत्र 3/27
ध्रुवे तद्गतिज्ञानम् । सूत्र 3/28
नाभिचक्रे कायव्यूहज्ञानम् । सूत्र 3/29
कण्ठकूपे क्षुत्पिपासानिवृत्तिः । सूत्र 3/30
कूर्मनाड्यां स्थैर्यम् । सूत्र 3/31
मूर्धज्योतिषि सिद्धदर्शनम् । सूत्र 3/32
ततः प्रातिभश्रावणवेदनादर्शास्वादवार्ता जायन्ते । सूत्र 3/36

15.8 सारांश

विभूतियों का प्रारंभ प्रत्येक स्तर (अधम, मध्यम और उच्चतम) के साधकों की प्रारंभिक साधना से प्रारंभ हो जाते हैं। परंतु महर्षिपतंजलि जिस प्रकार की विभूतियों की बात करते हैं, उनका प्रारंभ संयम से होता है। संयम अर्थात धारणा, ध्यान व समाधि का एकीकृत स्वरूप। संयम के द्वारा ही विभिन्न विभूतियों का उदय होता है। जिसे महर्षिपतंजलि ने ज्ञानात्मक व क्रियात्मक दो प्रकार की विभूतियों के रूप में विभाजित किया है। महर्षिपतंजलि स्पष्ट करते हैं कि स्थूल, सूक्ष्म आदि वस्तुओं पर संयम करने से किस प्रकार की विभूतियाँ प्रकट होती हैं। वे क्रमशः विभूतियों की उच्चतम अवस्थाओं की प्राप्ति का वर्णन करते हैं और अंत में यह भी स्पष्ट करते हैं कि विभूतियाँ योग मार्ग में बाधक हैं, अतः साधक को इन विभूतियों से आसक्त न होकर उनमें वैराग्य का भाव जाग्रत कर उच्च अवस्थाओं की प्राप्ति कैवल्य के लिए अग्रसर होना चाहिए।

15.9 शब्दावली

१) लौकिक	:	सांसारिक ।
२) भुवनज्ञान	:	समस्त लोकों का ज्ञान ।
३) ताराव्यूहज्ञान	:	सब तारों की स्थिति-विशेष का ज्ञान ।
४) ध्रुव	:	ध्रुव तारा (जो स्थिर है) ।
५) क्षुत्पिपासा	:	भूख-प्यास ।
६) सिद्धदर्शन	:	सिद्ध पुरुषों के दर्शन ।
७) श्रावण	:	दिव्य श्रवण सुनना ।
८) आदर्श	:	दिव्य रूप का दर्शन ।

९) वार्ता : दिव्य गन्ध का अनुभव होना।

15.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. विज्ञानानन्द सरस्वती (2003), योग विज्ञान | योग निकेतन ट्रस्ट मुनि की रेति, ऋषिकेश।

2. निरजनानन्द (1994), योग दर्शन | श्री पंचदशनाम, परमहंस अलखवाड़ा, देवधर, विहार।

3. जगदीशचन्द्र मिश्र 2012, भारतीय दर्शन। चौखम्भा सुर भारती प्रकाशन, वाराणसी।

15.11 सहायक ग्रन्थ

1. पाण्डेय राजकुमारी (2008), भारतीय योग परम्परा के विविध आयाम। राधा पब्लिकेशन, दिल्ली

2 व्यास महर्षि (2003), भगवदगीता। गीता प्रेस गोरखपुर।

3 योगेन्द्र पुरूषार्थी (1999), वेदो में योग विद्या। यौगिक शोध संस्थान, हरिद्वार।

4 परमहंस स्वामी अनन्त भारती (संवत 2056), योगदर्शन। स्वामी केशवानन्द योग संस्थान, दिल्ली-85

7 नन्दलाल दशोरा (2006), पातंजल योगसूत्र। रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार।

8 पातञ्जल योग प्रदीप (1999), गीता प्रेस गोरखपुर।

15.12 बोध प्रश्नोत्तर

१) संयम।
२) पूर्वजन्म।
३) सूर्य में।
४) तारों का व्यूह (स्थिति-विशेष) ज्ञान।
५) भूख-प्यास।

15.13 अभ्यास प्रश्न

1. महर्षि पतंजलि द्वारा वर्णित संयम को स्पष्ट कीजिए।
2. संयम से प्राप्त परिणाम को स्पष्ट कीजिए।
3. किन्ही तीन विभूतियों को स्पष्ट कीजिए।
4. किन्ही दो क्रियात्मक विभूतियों को स्पष्ट कीजिए।

षोडश पाठ
कैवल्य का स्वरूप

पाठ संरचना

16.1 प्रस्तावना

16.2 उद्देश्य

16.3 कैवल्य का अर्थ

16.4 कैवल्य से पूर्व अवस्था स्वरूप

16.5 कैवल्य का स्वरूप

बोधप्रश्न

16.6 ग्रन्थ का मूलपाठ

16.7 सारांश

16.8 शब्दावली

16.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

16.10 सहायक ग्रन्थ

16.11 बोध प्रश्नोत्तर

16.12 अभ्यास प्रश्न

16.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत पाठ में कैवल्य का स्वरूप क्या है उसे जानेंगे और इससे पूर्व पाठ में संयम और विभूतियों के स्वरूप को समझा । कैवल्य प्राप्ति में संयम की अहम भूमिका रहती हैं । कैवल्य के पश्चात त्रिगुण (सत्, रज, तम) के कार्यों की समाप्ति हो जाती है अर्थात् वे अपने कारण में विलीन हो जाते हैं। बुद्धि और पुरूष, दृष्टा और दृश्य की भिन्नता का ज्ञान होने से पुरुष सर्वज्ञ स्वामी भाव के रूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। इस विवेक ज्ञान में वैराग्य हो जाना ही धर्ममेघ समाधि है इसी विवेक ज्ञान के सर्वथा रहने से सभी क्लेश की समाप्ति भी हो जाती हैं। अपना काम समाप्त कर चुके गुणो के सभी कर्तव्य समाप्त हो जाते हैं। उनका अपने कारण में विलीन हो जाने को ही महर्षिपतंजलि ने कैवल्य का स्वरूप बताया है।

16.2 उद्देश्य - प्रस्तुत पाठ में आप जानेंगे-

- ❖ कैवल्य क्या है ?
- ❖ कैवल्य का स्वरुप ।
- ❖ गुणलीनता का स्वरुप ।
- ❖ कैवल्य से पूर्व अवस्था का स्वरूप ।

16.2 कैवल्य का अर्थ

कैवल्य का अर्थ - कैवल्य को मोक्ष के नाम से भी जाना जाता है। कैवल्य शब्द केवल से बना है जिसका अर्थ एकदम अकेला होता है जहाँ कोई दूजा नहीं होता। यह एक प्रकार से अद्वैतावस्था होती है। यह किसी विलक्षण विधायक ज्ञान की उपलब्धि अथवा ईष्वर लाभ की अवस्था नहीं है बल्कि यह वर्णनातीत अवस्था होती है इसे सब कुछ खोकर अथवा त्यागकर ही पाया जा सकता है। यह एकदम अकेलेपन अथवा अद्वैत की अवस्था होती है।

16.3 कैवल्य से पूर्व अवस्था स्वरूप

विवेक ज्ञान के पश्चात साधक अपने आत्मस्वरूप का प्रत्यक्ष ज्ञान कर लेता है। अतः यहां कैवल्य के स्वरूप से पूर्व विवेक ज्ञान से प्राप्त स्थिति का वर्णन किया गया है, जो इस प्रकार है-

विशेषदर्शिन आत्मभावभावनाविनिवृत्तिः । पा.यो.सू. 4/25

अर्थात् चित्त और आत्मा के भेद को प्रत्यक्ष कर लेने वाले योगी की आत्मभाव विषय की भावना सर्वथा निवृत्त हो जाती है।

आत्मभावना, जैसे- मै कौन था, मै कैसे था, ये (शरीरादि) क्या है, ' किस प्रकार ये बने हैं, 'फिर मै क्या होऊँगा, 'कैसे होऊँगा' इत्यादि । विशेषदर्शी को ही इस भावना की निवृत्ति होती है। इस प्रकार उस कुशल पुरुष की आत्मभावना निवृत्त हो जाती है। जो पुरुष - साक्षात्कार कर सकते हैं, उन्ही को निवृत्ति होती है ।

इसके पश्चात् योगी के चित्त की स्थिति कैवल्य के अभिमुख हो जाती है, जिसका वर्णन **महर्षि पतंजलि** इस प्रकार करते हैं-

तदा विवेकनिम्नं कैवल्यप्राग्भारं चित्तम् । सूत्र 4/26

अर्थात् उस समय (योगी का) चित्त विवेकमार्गी तथा कैवल्य-अभिमुख होता है

विवेक द्वारा आत्मभावभावना निवृत्त होने से उस अवस्था में चित्त विवेक-मार्ग में प्रवहरणशील रहता है। कैवल्य ही उस प्रवाह की अन्तिम सीमा है।

इसके पश्चात् **महर्षिपतंजलि** ने विवेक ज्ञान के उपरांत भी जो व्युत्थान आते हैं, उनके संदर्भ में

चर्चा की है, जो इस प्रकार है-

तच्छिद्रेषु प्रत्ययान्तराणि संस्कारेभ्यः । सूत्र 4/27

अर्थात् उसके अंतराल में दूसरे पदार्थों का ज्ञान उसे पूर्व संस्कारों से होता है।

विवेकख्याति में यदि चित्त प्रधानतः विवेकमार्ग में प्रवृत्त भी, हो तो भी जब तक संस्कारों का सम्यक क्षय (प्रान्तभूमि प्रज्ञा की निष्पत्ति द्वारा) न हो जाए तब तक बीच-बीच में अन्य प्रत्यय या अविवेक-प्रत्यय उठते ही हैं। विवेकज्ञान होने पर तत्काल ही सभी संस्कार क्षीण नहीं होते; परन्तु विवेक संस्कार के संचय से अविवेक संस्कार क्रमशः क्षीयमाण होते रहते हैं। उस समय भी कुछ अवशिष्ट अविवेक संस्कारों से अविवेकप्रत्यय बीच-बीच में उठा

करते हैं। इसके पश्चात महर्षिपतंजलि ने विवेक ज्ञान के उपरांत भी जो व्युत्थान आते हैं, उनके संदर्भ में चर्चा की है, जो इस प्रकार है-

हानमेषां क्लेश वदुक्तम् । सूत्र 4/28

इन संस्कारों का विनाश क्लेशों की भांति कहा गया है।

अविवेक प्रत्यय और अविवेक संस्कार इन दोनों का विनाश होने पर ही व्युत्थान प्रत्यय सम्यक विनिवृत्त होता है। चित्त के विवेक निम्न होने पर विवेक द्वारा अविद्यादि दग्धबीजवत् होते हैं। तब अविवेक संस्कार और संचित नही हो सकता, क्योंकि, अविवेक का अनुभव होते ही वह विवेक से अभिभूत हो जाता है। परन्तु उस समय भी अनष्ट पूर्व संस्कार से अविवेक प्रत्यय उठता है (मैं, मेरा इत्यादि) उसका भी निरोध करने के लिए उस प्रत्यय के हेतुभूत पूर्वसंस्कार को दग्धबीजवत् करना चाहिए। ज्ञान के संस्कार से वह अविवेकसंस्कार दग्धबीजवत् होता है।

महर्षिपतंजलि ने चिवेक ज्ञान के द्वारा धर्ममेच समाधि की प्राप्ति व उसके परिणाम के संदर्भ में चर्चा की है, जिसका अध्ययन हम पूर्व के अध्याय में कर चुके हैं।

इसके पश्चात **महर्षिपतंजलि** ने स्पष्ट किया है कि तीनों गुणों के परिणामशील होने पर भी योगी के लिए, वे पुनर्जन्म देने वाले नहीं होते। जिसका वर्णन वे इस प्रकार करते हैं-

ततः कृतार्थानां परिणामक्रमसमाप्तिर्गुणानाम् । सूत्र4/32

उसके बाद अपने काम को पूरा करने वाले गुणोंके परिणामक्रम की समाप्ति हो जाती है।

जब योगी को धर्ममेघ समाधि की प्राप्ति हो जाती है, तब उसके लिए गुणों का कोई कर्तव्य शेष नहीं रहता। उनका काम जो पुरुष को भोग व अपवर्ग देना है, वह पूरा हो जाता है।

16.6 कैवल्य का स्वरूप

गुणों के परिणामक्रम समाप्त होने के पश्चात गुणों के क्रम का ज्ञान हो जाता है और वह अपने कारण में विलीन हो जाता है। इसी को महर्षिपतंजलि ने कैवल्य कहा है, जिसके स्वरूप के संदर्भ में वर्णन इस प्रकार है-

'पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तेरिति' सूत्र 4/34

जिनका पुरूष के लिये कोई कर्तव्य शेष नहीं रहा, ऐसे गुणों का अपने कारण में विलीन हो जाना कैवल्य है अथवा यों कहिये कि दृष्टा का अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाना (कैवल्य) है।

स्वामी विवेकानंद- "प्रकृति का काम समाप्त हो गया। वह अनादि, अनंद काल से इसी प्रकार सुख और दुःख, भले और बुरे के माध्यम से होते हुए जीवात्माओं की अनंत सिद्धि और आत्मसाक्षात्कार रूप समुद्र की ओर प्रवाहित हो रही है।

स्पष्ट है कि प्रकृति का कार्य समाप्त होने का अर्थ है कि कैवल्य की प्राप्ति के बाद स्वरूप- प्रतिष्ठान हो जाता है।

महर्षिपतंजलि ने इसके अतिरिक्त कैवल्य के स्वरूप का वर्णन अन्य अध्यायों में भी किया है, जिसका वर्णन इस प्रकार है-

"सत्वपुरूषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यम्" सूत्र 3/55

अर्थात् बुद्धि एवं पुरूष इन दोनों की जब साम्य भाव से शुद्धि हो जाती है, तब कैवल्यावस्था होती है।

"तदभावात्संयोगाभावो हानं तद्दृशेः कैवल्यम" सूत्र 2/25

उस (अविद्या) के अभाव से संयोग का अभाव (हो जाता है यही) हान (पुनर्जन्मादि भावी दुःखों का अत्यंत अभाव) है। वही चेतन आत्मा का कैवल्य है।

इसी प्रकार प्रथम अध्याय (समाधि पाद) में भी महर्षि पतंजलि ने बताया है-

"तदा दृष्टुः स्वरूपेवस्थानम्" सूत्र 1/3

उस समय दृष्टा का अपने स्वरूप में अवस्थान हो जाता है।

स्पष्ट है कि जब वृत्तियाँ (निरूद्ध) अवरूद्ध हो जाती है, तब दृष्टा अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है। जिस प्रकार तेज हवा चलते समय पानी में लहरें उत्पन्न होती रहती है, उसी प्रकार जब चित्त की वृत्तियाँ निरूद्ध हो जाती है, तब चित्त के कर्तापन के अभिमान की निवृत्ति हो जाती है, तब आत्मा को अपने स्वरूप का दर्शन होने लगता है। इसी को आत्म दर्शन और कैवल्य की स्थिति कहते हैं।

बोधप्रश्न

१) कैवल्य का क्या अर्थ है ?
२) द्रष्टा का अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाना कहलाता है।
३) 'सत्त्वपुरुषयो: शुद्धिसाम्ये कैवल्यम्' यह सूत्र किसके द्वारा रचित है ?

16.6 ग्रन्थ का मूलपाठ

विशेषदर्शिन आत्मभावभावनाविनिवृत्तिः। पा.यो.सू. 4/25
तदा विवेकनिम्नं कैवल्यप्राग्भारं चित्तम्। सूत्र 4/26
तच्छिद्रेषु प्रत्ययान्तराणि संस्कारेभ्यः। सूत्र 4/27
हानमेषां क्लेश वदुक्तम्। सूत्र 4/28
ततः कृतार्थानां परिणामक्रमसमाप्तिर्गुणानाम्। सूत्र4/32
'पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तेरिति' सूत्र 4/34
"सत्वपुरूषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यम्" सूत्र 3/55
"तदभावात्संयोगाभावो हानं तद्दृशेः कैवल्यम" सूत्र 2/25

"तदा दृष्टुः स्वरूपेवस्थानम्" सूत्र 1/3

16.7 सारांश

इस प्रकार चारों अध्यायों के कैवल्य से संबंधित विभिन्न सूत्रों में लगभग एक ही बात कही गई है। पुरुष चित्त का भेद अनुभव होने पर चित्त का अपने कारण रूप प्रकृति में विलीन हो जाना और पुरुष तत्व (आत्मा) का अपने शुद्ध स्वरूप में अवस्थित हो जाना तथा इस प्रकार प्रकृति से एकदम संबंध समाप्त होकर केवल पुरुष का रह जाना कैवल्य है। महर्षिपतंजलि कैवल्य का स्वरूप विभिन्न प्रकार के साधकों की आवश्यकता के अनुसार और उनके साधनात्मक स्तर के अनुसार करते हैं और प्रत्येक अवस्था की पूर्व स्थिति, उसका परिणाम और उसमें आने वाली बाधाओं का वर्णन करते हैं। लगभग सभी भारतीय दर्शनों में कैवल्य को साधना की चरम स्थिति के रूप में मान्यता दी गई है। अपवर्ग, निर्वाण, मुक्ति, मोक्ष, स्वरूप स्थित आदि नाम कैवल्य के ही पर्याय कहे गये हैं।

16.8 शब्दावली

१) सत्त्व : बुद्धि, प्रकाश।

२) प्रतिप्रसव : अपने कारण में विलीन हो जाना।

३) हानम् : विनाश।

४) विशेषदर्शिन : चित्त और आत्मा के भेद को प्रत्यक्ष कर लेने वाला।

16.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. विज्ञानानन्द सरस्वती (2003), योग विज्ञान | योग निकेतन ट्रस्ट मुनि की रेति, ऋषिकेश।

2. निरजनानन्द (1994), योग दर्शन | श्री पंचदशनाम, परमहंस अलखवाड़ा, देवधर, विहार।

3. जगदीशचन्द्र मिश्र 2012, भारतीय दर्शन। चौखम्भा सुर भारती प्रकाशन, वाराणसी

16.10 सहायक ग्रन्थ

1. पाण्डेय राजकुमारी (2008), भारतीय योग परम्परा के विविध आयाम। राधा पब्लिकेशन, दिल्ली

2 व्यास महर्षि (2003), भगवदगीता। गीता प्रेस गोरखपुर।

3 मुक्ति के चार सोपान - स्वामी दयानन्द सरस्वती

4 योग सूत्र - प्रकाश गीता प्रेस गोरखपुर

5 नन्दलाल दशोरा (2006), पातंजल योगसूत्र। रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार।

6 पातञ्जल योग प्रदीप (1999), गीता प्रेस गोरखपुर।

16.11 बोध प्रश्नोत्तर

१) अकेला।

२) कैवल्य।

३) महर्षि पतञ्जलि।

16.12 अभ्यास प्रश्न

1. कैवल्य का स्वरूप क्या है ?
2. महर्षि पतंजलि कैवल्य को किस प्रकार स्पष्ट करते हैं?
3. कैवल्य से पूर्व अवस्था का स्वरूप परिभाषित कीजिए।
4. कैवल्य की प्राप्ति के लिए किसकी आवश्यकता होती है ?
5. स्वामी विवेकानन्द के अनुसार कैवल्य का स्वरूप क्या है ?

प्राक्शास्त्री प्रथम वर्ष प्रथम सत्रार्द्ध (योग प्रायोगिक - द्वितीय क्रेडिट)

सप्तदश पाठ

योगाभ्यास हेतु स्थान एवं वातावरण

17.1 प्रस्तावना

17.2 उद्देश्य

17.3 योगाभ्यास के लिए उचित स्थान (योगमठ)

17.3.1 योग मठ क्या है ?

17.3.2 योगमठ कहाँ बनाएँ ?

17.3.3 योगमठ कहाँ न बनाएँ ?

17.3.4 योगमठ कैसा हो ?

17.5 योगाभ्यास के लिए समय व वातावरण

17.6 योगाभ्यास के लिए सामान्य दिशा-निर्देश

बोध प्रश्न

17.7 ग्रन्थ का मूलपाठ

17.8 सारांश

17.9 शब्दावली

17.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

17.11 सहायक ग्रन्थ

17.12 बोध प्रश्नोत्तर

17.13 अभ्यास प्रश्न

17.1 प्रस्तावना

इस पाठ में योग साधकों के लिए स्थान का महत्त्व बताया गया है, क्योंकि किसी भी कार्य को करने के लिए स्थान का महत्त्व जरूरी है। जैसे महाभारत जैसे युद्ध के लिए कुरुक्षेत्र जैसे निर्मम स्थान को चुना गया उसी प्रकार योगमठ उस जगह बनाया जाए जहाँ सुसंस्कार पहले से व्याप्त हों।

प्रस्तुत पाठ में आप योगाभ्यास के लिए उचित स्थान, समय व वातावरण का अध्ययन करेंगे।

17.2 उद्देश्य – इस पाठ को पढ़ने के पश्चात् आपको ज्ञात होगा -

- योग साधना के लिए उचित स्थान कौन-सा है ?

- ❖ योगमठ किसे कहते हैं ?
- ❖ किस स्थान पर योगमठ नहीं बनाना चाहिए ?
- ❖ योगाभ्यास किस ऋतु में प्रारम्भ करना चाहिए ?

17.3 योगाभ्यास के लिए उचित स्थान (योगमठ)

वह स्थान जहाँ साधक साधना प्रारंभ करता है उसे मठ कहते हैं। साधनात्मक जीवन में स्थान का विशेष महत्त्व है। प्राचीन भारतीय योग परंपरा में ऋषियों ने ऐसे स्थानों का चयन किया जहाँ उच्च आध्यात्मिक ऊर्जा का प्रभाव था। इसलिए ऋर्षिगण पहले साधना के लिए हिमालय का चयन किया करते थे, क्योंकि वहाँ पर ध्यान लगाने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी अपितु ध्यान स्वत: ही लग जाता था । आज के आधुनिक नगरीय वातावरण में भी उचित खुला स्थान देखकर ही योगाभ्यास का शुभारम्भ करना चाहिए ।

17.3.1 योग मठ क्या है ?

वह नियम स्थान जहाँ पर मन की अधोगामी शक्तियों को ऊर्ध्वगामी बनाया जा सकता है, वह स्थान योग मठ कहलाता है। योगमठ दो शब्दों, योग और मठ से मिलकर बना है।

योग - जीवन केउद्देश्यों को पूर्ण करने के लिए संकल्पपूर्वक किया गया कार्य ही योग है।

मठ- जहाँ मन का ठहराव हो अर्थात चित्त की वृत्तियों का निरोध किया जा सके, उसे मठ कहते हैं।

इस प्रकार योगमठ वह स्थान है, जहाँ योग की साधना की जाती है। जो व्यक्ति समाज के कल्याण और विभिन्न आध्यात्मिक कार्यों के लिए संकल्प लेता है, उसे ऐसे स्थान की आवश्यकता होती है। अर्थात वह स्थान है जो आध्यात्मिक शक्तियों से भरा हो, जहाँ योगी शान्त चित्त होकर योगाभ्या कर सकें। वैसे स्थान को योगमठ कहते हैं।

अतः योगाभ्यास के निमित्त सात्त्विक वातावरण होना आवश्यक है, ताकि साधक साधना कर अपने लक्ष्य को पा सके।

17.3.2 योगमठ कहाँ बनाएँ ?

अब प्रश्न उठता है कि योगमठ कहाँ बनाया जाए। यह तो जाहिर सी बात है कि जन कोलाहल से दूर एकांत तथा खुले वातावरण में योगमठ बनाना चाहिए। जहाँ लोग मन पर नियंत्रण करके शांति से योगाभ्यास कर सके। इस संबंध में घेरण्ड संहिता तथा हठप्रदीपिका में चर्चा की गई है।

घेरण्ड संहिता के अनुसार-

सुदेशे धार्मिके राज्ये सुभिक्षे निरूपद्रवे ।
कृत्वा तत्रैकं कुटीरं प्राचीरैः परिवेष्टितम् ॥ (घेरण्ड संहिता 5/5)

भावार्थ - ऐसा सुंदर धार्मिक स्थान जहाँ भोजन के लिए खाद्य पदार्थ सहजता से उपलब्ध हो और वहाँ किसी प्रकार का उपद्रव न हो और कुटी के चारों तरफ चारदीवारी हो ।

हठप्रदीपिका के अनुसार -

सुराज्ये धार्मिक देशे सुभिक्षे निरूपद्रवे
धनुः प्रमाणपर्यंतं शिलाग्नि जल वर्जिते
एकांते मठिकामध्ये स्थातव्यं हठयोगिना ॥ (हठप्रदीपिका 1/12)

भावार्थ - सुराज्ये, धार्मिक तथा निरूपद्रव देशा में एक छोटी कुटीर बनाकर योगी को चारों ओर चार हाथ की दूरी तक पत्थर, अग्नि अथवा जल न हो।

तात्पर्य यह है कि योग की सफलता के लिए साधकों में मानसिक शांति बनी रहे। इसलिए विघ्नरहित स्थान में अभ्यास करना चाहिए।

17.3.3 योगमठ कहाँ न बनाएँ ?

घेरण्ड संहिता के अनुसार -

दूरदेशे तथाऽरण्ये राजधान्यां जनांतिके।
योगारंभ न कुर्वीत कृतश्चेत्सिद्धिहा भवेत् ॥ (घेरण्ड सहिंता 5/3)

भावार्थ - दूर देश में (परदेश में), जंगल के बीच में, राजधानी में जहाँ लोगों का आना-जाना अधिक हो, ऐसे स्थान पर योगाभ्यास करने से सिद्धि की प्राप्ति नहीं होती है।

अविश्वास दूरदेशो अरण्ये रक्षिवर्जितम् ।
लोकारण्ये प्रकाशश्च तस्मात्त्रीणि विवर्जयेत् ॥ - घेरण्ड संहिता 5/4

भावार्थ - क्योंकि परदेश में किसी पर विश्वास नहीं किया जा सकता, जंगल में असुरक्षित रहेंगे। और राजधानी में लोगों के अत्यधिक आने-जाने से प्रकाश और कोलाहल रहता है। अतः उपर्युक्त तीन स्थानों में योगाभ्यास करना वर्जित है।

17.3.4 योगमठ कैसा हो ?

घेरण्ड संहिता तथा हठप्रदीपिका में योगमठ के स्वरूप के संबंध में चर्चा की गई है।

वापी कूपतडागं च प्राचीर मध्यवर्त्ति च
नात्युच्चं नातिनिम्नं च कुटीरं कीट वर्जितम् ॥
साम्यग्गोमयलिप्तं च कुटीरं तत्र निर्मितम् ।
एवं स्थानेषु गुप्तेषु प्राणायामं समभ्यसेत् ॥ (घेरण्ड संहिता 5/6-7)

भावार्थ - योगमठ के आस-पास कुआँ और तालाब हो और योगमठ चारों तरफ से घिरा हुआ हो। कुटीर की भूमि न ज्यादा ऊँची हो और न नीची हो। समतल हो और वहाँ कीड़े-मकोड़े न हों। वहाँ बिल या छिद्र आदि न हो। गाय के गोबर से लिपा होना चाहिए। ऐसे गुप्त स्थान में कुटी बनाकर प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए।

हठप्रदीपिका के अनुसार-

अल्पद्वारमरन्ध्रगर्तविवरं नात्युच्चनीचायतम् ।
सम्यग्गोमयसान्द्रलिप्तममलं निःशेषजन्तूज्झितम् ॥
बाह्ये मण्डपवेदिकूपरुचिरं प्राकारसंवेष्टितम् ।
प्रोक्तं योगमठस्य लक्षणमिंद सिद्धैर्हठाभ्यासिभिः ॥ (हठप्रदीपिका 1/13)

भावार्थ - योगमठ का द्वार न छोटा हो न बड़ा हो, वहाँ छिद्र न हो, बिल या सुरंग न हो, वहाँ की भूमि न ऊँची हो न नीची। समतल हो, गाय के शुद्ध गोबर से लिपी होनी चाहिए। कीड़े-मकोड़े से रहित हो। जंगली जंतु से रहित हो। कुटीर के बाहर मंडप, वेदि यानि यज्ञशाला हो और बगल में कुआँ, जिसमें स्वच्छ जल हो, वहाँ प्रकाश का आवागमन हो, वहाँ घेरा लगा दिया गया हो।

इस प्रकार उपर्युक्त लक्षणों से युक्त 'योगमठ' में योगाभ्यास करने से सिद्धि सुनिश्चित है। साधकों में मानसिक शांति बनी रहेगी। अतः योग में सफलता के लिए उपर्युक्त वर्णित विघ्नरहित स्थान ऐसे लोगों के लिए निषिद्ध नहीं है जिन्हें स्थान न मिलता हो । किंतु योगियों का इस प्रकार के स्थान में योगाभ्यास सफलता प्राप्त करना सुगम हो जाता है। लेकिन वर्तमान परिस्थिति में अपने घर को ही योगमठ बनाना चाहिए।

17.5 योगाभ्यास के लिए समय व वातावरण

योग साधना में काल का महत्त्वपूर्ण स्थान है। किसी भी कार्य को प्रारंभ करने के लिए एक उपयुक्त समय होता है। उसी प्रकार योगाभ्यास प्रारंभ करने के लिए भी उचित समय का ज्ञान होना आवश्यक है। अनुकूल समय में कार्य करने से उनकी कार्य-शैली में वृद्धि होती है।

प्रारंभिक साधकों को ऐसे समय का चुनाव करना चाहिए जिसमें शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्ति का विकास हो सके, क्योंकि उचित समय पर अभ्यास करने से कोई भी कार्य उनके लिए अस्वाभाविक नहीं रह पाता है। उपयुक्त समय में की गई साधना या क्रिया-कलाप साधक के जीवन का अभिन्न अंग बन जाता है। अतः योगाभ्यासी को ऐसे समय का चुनाव करना चाहिए, जिसमें अधिक गरमी, सरदी या बरसात न हो, अर्थात समशीतोष्ण मौसम का चयन करना चाहिए। जिस मौसम में वातावरण प्राणशक्तिसे ओतप्रोत हो, वैसे समय में योगाभ्यास करना उचित एवं अधिक लाभदायक होता है। हमारे ऋषि-मुनियों ने योगशास्त्र या प्रकृति के इन्हीं नियमों को जानकर-समझकर योगाभ्यास के लिए विशेष काल का निर्धारण किया है।

आयुर्वेदशास्त्र में महर्षि चरक के अनुसार -

कालो हि नाम भगवान् स्वयंभूरनादि मध्यनिद्यने ॥

भावार्थ - आचार्यों ने काल को ही स्वयंभू, अनादि, मध्यरहित एवं अनंत माना है।

योगाभ्यास के लिए निषिद्ध समय -

हेमंते शिरे ग्रीष्मे, वर्षयां च ऋतौ तथा ।
योगारंभं न कुर्वीत, कृते योगो हिरोगदः ॥ (घेरण्ड संहिता 5/8)

भावार्थ - हेमंत, शिशिर, ग्रीष्म और वर्षा में योगाभ्यास शुरू नहीं करना चाहिए। इन चार ऋतुओं में योगाभ्यास प्रारंभ करने से यह रोग प्रदायक हो जाता है।

योगाभ्यास के लिए उपयुक्त समय-

वंसते शरदि प्राक्त योगारंभ समाचरेत् ।

तदा योगी भवेत्सिद्धो रोगान्मुक्तो भवेद् ध्रुवम् ॥ (घेरण्ड संहिता 5/9)

भावार्थ - बसंत और शरद ऋतु योगाभ्यास शुरू करने से योग साधक निश्चित ही सिद्धि प्राप्त करता है और रोगों से मुक्त रहता है।

17.6 योगाभ्यास के लिए सामान्य दिशा-निर्देश

- योगाभ्यास और प्राणायाम के लिए सर्वोत्तम समय ब्रह्ममुहूर्त एवं उषाकाल माना गया है ।
- योगाभ्यास हमेशा स्वच्छ, खुली एवं हवादार जगह पर करें ।
- प्रथमत: योगाभ्यास किसी भी योग शिक्षक के सान्निध्य में करना चाहिए ।
- योगाभ्यास शौचादि क्रिया से निवृत्त होकर करें ।
- जहाँ पर आप योगाभ्यास कर रहे है, वो स्थान समतल होना चाहिए ।
- योगाभ्यास करते समय आप कम्बल या मोटी चद्दर का प्रयोग करें ।
- अभ्यास के समय वस्त्र सर्वदा सूती, ढीले एवं सुविधाजनक ही धारण करें ।
- योगसाधक का अभ्यास करते समय मुख पूर्व या उत्तरमुखी होना चाहिए ।
- पुरुष साधकों को चुस्त कच्छा अथवा लँगोट अवश्य पहनना चाहिए अन्यथा भविष्य में हर्निया आदि रोगों का सामना करना पड़ सकता है ।
- कक्ष में अभ्यास करें तो एक घण्टे पूर्व आप घी का दीपक जलायें और खिड़कियाँ खोल देनी चाहिए ।
- किसी भी आसन को करते समय जबरदस्ती न करें अर्थात् अपनी क्षमता से थोड़ा कम करना ज्यादा आरामदायक रहता है ।
- योगाभ्यास करते समय आप प्राकृतिक ध्वनिनाद का भी प्रयोग कर सकते है ।
- अत्यधिक ध्वनि वाले स्थान पर और धूएँ वाले स्थान पर अभ्यास नहीं करें ।
- योगाभ्यास के समय श्वास-प्रश्वास के प्रति जागरुकता बनी रहें और श्वास नासिका से लें ।
- प्रत्येक योगासन में पूरक, रेचक और कुम्भक का क्रम पृथक-पृथक रहता है अत: उसका विशेष ध्यान रखें ।
- यम-नियम के पालन पर विशेष ध्यान देना जरूरी है ।
- योग साधना में किसी अन्य से प्रतिस्पर्धा नही होती वरन स्वयं से रहती है । अत: किसी की देखा-देखी न करें और न ही किसी को दिखाने का प्रयत्न करें ।
- योगासन सर्वदा धीमी गति से करना ज्यादा हितकर रहता है, अन्यथा उसका अभ्यास व्यायाम के समान ही है ।
- योगासन में तीन बातों पर विशेष ध्यान दिया जाता हैं – क्रमबद्धता, लयबद्धता और समयबद्धता पर । यानि जिस क्रम से हम योगासन की अन्तिम स्थिति को प्राप्त करते है, उसी क्रम में वापिस आना क्रमबद्धता है । पूरक-रेचक और कुम्भक के साथ धीमी गति से करना लयबद्धता है और अन्तिम स्थिति में कुछ क्षणों तक रोककर रखना समयबद्धता कहलाती है । इन तीनों बातों पर विशेष ध्यान देना अत्यन्त जरूरी है ।

- आसन के दौरान आपकी आँखें खुली रहें क्योंकि आप अभी सीख रहें है। जब आसन पूर्ण सिद्ध हो जायें, तब आँखों को बन्द करके रखें।
- अभ्यास के समय मौन का अभ्यास करें एवं विशेषत: आप श्वास-प्रश्वास पर ध्यान केन्द्रित करें।
- योगाभ्यास के पश्चात् आप भोजन सर्वदा सात्त्विक ही ग्रहण करें और यदा-कदा सम्पूर्ण शरीर की मालिश भी करें।
- अभ्यास भोजन के एक से आधे घण्टे पहले अथवा भोजनोपरान्त चार से चार या छ: घण्टे के पश्चात् ही करें। यह सब नियम आपकी अवस्था और पाचन क्रिया पर निर्भर करता है।
- साधक को चाहिए कि वह बहुत ज्यादा खट्टा, तीखा, तामसी, बासी एवं देर से पचने वाला भोजन कदापि ग्रहण न करें। सर्वदा शुद्ध सात्त्विक, ताज़ा एवं ऋतु अनुसार ही ग्रहण करें।
- अभ्यासी को शराब, भाँग, गाँजा, बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू आदि मादक पदार्थों का सेवन कदापि नही करना चाहिए।
- शरीर में किसी प्रकार की अस्वस्थ्यता का भाव अनुभव हो अथवा त्वरित (शीघ्र) रोगों में योगासन अभ्यास न करें
- महिला का जब ऋतुधर्म काल चल रहा हो, उस समय में योगासन न करें परन्तु शरीर का ध्यान सजगता एवं जागरूकता के साथ करें।
- अभ्यास काल में चित्त शान्त रहें, न कि चिन्ता, क्रोध, जल्दबाजी, घबराहट, घृणा, ईर्ष्या, भय, अहंकार, प्रतिशोध की भावना आदि से युक्त हो। यानि पूर्णतया मुक्त होना चाहिए।
- यदि किसी आसन को करते समय कोई कष्ट अनुभव हो रहा हो अथवा कठिनाई लगे तो प्रशिक्षित योग गुरु से परामर्श करें।
- योगासन से पूर्व या पश्चात् स्नान अर्द्ध या एक घण्टे पश्चात् ही करें। ठण्डे-गर्म जल का प्रयोग स्वयं की अवस्था अथवा ऋतु अनुसार ही करें।
- योगाभ्यास के 10-15 मिनट पश्चात् जलपान कर सकते है।

बोध प्रश्न

१) जहाँ मन का ठहराव हो, उसे .....कहते हैं ?

२) योगाभ्यास के लिए सुराज्ये, धार्मिक तथा निरूपद्रव स्थान होना चाहिए या नहीं ?

३) योगमठ का द्वार कैसा होना चाहिए ?

४) योग साधना के लिए सर्वश्रेष्ठ काल कौनसा है ?

५) प्रारम्भिक योग साधकों के लिए कौनसी ऋतु श्रेष्ठ है ?

६) योगाभ्यास के समय उदर ..... होना चाहिए।

17.7 ग्रन्थ का मूलपाठ

सुदेशे धार्मिके राज्ये सुभिक्षे निरूपद्रवे।
कृत्वा तत्रैकं कुटीरं प्राचीरैः परिवेष्टितम्॥ (घेरण्ड संहिता 5/5)
सुराज्ये धार्मिक देशे सुभिक्षे निरूपद्रवे
धनुः प्रमाणपर्यंतं शिलाग्नि जल वर्जिते

एकांते मठिकामध्ये स्थातव्यं हठयोगिना ॥ (हठप्रदीपिका 1/12)

दूरदेशे तथाऽरण्ये राजधान्यां जनांतिके।
योगारंभ न कुर्वीत कृतश्चेत्सिद्धिहा भवेत् ॥ (घेरण्ड सहिंता 5/3)

अविश्वास दूरदेशो अरण्ये रक्षिवर्जितम् ।
लोकारण्ये प्रकाशश्च तस्मात्त्रीणि विवर्जयेत् ॥ - घेरण्ड संहिता 5/4

वापी कूपतडागं च प्राचीर मध्यवर्त्ति च
नात्युच्चं नातिनिम्नं च कुटीरं कीट वर्जितम् ॥
साम्यग्गोमयलिप्तं च कुटीरं तत्र निर्मितम् ।
एवं स्थानेषु गुप्तेषु प्राणायामं समभ्यसेत् ॥ (घेरण्ड संहिता 5/6-7)

अल्पद्वारमरन्ध्रगर्तविवरं नात्युच्चनीचायतम् ।
सम्यग्गोमयसान्द्रलिप्तममलं निःशेषजन्तूज्झितम् ॥
बाह्ये मण्डपवेदिकूपरुचिरं प्राकारसंवेष्टितम् ।
प्रोक्तं योगमठस्य लक्षणमिंद सिद्धैर्हठाभ्यासिभिः ॥ (हठप्रदीपिका 1/13)

कालो हि नाम भगवान् स्वयंभूरनादि मध्यनिद्यने ॥ (महर्षि चरक)

हेमंते शिरे ग्रीष्मे, वर्षयां च ऋतौ तथा ।
योगारंभं न कुर्वीत, कृते योगो हिरोगदः ॥ (घेरण्ड संहिता 5/8)

वंसते शरदि प्राक्त योगारंभ समाचरेत् ।
तदा योगी भवेत्सिद्धो रोगान्मुक्तो भवेद् ध्रुवम् ॥ (घेरण्ड संहिता 5/9)

17.8 सारांश

योगाभ्यास में पूर्ण सफलता प्राप्त करने के लिए हमें कई बातों को ध्यान में रखना पड़ेगा। जैसे- उचित स्थान, समय, वातावरण, आहार आदि; क्योंकि इन सबका हमारे योगाभ्यास की सफलता में काफी योगदान है। विघ्नरहित स्थान जैसे कोलाहल से दूर खुली हवा में योगाभ्यास करना काफी अच्छा हो सकता है। उचित समय एवं वातावरण का भी योगाभ्यास में काफी महत्त्वपूर्ण स्थान है। योगाभ्यास में आहार का महत्त्व तो विशेष रूप से है, क्योंकि उचित आहार-विहार ही हमारी योग साधना को उच्च शिखर पर पहुँचा सकता है। कहा भी गया है- 'जैसा खाए अन्न वैसा बने मन' । हमारे यौगिक ग्रंथों जैसे- हठ प्रदीपिका, घेरण्ड संहिता आदि में उपयुक्त स्थान, समय, वातावरण तथा आहार के बारे में काफी चर्चा की गई है।

अत: आपने उपर्युक्त जो अध्ययन किया उसे योग साधना में अपनानें का प्रयास करेंगे तथा जिससे आप एक उत्तम शिक्षक के रूप में समाज में आदर्श बन सकें ।

17.9 शब्दावली

१) मठ : जहाँ मन का ठहराव हो।

२) सुराज्ये : वह स्थान प्राकृतिक सौन्दर्य तथा वन्य सम्पदाओं से परिपूर्ण हो

३) धार्मिक देशे : वह स्थान जहाँ के निवासी धार्मिक हो

४) सुभिक्षे : अन्न, जल, फल, मूल आदि का अभाव न हो

५) रन्ध्र : छिद्र या छेद

६) कुटीर : कुटिया अर्थात् निवास योग्य स्थान

७) पूरक : श्वास लेना

८) रेचक : श्वास छोड़ना

९) कुम्भक : श्वास को रोकना

17.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. सूरी स्वात्माराम (2001), हठप्रदीपिका। कैवतयधाम श्रीमन्माधव योगमंदिर समिति, लोनावला - 410403 (पुणे)

2. सरस्वती निरंजनानंद (1997) घेरण्ड संहिता। योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत।

17.11 सहायक ग्रन्थ

1. सरस्वती विज्ञानानंद (2007). योग विज्ञान योग निकेतन ट्रस्ट, मुनि की रेती, ऋषिकेश- 249192

2. हठयोग परिचय (2009), देव संस्कृति विश्वविद्यालय, गायत्रीकुंज-शान्तिकुंज, हरिद्वार-249411

17.12 बोध प्रश्नोत्तर

१) योगमठ

२) होना चाहिए

३) द्वार न छोटा हो न बड़ा हो

४) ब्रह्ममुहूर्त्त

५) बसन्त और शरद् ऋतु

६) रिक्त

17.13 अभ्यास प्रश्न

1. हठयोग के अभ्यास हेतु घेरण्ड संहिता में वर्णित स्थान को बताइए।

2. हठयोग के अभ्यास हेतु उपयुक्त वातावरण कैसा होना चाहिए?

3. साधकों को किस किस ऋतु में योगाभ्यास प्रारम्भ करना चाहिए ?

4. घेरण्ड संहिता के अनुसार योगमठ के लिए स्थान बताइए।

5. योगमठ क्या है ?

अष्टादश पाठ

प्रार्थना एवं प्रणव का स्वरूप

18.1 प्रस्तावना

18.2 उद्देश्य

18.3 प्रार्थना का अर्थ

18.4 प्रार्थना के प्रकार

18.4.1 सामाजिक दृष्टिकोण से प्रार्थना के प्रकार

18.4.2 आध्यात्मिक दृष्टिकोण से प्रार्थना के प्रकार

18.5 योग से सम्बन्धित अन्य प्रार्थनाएँ

बोध प्रश्न

18.6 प्रणव का अर्थ एवं स्वरूप

18.7 ॐ का वैज्ञानिक महत्त्व

18.8 ॐ की उच्चारण विधि

18.9 ॐ के उच्चारण के शारीरिक लाभ

18.10 जीवन में प्रार्थना एवं प्रणव की उपयोगिता व महत्त्व

18.10.1 सम्पूर्ण स्वास्थ्य की प्राप्ति का साधन

18.10.2 आत्मशोधन का साधन

18.10.3 अध्यात्मिक सामर्थ्य की प्राप्ति का साधन

18.10.4 कैवल्य का साधन

बोध प्रश्न

18.11 ग्रन्थ का मूलपाठ

18.12 सारांश

18.13 शब्दावली

18.14 सन्दर्भ ग्रन्थ

18.15 सहायक ग्रन्थ

18.16 बोध प्रश्नोत्तर

18.17 अभ्यास प्रश्न

18.1 प्रस्तावना –

इससे पूर्व पाठ में आपने योगाभ्यास हेतु उपर्युक्त स्थान, काल एवं वातावरण को समझा और अब आप योग प्रार्थना व ओम् का स्वरूप को जानेंगे । पूर्व पाठों में आपने योग का अर्थ, उद्देश्य, योगांगों को विस्तार से पढा । जिससे आपको यह ज्ञात होगा कि योग एक ऐसी पद्धति है जिसमे साधक स्वयं से जुड़ता हैं और उसके लिए बाह्य जगत से चित्त को हटाकर अपने को अन्तर्मुखी बनाता है । योग प्रार्थना व ॐ का उच्चारण साधक को शान्त चित्त बना कर उसे योगसाधना के लिए तैयार करता है । अथर्ववेद में एक मन्त्र आता है -

ॐ अष्टाविंशानि शिवानि शग्मानि सह योगं भजन्तु मे।
योगं प्रपद्ये क्षेमश्च क्षेमं प्रपद्ये योगश्च नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु ॥ (अथर्व० का० १९ अनु० १ व० ८ मं० २)

अर्थ- हे करुणामय परमेश्वर! आपकी कृपासे हमलोगोंको सिद्धयोगयुक्त उपासनायोग प्राप्त हो, तथा उससे हमको सुख भी मिले। इसी प्रकार आपकी कृपासे दस इन्द्रिय, दस प्राण, मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार, विद्या, स्वभाव, शरीर और बल-इन अट्ठाईस मङ्गलकारक तत्त्वोंसे बने हमारे शरीर कल्याणमय कर्मानुष्ठान में प्रवृत्त होकर योग का सदा सेवन करें; तथा हम भी उस योगके द्वारा रक्षाको और रक्षासे योगको प्राप्त हुआ चाहते हैं, इसलिये हम लोग रात-दिन आपको नमस्कार करते हैं।

सच्ची प्रार्थना संक्षिप्त होनी चाहिए, क्योंकि सुदीर्घ प्रार्थना में भटकने की आशंका बनी रहती है। श्रेष्ठतम प्रार्थना सर्वोच्च स्तर तक ले जाती है, जहाँ प्रार्थना की आवश्यकता नहीं रहती, क्योंकि उपासक अनंत में पूर्णतः विलीन हो चुका रहता है।

18.2 उद्देश्य - प्रस्तुत पाठ को पढने के बाद आप जान जायेंगे -

- ❖ प्रार्थना का अर्थ एवं प्रकार क्या हैं ?
- ❖ सामाजिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से प्रार्थना के भेद
- ❖ प्रणव का स्वरूप क्या हैं ?
- ❖ दैनिक जीवन में प्रार्थना एवं प्रणव की उपयोगिता व महत्त्व

18.3 प्रार्थना का अर्थ

प्रार्थना का शाब्दिक अर्थ - ईश्वर के प्रति आत्म निवेदन या सच्ची विनय । पूर्ण श्रद्धा भक्ति और विश्वास के साथ ईश्वर चरणों में स्वयं को समर्पित करना ही प्रार्थना है। सच्ची प्रार्थना वही है जिसमें हम अपनी विराट् सत्ता के प्रवाह में अपने क्षुद्र अहम् का शमन करते हैं। हम अपने आंतरिक प्रकाश को विश्व में बिखेरते हुए प्रकाश में मिला देते हैं तथा अनंत अमर सत्ता की अनुभूति में अपनी तुच्छ व्यक्तिगत सत्ता का लोप कर देते हैं। ऐसा होने पर जहाँ एक ओर हमारा क्षुद्र अहम् नष्ट हो जाता है, वहीं दूसरी ओर हमें हमारे वास्तविक स्वरूप का ज्ञान होता है ।

18.4 प्रार्थना के प्रकार

प्रार्थना के प्रकार : सामाजिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से प्रार्थना के तीन-तीन प्रकार हैं -

1. सामाजिक दृष्टिकोण से प्रार्थना के प्रकार :

(अ) व्यक्तिगत प्रार्थना

(ब) सामूहिक प्रार्थना

(स) सार्वभौमिक प्रार्थना

2. आध्यात्मिक दृष्टिकोण से प्रार्थना के प्रकार :

(अ) सकाम प्रार्थना

(ब) निष्काम प्रार्थना

(स) अनिष्टकारी प्रार्थना

18.4.1 सामाजिक दृष्टिकोण से प्रार्थना के प्रकार -

1. व्यक्तिगत प्रार्थना

व्यक्तिगत प्रार्थना वह प्रार्थना है, जिसमें व्यक्ति स्वयं ही समर्पित होकर प्रार्थना करता है। इस प्रकार की प्रार्थना में ईश्वर के दिव्य गुणों के कीर्तन तथा देव कृपा प्राप्ति की भावना व्यक्त की जाती है।

2. सामूहिक प्रार्थना

ऐसी प्रार्थना जो किसी समूह में या गुरु-शिष्य के मध्य, समूह के कल्याणार्थ की जाती है वह सामूहिक प्रार्थना कहलाती है। इस प्रकार की प्रार्थना का अच्छा उदाहरण वेदों व उपनिषदों में मिलता है ।

3. सार्वभौमिक प्रार्थना

यह प्रार्थना समस्त विश्व के कल्याणार्थ की जाने वाली प्रार्थना है। इसमें प्रार्थनाकर्ता के भीतर स्वयं के लिए कोई आकांक्षा, अपेक्षा नहीं होती और न ही किसी व्यक्ति विशेष के लिए कोई कामना होती है। व्यक्ति निःस्वार्थ भाव से सम्पूर्ण विश्व के कल्याण हेतु प्रार्थना करता है ।

18.4.2 आध्यात्मिक दृष्टिकोण से प्रार्थना के प्रकार –

1. सकाम प्रार्थना

अपने स्वयं के तथा अपने बंधुओं मित्रों के सुख, स्वास्थ्य, धन-लाभ अथवा जय-विजय प्राप्ति हेतु की गई प्रार्थना 'सकाम' प्रार्थना है। किसी व्यक्ति के सुधारार्थ सकाम प्रार्थना इस प्रकार की जा सकती है ।

2. निष्काम प्रार्थना

स्वयं के चैतन्य भाव की जागृति, चित्त शुद्धि, मन की विमलता तथा पाप से निवृत्ति हेतु तथा निःस्वार्थ भाव से परहित, परसुख, स्वास्थ्य, पदोन्नति आदि हेतु की गई प्रार्थना निष्काम प्रार्थना है। अतः ऐसे परमार्थ एवं

आत्मकल्याण हेतु की गई प्रार्थना व्यक्ति के आध्यात्मिक उत्थान में बहुत सहायक है तथा देश के सुधार हेतु भी की जा सकती है।

3. अनिष्टकारी प्रार्थना

ऐसी प्रार्थना जिसमें अपने शत्रु के बिनाश अथवा किसी के अनिष्ट के लिए ईश्वर से निवेदन किया जाता है, वह अनिष्टकारी प्रार्थना कहलाती है। ऐसी काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह आदि भावनाओं से प्रेरित स्वार्थपूर्ण चेष्टाओं से प्रभावित होती है। ऐसी प्रार्थना निम्नस्तरीय प्रार्थना होती है, उसमें किसी का कल्याण नहीं होता बल्कि प्रार्थना कर्त्ता स्वयं अपने आध्यात्म पतन का कारण बनता है।

18.5 योग से सम्बन्धित प्रार्थनाएँ – योग कक्षा में बोली जाने वाली कुछ प्रार्थनाएँ निम्नवत हैं –

योग प्रार्थना

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां, मलं शरीरस्य च वैद्यकेन।

योऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां, पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि ॥ (विज्ञानभिक्षु , योग वार्तिक)

अर्थात्- योग से चित्त की शुद्धि, व्याकरण से पद की शुद्धि, वैद्य से रोगी शरीर की शुद्धि होती है, जो योग के प्रवर्त्तक महर्षि पतञ्जलि है, उनको मैं नमस्कार करता हूँ।

प्राणायाम प्रार्थना

प्राणस्येदं वशे सर्वं त्रिदिवे यत्प्रतिष्ठितम्।

मातेव पुत्रान् रक्षस्व श्रीश्च प्रज्ञां च विधेहि न इति ॥ (प्रश्नोपनिषद् 2.13)

इदम् = यह प्रत्यक्ष दीखने वाला जगत् (और), यत् त्रिदिवे = जो कुछ स्वर्गलोम में, प्रतिष्ठितम् = स्थित है, सर्वम् = वह सब का सब, प्राणस्य = प्राणके , वशे = अधीन है (हे प्राण !), माता पुत्रान् इव = जैसे माता अपने पुत्रों की रक्षा करती है, उसी प्रकार (तू हमारी), रक्षस्व = रक्षा कर, च = तथा, न: श्री: च = हमें कान्ति और, प्रज्ञाम् = बुद्धि, विधेहि = प्रदान कर, इति = इस प्रकार यह दूसरा प्रश्न समाप्त हुआ।

अर्थात् – पृथिवी, द्यौ तथा अन्तरिक्ष इन तीन लोकों में जो कुछ भी है, वह सब प्राण के वश में हैं। हे प्राण! जैसे माता स्नेहभाव से पुत्रों की रक्षा करती है, ऐसे ही तू हमारी रक्षा कर। हमें श्री (भौतिक सम्पदा) तथा प्रज्ञा (मानसिक एवं आत्मिक ऐश्वर्य) प्रदान करें।

विश्वकल्याण प्रार्थना

सर्वे भवन्तु सुखिन: सर्वे सन्तु निरामया:।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दु:खभागभवेत् ॥ (बृह.उ., गरुडपुराण अ. 35/51)

अर्थात्- सभी सुखी हो, सभी निरोग हो, सभी कल्याणकारी देखें, हे परमात्मा ! किसी को कुछ भी दु:ख न हो।

शान्तिपाठ प्रार्थना

ॐ पूर्णमद: पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥ (ईश.उ. शान्ति मन्त्र)

ॐ = सच्चिदानन्दघन , अदः = वह परब्रह्म , पूर्णम् = सब प्रकार से पूर्ण है , इदम् = यह (जगत् भी), पूर्णम् = पूर्ण (ही) है , (क्योंकि) पूर्णात् = उस पूर्ण (परब्रह्म) से ही, पूर्णम् = यह पूर्ण , उदच्यते = उत्पन्न हुआ है , पूर्णस्य = पूर्णके , पूर्णम् = पूर्ण को , आदाय = निकाल लेने पर (भी) , पूर्णम् = पूर्ण , एव = ही , अवशिष्यते = शेष रहता है ।

व्याख्या - ॐ रूप में अभिव्यक्त वह (परब्रह्म) पूर्ण है और यह (कार्यब्रह्म) भी पूर्ण है । क्योंकि पूर्ण में से ही उत्पन्न होता है । (एवं प्रलय के समय) पूर्ण का (कार्यब्रह्म का) पूर्णत्व लेकर (अर्थात् स्वयं के भीतर समाकर) पूर्ण (परब्रह्म) ही शेष रह जाता है । त्रिविध तापों (आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक) की शान्ति हो ।

ॐ सह नावतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै ॥
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥ (कठोपनिषद् शान्तिपाठ)

ॐ = पूर्णब्रह्म परमात्मा, (आप) नौ = हम दोनों (गुरु शिष्य) की, सह = साथ-साथ, अवतु = रक्षा करें, नौ = हम दोनों का, सह = साथ-साथ, भुनक्तु = पालन करें, सह = (हम दोनों) साथ-साथ ही, वीर्यम् = शक्ति, करवावहै = प्राप्त करें, नौ = हम दोनों की, अधीतम् = पढी हुई विद्या, तेजस्वि = तेजोमयी, अस्तु = हो, मा विद्विषावहै = हम दोनों परस्पर द्वेष न करें ।

व्याख्या - हे पूर्णब्रह्म परमात्मा ! आप हम दोनों की (गुरु-शिष्य की) साथ ही साथ रक्षा करें । हम दोनों का एक साथ ही पालन करें । हम दोनों साथ ही साथ शक्ति प्राप्त करें । हम दोनों द्वारा प्राप्त की गई विद्या तेजोमयी हो । हम दोनों आपस में द्वेष न करें । (हे परमात्मन् ! आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक त्रिविध तापों की शान्ति हों) ।

बोध प्रश्न

१) प्रार्थना से क्या तात्पर्य है ?

२) मुख्यतया प्रार्थना को कितने भागों में बांटा गया है ?

३) आध्यात्मिक दृष्टिकोण से प्रार्थना के कितने भेद हैं ?

४) सार्वभौमिक प्रार्थना से क्या अभिप्राय है ?

५) तीनों लोकों में जो कुछ भी व्याप्त है, वह सब .....के वश में है ।

18.6 प्रणव का अर्थ एवं स्वरूप

ॐ ब्रह्माण्ड के अंदर नियमित ध्वनि है। सूक्ष्म इंद्रियों द्वारा ध्यान लगाने पर इसकी अनुभूति हो सकती है। सर्वत्र व्याप्त होने के कारण इस ध्वनि (ॐ) को ईश्वर (प्रणव) की संज्ञा दी गई है। जो ॐ के अर्थ को जानता है, वह अपने आप को जान लेता है और जो अपने आप को जान लेता है वह ईश्वर को जान लेता है। ओ३म् (ॐ) या **ओंकार** का नामान्तर प्रणव है । यह ईश्वर का वाचक है। उसे कौन सा भी आकार या स्वरूप नहीं और कोई भी उसकी कल्पना भी नहीं कर सकता । 'ॐ' या 'ओंकार' यह उसका पूरी तरह से निकट का निराकार ध्वनि है। ओंकार का मूल स्वरूप यह कंपनों में है। ॐ यह शब्द तीन अक्षरों से बना है - अ+उ+म ।

1. 'अ' यह अक्षर जन्म या उत्पत्ति दिखानेवाला है - ब्रह्मा ।

2. 'उ' यह अक्षर आधार या स्थिति दिखानेवाला है -विष्णु ।

3. 'म' यह अक्षर विनाश या लय दिखानेवाला है -महेश ।

ब्रह्मा, विष्णु और महेश ये तीन शक्तियाँ सभी विश्व की तीन अवस्थाएँ याने क्रम से उत्पत्ति, स्थिति और लय इन पर नियंत्रण करती है ऐसा योगशास्त्र में माना गया है।

ॐ (ओ३म्) - **श्री विनोबा भावे** के अनुसार लैटिन शब्द 'ऑम (Omne) तथा संस्कृत शब्द ॐ ('ओ३म्') दोनों 'सर्व' अर्थ वाले एक ही धातु से बने हैं और दोनों शब्द सर्वज्ञान (अनन्तज्ञान), सर्वव्यापकता (विश्वव्यापकता) एवं सर्वशक्ति (अनन्तशक्ति) के विचार का प्रतिपादन करते हैं। ॐ (ओ३म्) के लिए दूसरा शब्द प्रणव है जो प्रार्थना (प्रशंसा स्तुति) करना - इस अर्थ के **'णु'** धातु से बना है, जिसे श्रेष्ठता का अर्थ प्रतिपादन करनेवाला 'प्र' उपसर्ग लगा है। इसलिए इस शब्द का अर्थ है उत्तम प्रशंसा (स्तुति) या प्रार्थना (उपासना) ।

प्रतीकात्मक ॐ (ओ३म्) शब्द तीन अक्षरों, जिन्हें अ, उ, म् कहते हैं, से बना है और जब लिखा जाता है तब इसके ऊपर अर्धचंद्र और उसके ऊपर एक बिंदु (अनुस्वार) होता है। इसके भिन्न-भिन्न अर्थ को प्रतिपादित करने के लिए दिये हुए कुछ उदाहरण यहाँ बतलाना उचित होगा।

अ,उ, म् ये अक्षर मन और आत्मा की क्रमशः जागृतावस्था (चेतन या उत्थित अवस्था.), स्वप्नावस्था (स्वप्न-मनतरंग की अवस्था) तथा सुषुप्तावस्था (स्वप्न-रहित निद्रा की अवस्था) का अर्थ संकेतित करते हैं। अर्धचंद्र तथा बिंदु (अनुस्वार) के साथ संपूर्ण प्रतीक (संकेत) चौथी अवस्था - तुरीयावस्था का द्योतक है, जो इन सभी अवस्थाओं को एकत्रित (संयुक्त) करता है और उनमें अवतरित होता है । यही समाधि की अवस्था है।

अ, उ तथा म् ये अक्षर क्रमशः वाणी, मन एवं प्राण (जीवन-श्वास) के प्रतीक हैं जब कि संपूर्ण प्रतीक जीवात्मा को अभिव्यक्त करता है जो एकमात्र दिव्यात्मा का अंश है ।

ये तीन अक्षर लंबाई, चौडाई तथा गहराई के आयाम का प्रतिनिधित्व करते हैं जब कि संपूर्ण प्रतीक दिव्यता का प्रतिनिधित्व करता है जो आकार एवं रूप की सीमा के परे है।

अ, उ तथा म् ये तीन अक्षर क्रमश: वासना, भय एवं क्रोध के अभाव के प्रतीक हैं, जब कि संपूर्ण प्रतीक पूर्ण मानव (स्थित प्रज्ञ) का सूचक है, जिसका ज्ञान उस दिव्य से नितांत परिपूर्ण है ।

ये अक्षर अलग-अलग पुंल्लिंग, स्त्रीलिंग तथा नपुंसकलिंग - इन तीन लिंगों का प्रतिनिधित्व करते हैं, जब कि संपूर्ण प्रतीक स्रष्टा सहित संपूर्ण सृष्टि का सूचक है। ये अक्षर तीन गुणों अर्थात् सत्त्व, रज तथा तम के प्रतिमान हैं जब कि संपूर्ण प्रतीक गुणातीत का प्रतिमान है जो सर्वोत्कृष्टता को प्राप्त है और गुणों के आकर्षण से सर्वथा परे है ।

ये अक्षर तीन कालों--भूत, वर्तमान तथा भविष्यत् से संबद्ध होते हैं, जब कि संपूर्ण प्रतीक स्रष्टा-कालातीत की अभिव्यक्ति है जो काल की सीमा का अतिक्रमण करता है।

ये अक्षर क्रमशः माता, पिता तथा गुरु द्वारा दी गयी शिक्षा की अभिव्यक्ति है । सम्पूर्ण प्रतीक ब्रह्मविद्या, आत्मज्ञान है, वह शिक्षा जो अविनाशी-अनश्वर है।

18.7 ॐ का वैज्ञानिक महत्त्व

आइंसटाइन यही कह कर गए हैं कि ब्राह्मांड फैल रहा है। आइंसटाइन से पूर्व भगवान महावीर ने कहा था। महावीर से पूर्व वेदों में इसका उल्लेख मिलता है। खगोल वैज्ञानिकों ने प्रमाणित किया है कि हमारे अंतरिक्ष में पृथ्वी मण्डल, सौर मण्डल , सभी ग्रह मण्डल तथा अनेक आकाशगंगाएं, लगातार ब्रह्माण्ड का चक्कर लगा रही हैं। ये सभी आकाशीय पिण्ड कई हज़ार मील प्रति सेकेण्ड की गति से अनंत की ओर भागे जा रहे हैं, जिससे लगातार एक कम्पन, एक ध्वनि अथवा शोर उत्पन्न होरहा है इसी ध्वनि को हमारे तपस्वी और ऋषि - महर्षियों ने अपनी ध्यानावस्था में सुना। जो लगातार सुनाई देती रहती है शरीर के भीतर भी और बाहर भी। हर कहीं, वही ध्वनि निरंतर जारी है और उसे सुनते रहने से मन और आत्मा शांती महसूस करती है तो उन्होंने उस ध्वनि को नाम दिया ब्रह्मानाद अथवा ॐ कहा । यानी अंतरिक्ष में होने वाला मधुर गीत 'ओ३म्' ही अनादिकाल से अनन्त काल तक ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। ओ३म् की ध्वनि या नाद ब्रह्माण्ड में प्राकृतिक ऊर्जा के रूप में फैला हुआ है जब हम अपने मुख से एक ही सांस में ओ३म् का उच्चारण मस्तिष्क ध्वनि अनुनाद तकनीक से करते हैं तों मानव शरीर को अनेक लाभ होते हैं और वह असीम सुख, शांति व आनन्द की अनुभूति करता है।

18.8 ॐ की उच्चारण विधि –

- प्राणायाम या कोई विशेष आसन करते वक़्त इसका उच्चारण किया जाता है। केवल प्रणव साधना के लिए ॐ (ओम्) का उच्चारण पद्मासन, अर्धपद्मासन, सुखासन, वज्रासन में बैठकर कर सकते हैं। साधक बैठने में असमर्थ हो तो लेटकर भी इसका उच्चारण कर सकता है। इसका उच्चारण 5, 7, 10, 21 बार अपनी सुविधानुसार कर सकते हैं।
- ॐ ज़ोर से बोल सकते हैं, धीरे-धीरे बोल सकते हैं। बोलने की ज़रूरत जब समाप्त हो जाए तो इसे अपने अंतरमन में सुनने का अभ्यास बढ़ाएँ। ॐ जप माला से भी कर सकते हैं। उच्चारण करते वक़्त लय का विशेष ध्यान रखें।
- इसका उच्चारण सुप्रभात या संध्याकाल में ही करें। उच्चारण और आसन करने के लिए कोई एक एकांत खुला स्थान नियुक्त हो। हर कहीं इसका उच्चारण न करें। उच्चारण करते वक़्त पवित्रता और सफाई का विशेष ध्यान रखें।
- किसी भी ध्वनि का प्रभाव तभी उत्पन्न होता है जब उसे विशेष लयबद्धता व श्रद्धा के साथ व्यक्त किया जाये। 'ओ३म्' ध्वनि करते हुए स्वर की मधुरता तथा उच्चारण करे तब सब ओर से विकृतियों को हटाकर एकाग्रचित होकर के उस प्रभु का प्रेम, श्रद्धा और दृढ़ विश्वास से ध्यान करें। ऐसी भावना बनाये कि वही हमारा सच्चा पिता, माता, भाई, बंधु हमारा सर्वस्व, हमारे जीवन का आधार है, अच्छा ही करता है दुःख द्वारा भी हमारे पाप कर्मों का शमन करता है व हमें पाप के बोझ से हल्का करता है। इसलिए दुःख आने पर भी उसका ही धन्यवाद करें।
- ओ३म् के उच्चारण के लिए किसी निश्चित स्थान पर एकांत जगह पर आसन बिछाकर पदमासन, सुखासन में बैठे। हाथ ज्ञान मुद्रा में घुटनों पर रखे। नेत्र कोमलता से बंद करें तथा दो-तीन बार गहरे लम्बे श्वास लें और

श्वास गहरा भरे, बिना मुंह खोलकर व बोलकर ओ का उच्चारण करें। कंठ से स्पंदन हो और इसके बाद होठ बंद करते हुए म का गुंजन करे। धीरे-धीरे लंबा गुंजन का अभ्यास करे। जब तक आनन्द मिलता रहे तो उस आसन को करते रहो। इसे नियमित श्रद्धाभाव और प्रसन्न-चित्त होकर करें। ब्रह्म-मुहूर्त में करने पर आनन्द मिलता है। अंत में कुछ देर के लिए शांत बैठे।

18.9 ॐ के उच्चारण के शारीरिक लाभ - इससे शरीर को अनेक प्रकार से लाभ होता है तथा शरीर के कोषाणुओं का नव निर्माण होता है। शरीर स्वस्थ, सुंदर तथा पवित्र बनता है। कंठ नली में स्वर तन्तु की ट्यूनिंग होती है, फेफडों की कार्य क्षमता बढती है। आसनों के करने से अनेक प्रकार के विकार दूर होते हैं तथा रक्त की शुद्धि होती है। हृदय को कम काम करना पडता है। उससे विश्राम भी मिलता है। पाचन क्रिया सुधरती है तथा निष्कासन प्रणाली सुचारु रूप से कार्य करती है। ग्रंथियों से संतुलित स्त्राव निकलता है। मन की शक्ति बढती है, मन हल्का, प्रसन्न व पवित्र बनता है। एक मंगलमय वातावरण निर्मित होता है तथा हर प्रकार का तनाव दूर होता है। दमा, रक्तचाप आदि ठीक हो जाते हैं। नर को नारायण की ओर बढाने की क्षमता ओंकार ध्वनि में है। बुद्धि तीव्र, स्मरण शक्ति का विकास तथा निर्णायक क्षमता की वृद्धि होती है और तन, मन, बुद्धि को स्वस्थ रखती है।

18.10 जीवन में प्रार्थना एवं प्रणव की उपयोगिता व महत्त्व

मानव जीवन में प्रार्थना का बड़ा महत्त्व है । प्रार्थना की विभिन्न परिस्थितियाँ । जहाँ एक ओर संबल प्रदान करती हैं, वहीं दूसरी ओर भय मुक्त भी करती हैं । प्रार्थना जहाँ हमें जीवन जीने हेतु आधार प्रदान करती है वहीं हमारे पूरे व्यक्तित्व को भी प्रभावित करती है ।

18.10.1 सम्पूर्ण स्वास्थ्य की प्राप्ति का साधन – मानवीय सम्पूर्ण स्वास्थ्य के तीन पक्ष हैं। प्रथम पक्ष शारीरिक पक्ष है जो स्थूल है। द्वितीय पक्ष मानसिक है जो सूक्ष्म है तथा तृतीय पक्ष आध्यात्मिक है जो आत्मा से सम्बंधित है। इन तीनों पक्षों में एक गहरा पारंपरिक सम्बंध और तालमेल है। प्रार्थना के अभाव में आध्यात्मिक पक्ष की निरंतर अवहेलना होती जाती है। इसके परिणाम स्वरूप आत्मीय पक्ष दुःखों से भर जाता है और तत्पश्चात् मन अशांत, अस्थिर और क्लेश युक्त हो जाता है। ऐसी स्थिति लंबे समय तक जारी रहने से अनेक प्रकार के मनोरोग जैसे दुश्चिंता, अकारण भय, मानसिक अवसाद उत्पन्न होते हैं। इसके पश्चात् इन मनोरोगों के कारण उच्च रक्तचाप, मधुमेह, हृदय रोग, पेट की बीमारियाँ जैसे वायुविकार, हिस्टीरिया आदि मनोकायिक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। प्रार्थना से आध्यात्मिक पक्ष को बल एवं शक्ति प्राप्त होती है, जिसमें तनाव, द्वन्द्वों तथा विपरीत परिस्थितियों में हम अनुकूलन करना सीख जाते हैं और सम्पूर्ण स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है ।

18.10.2 आत्मशोधन का साधन - प्रार्थना का हमारे जीवन में एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है "आत्मोन्नति"। पहले साधक अपने द्वारा किए गए पापों का पश्चाताप करता है और पापाचार को पुनः न करने का सकल्प लेता है। प्रार्थना साधक के जीवन में एक कर्तव्य परायण नियमित प्रहरी की तरह होती है जो चोरों एवं समाज विरोधी तत्वों को घर के पास आने से रोकती है। बार-बार प्रार्थना करने से साधक को बार-बार आत्म निरीक्षण का

अवसर मिलता है जिससे वह दो प्रार्थनाओं की मध्यावधि में मन, वचन एवं कर्म से होने वाले विघ्नों को जान जाता है। इस प्रकार ध्यान में बैठ जाने पर प्रार्थना का स्थान पश्चाताप ले लेता है और साधक पुनः अपराध न करने का निश्चय करता है। जिस प्रकार स्नान व शोधक औषधियाँ हमारे शरीर को य एवं आंतरिक शुद्धि प्रदान करती हैं उसी प्रकार प्रार्थना भी आत्म-शोधन का साधन है।

18.10.3 अध्यात्मिक सामर्थ्य की प्राप्ति का साधन - प्रार्थना न केवल शोधन का कार्य करती है अपितु हमें आध्यात्मिक सामर्थ्य भी प्रदान करती है। सतत् प्रार्थना से मन की चंचलता समाप्त होने लगती है और मन स्थिरता को प्राप्त होता है। चित्त की वृत्तियों पर साधक का नियंत्रण हो जाता है। निरंतर नियमित प्रार्थना से मानसिक एकाग्रता का स्तर भी धीरे-धीरे बढ़ने लगता है और फिर क्षुद्र अहम् का विनाश हो जाता है। इस प्रकार साधक को प्रार्थना ऐसे ऊँचे स्तर तक ले जाती है जहाँ साधक को ईश्वर को सर्वव्यापकता की अनुभूति होती है और साधक का अनंत से संपर्क संस्थापन होता है।

18.10.4 कैवल्य का साधन - सतत् प्रार्थना के प्रभाव से चित्त की वृत्तियों पर नियंत्रण प्राप्त हो जाता है। चित्त और मन में संयम के साथ-साथ प्रार्थना से ऐसा रक्षा कवच प्राप्त होता है जो ध्यानादि के उच्च अभ्यास के समय सांसारिक प्रलोभनों से साधक के समीप पहुँचने पर साधक के मन में आध्यात्मिक सफलता का गर्व जागृत कर सकता है। ऐसी स्थिति में प्रार्थना से मन में उत्पन्न हुए इस अहम् और गर्व आदि को विनष्ट किया जा सकता हैं।

बोध प्रश्न

६) ओंकार का अन्य एक नाम ..... है।

७) ओम् शब्द कितने अक्षरों से मिलकर बना हैं ?

८) विष्णुअ, स्थिति, स्वप्नावस्था आदि ओम् के किस अक्षर से सम्बन्धित हैं ?

९) सम्पूर्ण स्वास्थ्य के लिए किसका उच्चारण करें ?

१०) प्राणायाम या कोई यौगिक अभ्यास करने से पूर्व किसका उच्चारण किया जाता है ?

18.11 ग्रन्थ का मूलपाठ

ॐ अष्टाविंशानि शिवानि शग्मानि सह योगं भजन्तु मे।
योगं प्रपद्ये क्षेमश्च क्षेमं प्रपद्ये योगश्च नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु ॥ (अथर्व० का० १९ अनु० १ व० ८ मं० २)

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां, मलं शरीरस्य च वैद्यकेन।
योऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां, पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि ॥ (विज्ञानभिक्षु , योग वार्तिक)

प्राणस्येदं वशे सर्वं त्रिदिवे यत्प्रतिष्ठितम्।
मातेव पुत्रान् रक्षस्व श्रीश्च प्रज्ञां च विधेहि न इति ॥ (प्रश्नोपनिषद् 2.13)

सर्वे भवन्तु सुखिन: सर्वे सन्तु निरामया:।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दु:खभागभवेत् ॥ (बृह.उ., गरुडपुराण अ. 35/51)

ॐ पूर्णमद: पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥ (ईश.उ. शान्ति मन्त्र)

ॐ सह नावतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै ॥
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥ (कठोपनिषद् शान्तिपाठ)

18.12 सारांश

प्रस्तुत पाठ में हम ने जाना समझा कि प्रार्थनाओं और ॐकार का जीवन में महत्त्व कितना है । ईश्वर शरणागति एक ऐसा अकेला साधन है, जिसमें साधक अपने शरीर, मन, बुद्धि एवं अहंकार सहित पूर्ण रूपेण ईश्वर को समर्पित कर देता है। साधक का निजत्व समाप्त होकर वह ईश्वर की इच्छा के अनुकूल कार्य करने लगता है। साधक स्वयं को बाँस की पोगंरी की तरह खाली कर देता है और उससे स्वर ईश्वर का होता है। वह अपने को पूर्ण रूप से समर्पण कर देता है। जिससे ईश्वर उसका हाथ थाम लेता है। यही बात **श्रीमद्भगवद् गीता** में भी स्वयं श्री कृष्ण द्वारा कही गयी है।

अनन्यश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः र्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।। (गीता 9/22)

अर्थात् जो अनन्य प्रेमी भक्त जन मुझ परमेश्वर को निरन्तर चिन्तन करते हुए निष्काम भाव से भजते है। उस नित्य निरन्तर मेरा चिन्तन करने वाले पुरूषो का योगक्षेम मै स्वयं करता हूँ ।

अत: सम्पूर्ण अध्याय में आप समझ गए होंगे कि योग साधना में प्रार्थनाओं और ॐकार का बहुत महत्त्व है । जो साधक को अन्तर्मुखी बनाकर परम ब्रह्म से मिलाने का साधन बनता है ।

18.13 शब्दावली

१) सकाम : कामना युक्त कर्म ।
२) निष्काम : कामना रहित कर्म ।
३) अनिष्ट : अहित (कर्म) ।
४) निरामय : निरोग होना ।
५) भद्र : कल्याणकारी ।
६) जागृतावस्था : चेतना, उत्थित अवस्था ।
७) स्वप्नावस्था : स्वप्न-मनतरंग की अवस्था ।
८) सुषुप्तावस्था : स्वप्न रहित निद्रा की अवस्था ।
९) दुश्चिन्ता : बुरी चिन्ता, एक प्रकार का मनोविकार ।

18.14 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. सूरी स्वात्माराम (2001), हठप्रदीपिका। कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योगमंदिर समिति, लोनावला - 410403 (पुणे) ।

2. सम्पूर्ण योग विद्या (2018), राजीव जैन "त्रिलोक"। मंजुल पब्लिशिंग हाउस, मालवीय नगर, भोपाल-462003।
3. योगदीपिका (2005), बी.के.एस. आयंगार। ओरियंट लॉंग्मैन प्राइवेट लिमिटेड, हैदराबाद-500029 (आन्ध्रा प्रदेश), भारत।

18.15 सहायक ग्रन्थ

1. सरस्वती विज्ञानानंद (2007). योग विज्ञान योग निकेतन ट्रस्ट, मुनि की रेती, ऋषिकेश- 249192
2 योग (2019), प्रकाशक - विवेकानन्द केन्द्र प्रकाशन ट्रस्ट, चैन्नै (पश्चिम बंगाल), भारत।
3. योगासनों के स्वरूप एवं उनकी वैज्ञानिकता (2019), डा. नवनीत कुमार। आइडियल पब्लिकेशन, जौहरी बाजार, जयपुर-302003।

18.16 बोध प्रश्नोत्तर

१) ईश्वर के प्रति आत्मनिवेदन।
२) दो (सामाजिक एवं आध्यात्मिक)।
३) तीन।
४) समस्त विश्व के कल्याणार्थ की जाने वाली प्रार्थना।
५) प्राण।
६) प्रणव।
७) तीन।
८) 'उ' अक्षर।
९) ओंकार का उच्चारण।
१०) ओंकार।

18.17 अभ्यास प्रश्न

प्रश्न 1. प्रार्थना के कितने भेद हैं ? वर्णन करें।

प्रश्न 2. अध्यात्मिक प्रार्थना किसे कहते हैं ?

प्रश्न 3. ॐ का स्वरूप स्पष्ट करें।

प्रश्न 4. ॐ के शारीरिक लाभों को लिखिए।

प्रश्न 5. जीवन में प्रार्थनाओं का क्या महत्त्व हैं ?

नवदश पाठ
षट्कर्म का संक्षिप्त परिचय

पाठ संरचना

19.1 प्रस्तावना

19.2 उद्देश्य

19.3 षट्कर्म का परिचय

19.3.1 धौति कर्म

19.3.2 बस्ति कर्म

19.3.3 नेति कर्म

19.3.4 नौलि कर्म

19.3.5 त्राटक कर्म

19.3.6 कपालभाति कर्म

बोधप्रश्न

19.4 षट्कर्मों की महत्ता

19.5 ग्रन्थ का मूलपाठ

19.6 सारांश

19.7 शब्दावली

19.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

19.9 सहायक ग्रन्थ

19.10 बोध प्रश्नोत्तर

19.11 अभ्यास प्रश्न

19.1 प्रस्तावना

इस पाठ में षट्कर्मों का संक्षेप में अध्ययन करेंगे । शास्त्रों में योगी व साधक के लिए धौति, वस्ति, नेति, लौलिकी (नौलीक्रिया), त्राटक और कपालभाति इन छः क्रियाओं को आवश्यक बताया है। क्योंकि षट्कर्म हमारी दोनों प्रमुख प्राण प्रवाह व संचार की नाड़ियों के मध्य सामञ्जस्य स्थापित करती है। जिससे शारीरिक शुद्धिकरण के साथ-साथ मानसिक सन्तुलन भी प्राप्त होता है तथा यह शरीर में उत्पन्न त्रिदोषों वात, पित्त व कफ को भी सन्तुलित करते हैं।

आयुर्वेद तथा हठयोग दोनों के अनुसार, इन त्रिदोषों में असन्तुलन ही व्याधि को जन्म देता है। इन शुद्धिकरण की क्रियाओं से शरीर स्वच्छ व निर्मल हो जाता है तथा साधना में साधक उच्च चेतना के स्तर तक पहुँचता है।

19.2 उद्देश्य - प्रस्तुत पाठ का अध्ययन करने के बाद आप जान सकेंगे -

- ❖ षट्कर्म क्या हैं ?
- ❖ षट्कर्मों का आन्तरिक सफाई में योगदान।
- ❖ षट्कर्मों की सरल विधि, लाभ एवं सावधानियाँ।
- ❖ स्वस्थ व्यक्ति एवं अन्य व्याधियों में इसके गुणकारी प्रभाव।
- ❖ षट्कर्मों का जीवन में महत्त्व।

19.3 षट्कर्म का परिचय

योग आसनों का पूर्ण लाभ शुद्धिकरण की क्रियाओं के बिना नहीं हो सकता है। प्रकृति ने शरीर से विजातीय द्रव्य बाहर निकालने के लिए प्रमुख चार मार्ग बताए है-मल, मूत्र, नाक से प्रश्वास, स्वेदन-पसीना इनसे हमारा शरीर गन्दगी बाहर निकालता है। योग साधना व अभ्यास में शुद्धिकरण होने से लाभ अधिक व पूर्ण होता है- शुद्धिकरण की शास्त्रों में षठक्रियाएं बताई गई हैं।

धौतिर्वस्ति स्तथानेति लौलिकि त्राटकं तथा।
कपालभातिश्चैतानि षट्कर्माणि समाचरेत् ॥ घेरण्ड सं. १.१२

षट्कर्म नाम - कपाल भांति,त्राटक, नेति, वमन धौति (कुंजल), नौली,बस्ति (शंख प्रक्षालन)।

19.3.1 धौति कर्म

धौति- जिसका अर्थ होता है धोना या धुलाई। धौति के अनेक प्रकार हैं और प्रत्येक के पीछे एक विशेष कारण और उद्धेश्य हैं। धौति का अभ्यास वायु, जल, वस्त्र और डण्डे से किया जा सकता हैं।

घेरण्ड संहिता के अनुसार धौति प्रकार : धौति चार है - अन्त:धौति, दन्तधौति, हृदधौति और मूलशोधन।

श्लोक - अन्तर्धौतिर्दन्तधौतिर्हृद्धौतिर्मूलशोधनम्। धौतिं चतुर्विधां कृत्वा घटं कुर्वन्तु निर्मलम् ॥1/13॥

प्रथम- अन्तर्धौति, द्वितीय-दन्तधौति, तृतीय हृद् धौति और चतुर्थ- मूलशोधन इन चार प्रकारीय धौतियों को करके (योगीजन) घट (शरीर) को निर्मल- स्वच्छ करें ॥

नूतन साधकों के लिए सभी धौति प्रकार न करवा कर केवल हृदधौति के दो प्रकारों को ही समझेगें।

घेरण्ड संहिता में हृद्धौति के भेद तीन हैं - 1) दण्ड धौति, 2) वमन धौति और 3) वस्त्र धौति।

श्लोक - हृद्धौतिं त्रिविधां कुर्याद्दण्डवमनवाससा ॥1/36॥ हृद्धौति को तीन प्रकार से करना चाहिए। ये तीन प्रकार हैं- दण्ड, वमन और वस्त्र धौति ॥

वमन क्रिया के दो प्रकार होते है-एक तो इसे खाली पेट में ही किया जाता है तथा दूसरे में भोजन करने के बाद करते हैं। इसमें खाली पेट करने को कुंजल क्रिया कहते हैं तथा भोजन के बाद करने को व्याघ्र क्रिया कहते हैं। व्याघ्र क्रिया का अभ्यास आकस्मिक उदर शूल की अवस्था में करवाते हैं। कुंजल क्रिया में

सर्वप्रथम अपने हाथ अच्छी तरह से धो लेने चाहिए तथा नाखून भी बढ़े हुए न रहें, गुनगुने पानी में प्रति 1 लीटर में 1 चम्मच नमक डालकर पानी तैयार कर लें। कागासन स्थिति में उकडू बैठ जाएं तथा 5-6 गिलास पानी पी लें। सीधे खड़े होकर आगे की ओर झुककर बाएं हाथ से पेट को दबा लें तथा दाहिने हाथ की दो अंगुलियों को जीभ बाहर निकालकर जीभ पर रगड़ें तथा पेट के पानी को मुंह से निकाल दें। जब पानी बाहर निकले उस समय अंगुलियां बाहर निकाल लेनी हैं। आँखें भी इस अभ्यास में बन्द रखनी हैं। अन्यथा तनाव से लाल हो सकती है। अगर मौसम ठण्डा है तो इसका अभ्यास खुले में न करें इस क्रिया के आधे घण्टे बाद ही कुछ खाना चाहिए।

लाभ : इस क्रिया से पेट में एकत्रित अतिरिक्त वायु व अम्लपित्त बाहर निकल जाता है। यह श्वास सम्बन्धित रोगों में भी बहुत लाभकारी है क्योंकि जब पानी बाहर निकलता है तो वह फेफड़ों में संकुचन करता है जिससे अन्न नलिका में एकत्रित बलगम व फेफड़ों में जमा कफ बाहर निकलता है। इसीलिए इसमें पानी पेट में जाने के बाद भी फेफड़ों का शुद्धिकरण करता है।

सावधानियाँ : जिन्हें अल्सर, हृदय रोग, उच्च रक्तचाप, हर्निया व पथरी की शिकायत है वे योग्य चिकित्सक की सलाह लेकर ही इसका अभ्यास करें । उच्च रक्तचाप की शिकायत वाले पानी में नमक न डाले तथा कमर दर्द व स्लिप डिस्क की शिकायत वाले इसका अभ्यास न करें। रोग की गम्भीर अवस्था में इसे नियमित कर सकते हैं अन्यथा सप्ताह में 1 या 2 बार से अधिक इसका अभ्यास न करें ।

19.3.2 बस्ति कर्म

शंखप्रक्षालन (वारिसार अन्तर्धौति)

शब्दार्थ - शंख: - समृद्धि शंख, प्रक्षालन: - पूर्ण सफाई । जिस प्रकार एक शंख में ऊपर से पानी डालने पर वह घूमता हुआ नीचे आता है, ठीक उसी प्रकार इस क्रिया में मुंह से पीया हुआ पानी पाचक अंगों की धुलाई करता हुआ गुदा मार्ग तक पूर्ण सफाई कर देता है।

आकण्ठं पूरयेद्वारि वक्त्रेण चपिबेच्छनैः। चालयेदुदरेणैव चोदरादूचयेदधः ॥
वारिसारं परं गोप्यं देनिर्मलकारकम्। साधयेत्तत्प्रयत्नेन देवदेह प्रपद्यते॥ घेरण्ड सं. 1.17-18

शब्दार्थ : इसमें मुंह से धीरे-धीरे जल पीते हुए जल से पेट को भर लेना है उसके बाद उदर को चलाकर जल को धीरे-धीरे अधोमार्ग से निकाल देना, यह वारिसार क्रिया परम गोपनीय एवं शरीर को स्वच्छ करने वाली है। इसका सही अभ्यास करने वाले साधक व योगी को देवताओं के समान शरीर की प्राप्ति होती है।

घेरण्ड संहितानुसार बस्ति प्रकार : दो हैं - 1) जल बस्ति और 2) शुष्क (स्थल) बस्ति ।

जलबस्ति: शुष्कबस्तिर्बस्ति: स्याद्विधा स्मृता । जलबस्तिं जले कुर्याच्छुष्कबस्तिं सदा क्षितौ ॥1/46॥

जलबस्ति और शुष्कबस्ति, इस प्रकार बस्ति दो प्रकार की कही गयी है । जलबस्ति को जल में तथा शुष्कबस्ति को भूमि में करना चाहिए ॥

जल बस्ति को करने की आसन विधि –

नाभिमग्नजले पायुं न्यस्तवानुत्कटासनम् । आकुञ्चनं प्रसारञ्च जलबस्तिं समाचरेत् ॥1/47॥

नाभिपर्यन्त जल में उत्कट आसन लगाये । तब मलद्वार का आकुञ्चन और प्रसारण (सिकोड़ना तथा फैलाना) करे, यह क्रिया जलबस्ति कही जाती है ।

जलबस्ति फल - प्रमेहञ्च उदावर्त्तं क्रूरवायुं निवारयेत् । भवेत्स्वच्छन्ददेहश्च कामदेवसमो भवेत् ॥1/48॥

(इससे) प्रमेह, उदावर्त और कुपित वायु का निवारण करना चाहिए। इससे देह स्वच्छन्द होता है तथा व्यक्ति कामदेव के समान रूपवान हो जाता है।

घेरण्ड संहितानुसार शुष्क बस्ति की आसन विधि –

श्लोक - बस्तिं पश्चिमोत्तानेन चालयित्वा शनैरध: । अश्विनीमुद्रया पायुमाकुञ्चयेत् प्रसारयेत् ॥1/49॥

भूमि पर पश्चिमोत्तान होकर (पीठ को और ऊपर उठाकर) गुदाद्वार को चलाकर धीरे-धीरे अश्विनी मुद्रा से आकुञ्चन और प्रसारण (सिकोड़ना और फैलाना) की क्रिया करे।

स्थलबस्ति फल - एवमभ्यासयोगेन कोष्ठदोषो न विद्यते । विवर्द्धयेज्जठराग्निमामवातं विनाशयेत् ॥1/50॥

इस अभ्यासयोग से कोष्ठदोष नहीं होता है। जठराग्नि की वृद्धि होती है तथा आमवात का नाश होता है।

19.3.3 नेति कर्म

यह षट्कर्म के अंतर्गत शुद्धिकरण की तीसरी प्रक्रिया है जिसका मुख्य उद्देश्य शीर्ष प्रदेश,मस्तिष्क के क्षेत्र की सफाई करना है। इस क्रिया से दृष्टि से संबंधित नाड़ियों एवं अन्य आंतरिक नाड़ियों का भी शोधन होता है। नासिका के भीतरी क्षेत्र की भी शुद्धि होती है। हठयोग में दो प्रकार की नेति की चर्चा है। जिसमें पहला जल नेति जो कि बहुत ही प्रचलित अभ्यास है तथा दूसरा सूत्र नेति। सूत्र नेति के समान ही रबड़ नेति का भी अभ्यास किया जाता है। इसके अतिरिक्त नेति क्रिया में दूध,घी, तेल का भी प्रयोग किया जाता है।

1) जलनेति

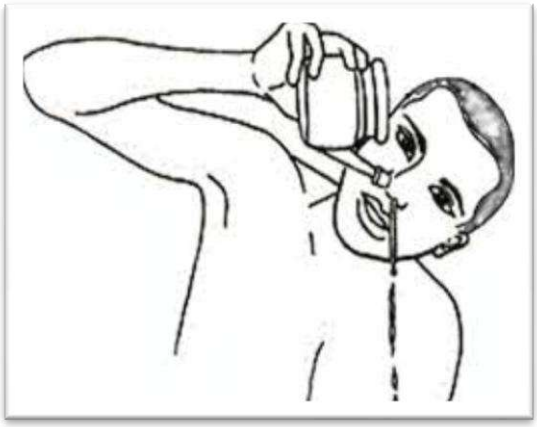

विधि : - जल नेति सूत्र नेति से पूर्व का अभ्यास है। इस क्रिया को एक विशेष प्रकार के लोटे से किया जाता है जिसमें एक लम्बी नली-सी बनी हुई होती है जिससे वह नाक में आसानी से जम जाए तथा पानी उस नासिका से बाहर न निकले। उकडू अथवा एड़ियों के बल बैठकर कंधों व सिर को आगे की ओर झुकाकर लोटे की एक नली एक नाक में लगा कर जीभ बाहर निकालकर मुंह से श्वास-प्रश्वास करते रहें तथा धीरे-धीरे पूरा पानी खाली कर दें। इसे दूसरी नाक से भी करना है। पानी में नमक डालना जरूरी है। इसमें गर्दन को आगे ही झुका कर रखे अन्यथा पानी मुंह में आ जायेगा तथा श्वास मुंह से ही लें नाक से श्वास लेने की स्थिति में पानी सिर में चढ़ जायेगा और आधे या 1 घण्टे थोड़ी तकलीफ होगी। इस क्रिया को प्रतिदिन किया जा सकता है।

लाभ एवं सावधानियाँ - नेति क्रिया को आज के युग में आँख, नाक एवं गले की सुरक्षा हेतु क्रिया (E.N.T. Care Kriya) भी कहते हैं। धूल, धुएं से एलर्जी, दमा, ब्रोंकाइटिस, अनिद्रा, नेत्र रोग, माइग्रेन, सायनस आदि में इससे बहुत लाभ मिलता है। इसके बाद आगे की ओर झुककर क्रिया जरूर करें जिससे नाक में रुका हुआ पानी पूरा निकल जाए, दीर्घ श्वसन क्रिया में नाक से ही तेजी से श्वास बाहर निकालना है।

घेरण्ड संहितानुसार नेति कर्म की विधि -

श्लोक - वित्तस्तिमानं सूक्ष्मसूत्रं नासानाले प्रवेशयेत् । मुखान्निर्गमयेत्पश्चात् प्रोच्यते नेतिकर्मकम् ॥1/51॥

वितस्तिमाप (12 अँगुल) का सूक्ष्मधागा नासिका छिद्र में प्रवेश करना चाहिए। पुन: उसे मुख से निकालना चाहिए, यह नेति कर्म कहा जाता है।

नेति प्रभाव - साधनान्नेतियोगस्य खेचरीसिद्धिमाप्नुयात्। कफदोषा विनश्यन्ति दिव्यदृष्टि: प्रजायते ॥1/52॥

नेतिकर्मों को साधने से खेचरी मुद्रा की सिद्धि प्राप्त होती है। इससे समस्त कफ दोष विनष्ट होते है तथा दिव्यदृष्टि उत्पन्न हो जाती है।

2) **सूत्र नेति : -** इस क्रिया में 1 फुट लम्बी रबड़ की नली जिसे कैथेटर कहते हैं उससे या धागे से अभ्यास किया जाता है। धागे व रबड़ की नली को धीरे-धीरे नाक से अन्दर प्रवेश कराकर मुंह खोलकर हाथों की दोनों अंगुलियों से उसे पकड़कर मुंह से धीरे-धीरे बाहर निकाल देते हैं। इसमें अगर नाक पूरी तरह से रुकी हुई है तो पहले 2-3 दिन नाक में सरसों का तेल या गाय का घी डालकर स्निग्धता, चिकनापन बनाकर अभ्यास करें, इसके अभ्यास में कभी-कभी खून भी आ जाता है या गले में कट लगना या छिल भी जाता है। परन्तु उससे घबराना नहीं है इसका अभ्यास रोग की तीव्रता में नियमित कर सकते हैं अन्यथा सप्ताह में एक बार ही इसका अभ्यास करें।

लाभ : - यह सायनस व श्लेश्मा ठीक करता है, इससे मस्तिष्क शान्त व सक्रिय होता है। मस्तिष्क की उत्तेजना व अति तनाव को कम करता है तथा माइग्रेन, सायनस, मिर्गी, बाल झड़ना आदि शिकायतें इसके अभ्यास से दूर हो जाती हैं। नेत्र ज्योति भी बढ़ती है, इसके नियमित अभ्यास से चश्मा भी उतर जाता है।

सावधानियाँ – नासिका से रक्त बहनें का रोग हो तो साधक योगप्रशिक्षक के सान्निध्य में अभ्यास करें। जल ज्यादा गर्म न हो अन्यथा हानि हो सकती है। अभ्यास के पश्चात् नासिका से सम्पूर्ण पानी बाहर निकाल दें। जिसके लिए शशांकासन में भी बैठा जा सकता है।

19.3.4 नौलि कर्म

नौलि - बस्ति का उद्वेश्य आंतों से विषाक्त पदार्थों का निष्कासन करना है। बस्ति के अभ्यास के बाद जब आंतें स्वच्छ और पूर्णतः स्वस्थ हो जाती हैं तब नौलि का अभ्यास किया जाता है। लौलिक शब्द की व्युत्पत्ति 'लोल' शब्द से हुई है जिसका अर्थ उत्तेजनापूर्वक इधर-उधर घुमाना है। पेट की मांसपेशियों को और उससे संबंधित सभी संस्थानों को संकुचित कर घुमाना, जिससे सभी पाचन अंग एवं पेशियाँ और स्नायु को उत्तेजना शक्ति मिलती है तथा वे सक्रिय होते हैं। इसका यौगिक नाम नौलि है। इससे सभी रोगों का निवारण होता है और जठराग्नि प्रदीप्त होती है। यह क्रिया अग्निसार का ही प्रकारांतर है।

घेरण्ड संहितानुसार लौलिकी कर्म की विधि : 'अमन्दवेगेतुन्दं च भ्रामयेदुभपार्श्वयो: । सर्वरोगान्निहन्तीह देहानलविवर्द्धनम्' ॥1/53॥ लौलिकी (नौलि) विधि बताते हैं- तीव्रवेग से उदर को दोनों पार्श्व भागों में घुमायें। यह सब प्रकार के रोगों को नष्ट करता है तथा जठराग्नि को बढाता है।

नौलि प्रकार – मुख्यतया चार प्रकार हैं – 1) मध्यम नौलि, 2) वाम नौलि, 3) दक्षिण नौलि और 4) भ्रमर नौलि या केवल नौलि।

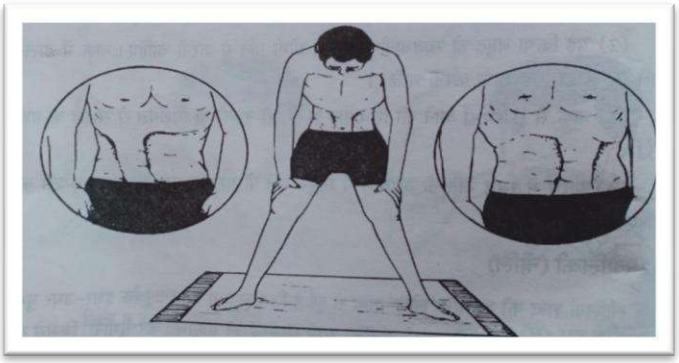

विशेष – यह क्रिया हठयोग में करवाई जाती है। यह एक कठिन क्रिया है । नौलि क्रिया के अभ्यास से पूर्व अग्निसार क्रिया और उड्डियान बन्ध में सिद्धता आवश्यक है अन्यथा नौलि कर्म करने में पूर्णता नही आयेगी । जिसका अभ्यास बिना किसी के मार्ग दर्शन के नहीं करना चाहिए।

विधि : इसके लिए सीधे खड़े होकर आगे की ओर झुककर दोनों पैरों में दो फुट की दूरी रखते हुए हथेलियां घुटनों पर रखकर मुंह से फूंकमार कर पेट को अन्दर दबाते हुए उदर को अन्दर चिपका ले व उड्डियान बंध लगा लें। बार्हिकुम्भक के साथ आंतों को दाएं-बाएं व गोल-गोल घुमाना है जब श्वास की जरुरत हो धीरे से बन्ध खोलकर 5-8 श्वास लेकर सामान्य स्थिति बनाएं व पुनः दोहराएं।

लाभ : इस क्रिया से जठराग्नि प्रदीप्त होती है तथा उदर के समस्त अंगों को शक्ति मिलती है। पाचन शक्ति सुदृढ़ होती है। कब्ज, गैस, आंव की शिकायत दूर हो, वीर्य वृद्धिकर पुरुषत्व को बढ़ाता है। मधुमेह रोग बहुत लाभकारी हैं । शरीर के सूक्ष्म अंगों जैसे-मांसपेशियों, रक्तवाहिकाओं, धमनियों, शिराओं, तंत्रिकाओं, अंतःस्रावी ग्रंथियों, रक्त परिसंचरण तंत्र आदि को भी शुद्ध कर देती है।

सावधानियाँ : इसका अभ्यास भोजन के कम से कम 4-5 घंटे पश्चात् ही करना चाहिए वैसे सर्वोत्तम समय प्रातःकाल है। जिन्हें उच्च रक्तचाप, अल्सर, हर्निया या अन्य कोई गंभीर पाचन सम्बन्धी शिकायत की स्थिति में इसका अभ्यास न करें।

19.3.5 त्राटक कर्म

त्राटक का शाब्दिक अर्थ है त्रीक्षण, एकाग्रता से देखना। त्राटक दो प्रकार के होते हैं जत्रु त्राटक व दूसरा ज्योति त्राटक। संस्कृत में जत्रु का मतलब है कंधे - इस क्रिया में कंधों की सीध में आँखों को बिना हिले डुले ऊपर-नीचे व दाएं-बाएं, पास में व दूरी पर तथा गोल-गोल घुमाकर अभ्यास करते हैं जिससे नेत्रों की मांसपेशियों में रक्त का संचार अधिक होता है व हमारी आंसुओं की ग्रन्थि साफ हो जाती है। ध्यान रहें – त्राटक से पूर्व आँखों का पूर्वाभ्यास आवश्यक हैं।

घेरण्ड संहिता में त्राटक कर्म विधि -

निमेषोन्मेषकं त्यक्त्वा सूक्ष्मलक्ष्यं निरीक्षयेत्। पतन्ति यावदश्रूणि त्राटकं प्रोच्यते बुधैः ॥1/54॥

भावार्थ - निमेषोन्मेष (पलक को खोलना-बन्द करना) छोड़कर एकटक से सूक्ष्म को देखना चाहिए, जब तक कि अश्रु नहीं गिरते हैं। इसे विद्वानजन त्राटक कहते हैं।

त्राटक प्रभाव - एवम्भ्यासयोगेन शाम्भवी जायते ध्रुवम्। नेत्ररोगा विनश्यन्ति दिव्यदृष्टिः प्रजायते ॥1/55॥

इस (त्राटक विधि के) अभ्यासयोग से निश्चित ही शाम्भवी मुद्रा की सिद्धि हो जाती है। नेत्र के सब रोग विनष्ट होते है तथा दृष्टि दिव्य हो जाती है।

योग शास्त्र में त्राटक के तीन प्रकार माने गये हैं – 1) बहिर्त्राटक, 2) अन्तर्त्राटक और 3) अधोत्राटक।

1) **बहिर्त्राटक –** इसमें हम किसी साकार रूप या मूर्त रूप पर अपनी दृष्टि लगाते हैं। अपनी स्वेच्छानुसार एक प्रतीक चुनकर जैसे सूर्य, चन्द्रमा, इष्टमूर्ति इत्यादि। उसी प्रतीक पर अपनी दृष्टि लगाकर एकटक देखते हुए हमारी चेतना उसके साथ एक हो जाएँ। इससे चित्त की वृत्ति को बदलकर उसे सरलता से अन्तर्मुखी किया जा सकता है। प्रारम्भ में मोमबत्ती अथवा दीपक की ज्योति से त्राटक का अभ्यास करना चाहिए।

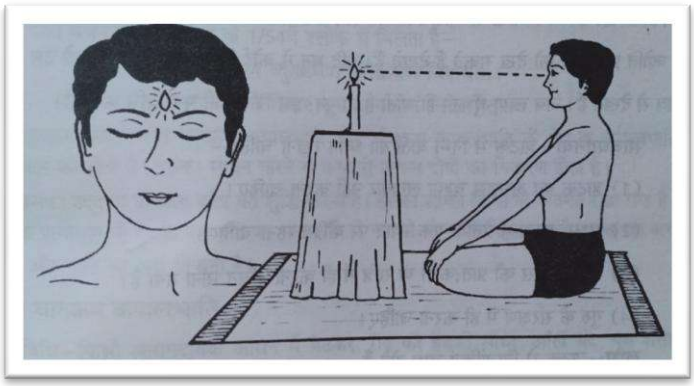

विधि – किसी भी ध्यानात्मक आसन में बैठकर एक-एक फुट की दूरी पर आँखों के सामने उसी तल में मोमबत्ती या दीपक को जला कर रखते हैं। तत्पश्चात् ध्यानपूर्वक ज्योति के मध्य जो काले रंग की लो है उसे देखते है। केवल लो ही देखते रहें। तीस-तीस सैकण्ड से दो-तीन मिनट तक पलक को झपकाना नहीं। जब आँखों से आँसू निकलने लगे तब आँख बन्द कर लेना। जब छाया धुँधुली हो जाती है तो पुन: इस क्रिया को पुनरावृति करते है।

लाभ – नेत्र दोषों का निवारण, शाम्भवी मुद्रा की सिद्धि तथा दिव्य दृष्टि की प्राप्ति होती है। इस अभ्यास से चित्त को स्थिर और तनाव मुक्त बनाया जा सकता है। अनिद्रा एवं स्नायुविक दुर्बलता में लाभ मिलता है तथा आत्मविश्वास बढता है। इसका प्रभाव हमारी मस्तिष्क तरंगों पर पड़ता है। एकाग्रता और सजकता के अभ्यास के रूप में मन को निर्विकार बनाने और अन्त:करण को शुद्ध करने के लिए यह उत्तम माना गया है।

सावधानियाँ – साधक त्राटक का अभ्यास चश्मा लगाकर न करें। सूक्ष्म त्राटक में प्रतीक चिह्न एक स्थान पर ही केन्द्रित रहें। इस अभ्यास को प्रात:काल या रात्रि में ही करना उचित माना गया है। नूतन साधक को प्रारम्भ में गुरू के सान्निध्य में ही अभ्यास करना चाहिए।

2) **अन्तर्त्राटक –** इसमें आँखों को बन्द कर मन की कल्पना शक्ति को जाग्रत कर चिदाकाश में एक दृश्य को ठहरा कर उस पर त्राटक करते हैं। इसमें हम किसी भी प्रतीक आन्तरिक या मानसिक को चुन सकते है। आरम्भ में बाह्य त्राटक के बाद ही अन्तरंग त्राटक का अभ्यास सम्भव है। अत: त्राटक से शक्ति को एक निश्चित मार्ग की ओर ले जाने के लिए यह प्रभावशाली सिद्ध होती है।

प्रभाव - इस त्राटक से एकाग्रता और ध्यान ध्यान की अवस्था प्राप्त होती है।

3) **अधोत्राटक –** इसका अभ्यास आँखों को आधा खुला और आधा बन्द करके किया जाता है। अधखुली आँख को प्रतिपदा दृष्टि कहा जाता है। नासिकाग्र मुद्रा तथा शांभवी मुद्रा को भी अधोत्राटक के अन्तर्गत माना जाता है।

19.3.6 कपालभाति कर्म

वातक्रमेण व्युत्क्रमेण शीत्क्रमेण विशेषतः।
भालभातिं त्रिधा कुर्यात्कफदोषं निवारयेत्। घेरण्ड सं. 1.56

भावार्थ - कपालभाति क्रिया के तीन प्रकार के भेद हैं वातक्रम, व्युत्क्रम और शीतक्रम कपालभाति क्रिया । इनका अभ्यास व साधन करने से कफ से उत्पन्न दोषों का निवारण होता है ।

योग में और प्राणायाम विज्ञान में जब कपालभाति क्रिया का अभ्यास करवाते हैं, तब उसमें रेचक पर ही जोर दिया जाता है लेकिन हठयोग में कहीं पर रेचक तथा कहीं पर पूरक पर व बन्ध तथा कुम्भक पर भी जोर दिया है और पतञ्जलि योग में पूरक सहज होता है तथा रेचक पर जोर रखते हुए कैवल्य कुम्भक की अवस्था को लाने पर जोर देते हैं।

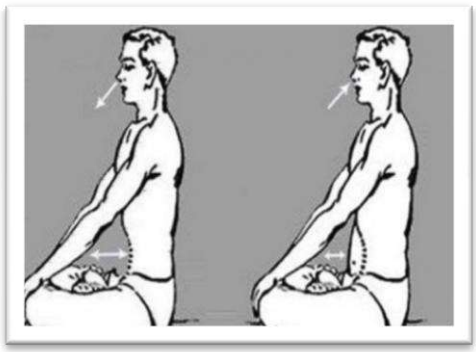

कपालभाति का अर्थ है कपाल यानि ललाट तथा भाति का शब्दार्थ है धौंकनी या तेज या चमकाना । धौंकनी को लोहार भट्टी में हवा देने के काम में लेता है। इस क्रिया के अभ्यास से मुखमण्डल पर आन्तरिक प्रभा (चमक) उत्पन्न होती है ।

भाति की क्रिया क्या है? जब हम श्वास लेते हैं तब वायु अन्दर ऊपर खिंचती है और जब श्वास छोड़ते हैं तब वायु बाहर निकलती है। अतः कपाल भाति क्रिया में रेचक करते समय वायु को धौंकनी की तरह तेज गति से बाहर फैंकते हैं और सामान्य गति से वायु को अन्दर लेते है इसमें श्वास छोड़ना झटके से होता है और श्वास लेना स्वत हो जाता हैं परन्तु चल कर श्वास लेना नही । श्वास प्रश्वास की इस क्रिया को हम 1 मिनिट में कम से कम 40 तथा अधिक से अधिक110-120 तक कर सकते हैं, इससे अधिक करने से हमें लाभ की अपेक्षा हानि ही होगी तथा 1 मिनिट में 40 से कम करने पर उसे कपाल भांति क्रिया नहीं माना जायेगा। वह मात्र दीर्घ श्वसन ही कहलायेगा ।

1) वातकर्म कपालभाति क्रिया

इडयपूरयेद् वायु रेचयेपिङ्गलयां पुनःपिङ्गला पूरयित्वा पुनश्चन्द्रेण रेचयेत् ॥
पूरकं रेचकं कृत्वा वेगेन न तु चालयेत्। एवमभ्यास योगेन कफ दोषं निवारयेत् ॥ घेरण्ड सं. 1.59.58

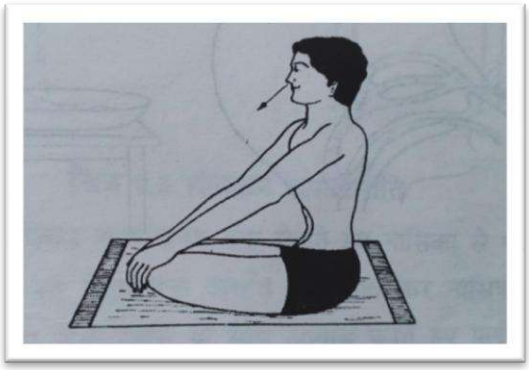

अर्थ- इडा नाड़ी या बायीं नासिका से श्वास अन्दर लेती है और पिंगला नाड़ी या दाहिनी नासिका से श्वास छोड़नी है। फिर पिंगला से श्वास अन्दर लेनी है और चन्द्र नाड़ी (बायीं नासिका) से उसे बाहर निकाल देना है। पूरक व रेचक की क्रियाओं की गति धीमी ही रखें तथा इसके अभ्यास से सर्दी-खासी से मुक्ति प्राप्त होती है ।

इस क्रिया में पूरा ध्यान श्वास प्रश्वास में फेफड़ों व पेट पर नहीं रखते हैं पूरा ध्यान ललाट पर रखते हैं इसीलिए इसका अभ्यास सावधानीपूर्वक करने की सलाह दी जाती है तथा इसे विशेषतया मानसिक व श्वास सम्बन्धी रोगों एवं कफ जन्य रोगों को दूर करने में भी किया जाता है।

2) व्युत्क्रम कपालभाति -

नासाभ्यां जलमाकृष्य पुनर्वक्त्रेण रेचयेत्। पायं पायं व्युत्क्रमेण श्लेष्मदोषं निवारयेत् ॥

अर्थ- इसमें नासिका के दोनों छिद्रों के द्वारा जल अन्दर खीचें और मुख से निकाल दें तथा मुख से जल खींच कर नासिका से निकाल दें, यह व्युत्क्रम कपालभाति कफ-जनित रोगों का निवारण करती है।

इस क्रिया से केवल नासिका छिद्रों का ही नहीं बल्कि गले और मुँह का भी शोधन-शुद्धीकरण होता है। इस क्रिया में जब पानी नाक से मुंह में आने के लिए भीतर प्रवेश करता है तो कुछ ऐसी नाड़ियों को स्पर्श करता है जिनका सम्पर्क कभी, जल, वायु और जीभ से नहीं होता हैं इससे वे नाड़िया भी अधिक सक्रिय होंगी, इसका अभ्यास करते समय साधक ऐसा अनुभव करता है। जब कभी हम भोजन करते समय यदि छींक आ जाए या खांसी व ठस्का लग जाए और अन्न का कण नाक में घुस जाए तो जो विचित्र सी अनुभूति होती है ठीक वैसी ही संवेदना इसके अभ्यास से होती है परन्तु इन सभी का अभ्यास निर्देशन में ही करें।

3) शीतक्रम कपालभाति

शीत्कृत्य पीत्वा वक्त्रेण नासानालैर्विसर्जयेत, एवमभ्यासयोगेन कामदेव समो भवेत्

न जायते वार्द्धक्यं च जरा नैव प्रजायते, भवेत्स्वच्छन्द देहश्च कफ दोषान्निवारयेत्। घरेण्ड सं. 1.60-61

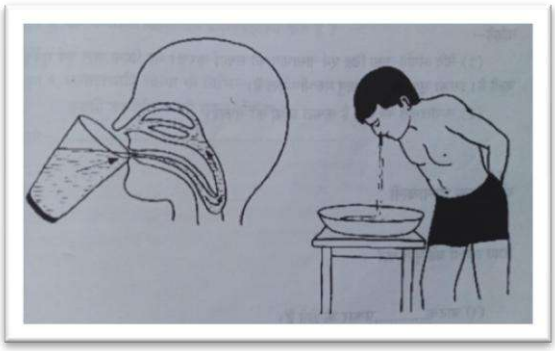

अर्थ- शीत्कार अर्थात् शीतली प्राणायाम् करते हुए मुंह के द्वारा जल ग्रहण कर नासिका के द्वारा निकालना, यह क्रिया शीतक्रम कपालभाति क्रिया कहलाती है। इसके अभ्यास से साधक का शरीर कामदेव के समान सुन्दर बन जाता है तथा वार्धक्य यानि बुढ़ापा नहीं आता, शरीर में आंतरिक स्वच्छता बढ़ती है तथा कफदोष दूर होते है।

इस अभ्यास में शीतली प्राणायाम की तरह जीभ को गोल करना, जिससे पानी सहजता से अन्दर आ जाए, धीरे-धीरे जल को अन्दर खींचना और मुंह में रोककर उसे थोड़ा-थोड़ा करके 1-1 बार में रुकते हुए नाक से निकालना, इससे बिन्दु चक्र की जागृति होती है तथा मस्तिष्क की कार्य क्षमताओं में वृद्धि हो मानसिक व तनाव ग्रसित रोगों में भी लाभ मिलता है।

शास्त्रों में कपालभाति अर्थात् कपाल शुद्धिकरण की यह तीन पद्धतियां बताई गई हैं जिसमें व्युत्क्रम और शीतक्रम कपालभाति क्रिया साधारण जनसामान्य को नहीं करनी चाहिए। इसका अभ्यास रोगों की अवस्था में या गुरु के निर्देशन में ही करना चाहिए। वातक्रम कपालभाति क्रिया के रूप को आधुनिक परिवेश में हमने थोड़ा परिवर्तित कर दिया है।

लाभ : - इससे सर्दी-खाँशी से मुक्ति प्राप्त होती है। शरीर की स्थूलता आदि दोष, कफरोग एवं विबन्ध आदि उदर रोग पूर्णत: नष्ट हो जाते हैं। शरीर कामदेव के समान सुन्दर हो जाता है। शरीर की थकान को समाप्त कर सदा युवा बनाकर रखता हैं। यह फेफड़ों को शुद्ध कर उसकी क्षमता बढ़ाता है। अधिकाधिक ऑक्सीजन अंदर जाती है तथा कार्बनडाइ आक्साइड बाहर निकलती है। श्वसन रोग, दमा, क्षय रोग आदि रोगों में इसका अभ्यास लाभदायक सिद्ध होता है। यह मस्तिष्क के अग्र भाग को शुद्ध करने की एक उत्तम विधि है। यह ध्यान के लिए उत्तम पृष्ठभूमि तैयार करता है। पाचन क्रिया मजभूत होती हैं।

19.4 **षट्कर्मों की महत्ता** - हठयोग में षट्कर्म से आशय छः शोधन क्रियाओं वस्ति, नेति, नौलि, त्राटक एवं कपालभाँति से है। जो शरीर से विजातीय द्रव्यों को बाहर निकालकर पंचमहाभूत (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश) तथा त्रिदोष (वात, पित्त, कफ) को संतुलित अर्थात् आवश्यक अनुपात में बनाये रखती है। प्रत्येक शोधन क्रिया शरीर के एक विशिष्ट संस्थान पर अपना प्रभाव डालती है और उसकी कार्यक्षमता को बढ़ाती है। जैसे –

धौतिक्रिया- धौति क्रिया पाचन संस्थान को शुद्ध करती है। घेरण्ड संहिता में धौति के अनेक प्रकार बताये गये है। श्वासरोग, कफरोग, रक्तविकार, एकर्जी, मोटापा, कब्ज, अग्निमांध, चर्मरोग अर्थात् पेट की खराबी से उत्पन्न होने वाले रोगों में यह क्रिया विशेष रूप से उपयोगी है।

वस्ति क्रिया - वस्ति क्रिया से मलाशय एवं बड़ी आंत की सफाई होती है। इसके अभ्यास से प्लीहा, कब्जरोग, वातरोग इत्यादि विकारों को दूर किया जाता है। नेति क्रिया- नेति क्रिया एक ई० एन० टी० डॉक्टर की भूमिका का निर्वाह करती है। अर्थात् इसका अभ्यास नाक, कान एवं गले की सफाई के लिए किया जाता है। साइनोसाइटिस, माइग्रेन, सिरदर्द, आँखों में जलन, दृष्टि कमजोर होना इत्यादि समस्याओं को दूर करने में यह क्रिया विशेष रूप से लाभकारी है।

नौलि क्रिया- 'नौलि' को 'लौलिकी' के नाम से भी जाना जाता है। उदरस्थ अंगों की अभ्यास मालिश तथा बल प्रदान करने के लिए इसका अभ्यास किया जाता है। पाचन एव प्रजनन संस्थान की समस्याओं के निराकरण में यह क्रिया मुख्य रूप से उपयोगी है।

त्राटक- आँख एवं तंत्रिका तंत्र (मस्तिष्किीय संस्थान) से संबंधित विकारों को दूर करने के लिए त्राटक का अभ्यास किया जाता है। इसका निरन्तर अभ्यास करने पर एकाग्रता एवं स्मरण शक्ति में वृद्धि होती है।

कपाल भाँति- फेफड़ों को बल प्रदान करने वाली अंतिम शोधन क्रिया कपालभाँति है। तंत्रिका तंत्र सम्बद्ध रोग भी इससे दूर होते है। यह कफरोग, चर्मरोग को दूर करती है, वायुनली (श्वॉसनली) की सफाई करती है तथा मधुमेह में भी इसका अभ्यास लाभकारी है।

इस प्रकार षट्कर्मों के नियमित अभ्यास से विभिन्न प्रकार के रोगों से दूर रहा जा सकता है।

बोधप्रश्न

१) त्रिदोष के नाम बताइए ?
२) त्रिदोषों में असन्तुलन होने पर क्या उत्पन्न होता है ?
३) घेरण्ड संहिता में शुद्धिकरण की कितनी क्रियाएं बताई गई हैं ?
४) धौति कर्म जिसका अर्थ .....होता है ।
५) घेरण्ड संहिता अनुसार धौति कितने प्रकार की होती है ?
६) घेरण्ड संहिता में हृद धौति के कितने भेद हैं ?
७) खाली पेट वमन करने को .....कहते है ?
८) भोजन के बाद वमन करने की क्रिया को .....क्रिया कहते है ।
९) घेरण्ड संहिता अनुसार बस्ति कितने प्रकार की होती है ?
१०) लौलिकी कर्म का यौगिक नाम .....है ।
११) नौलि क्रिया मुख्यतया कितने प्रकार की है ?
१२) त्राटक शब्द का शाब्दिक अर्थ है ?

१३) जत्रु शब्द का क्या अर्थ है ?

१४) त्राटक कितने प्रकार का होता है ?

१५) कपालभाति क्रिया के कितने भेद हैं ?

१६) भाति शब्द का अर्थ .....है।

१७) इडा नाडी या चन्द्र नाडी .....नासिका को कहते है।

१८) आँखों से सम्बन्धित विकारों को दूर करने के लिए कौनसी क्रिया की जाती है ?

१९) फेफड़ों को बल प्रदान करने वाली शोधन क्रिया ..... है ?

19.5 ग्रन्थ का मूलपाठ

धौतिर्वस्ति स्तथानेति लौलिकि त्राटकं तथा।
कपालभातिश्चैतानि षट्कर्माणि समाचरेत् ॥ घेरण्ड सं. १.१२

अन्तर्धौतिर्दन्तधौतिर्हृद्धौतिर्मूलशोधनम् ।
धौतिं चतुर्विधां कृत्वा घटं कुर्वन्तु निर्मलम् ॥1/13॥

हृद्धौतिं त्रिविधां कुर्याद्दण्डवमनवाससा ॥1/36॥

आकण्ठं पूरयेद्वारि वक्त्रेण चपिबेच्छनैः। चालयेदुदरेणैव चोदरादूचयेदधः ॥
वारिसारं परं गोप्यं देनिर्मलकारकम्। साधयेत्तत्प्रयत्नेन देवदेह प्रपद्यते॥ घेरण्ड सं. 1/17-18

जलबस्ति: शुष्कबस्तिर्बस्ति: स्याद्विधा स्मृता । जलबस्तिं जले कुर्याच्छुष्कबस्तिं सदा क्षितौ ॥1/46॥

नाभिमग्नजले पायुं न्यस्तवानुत्कटासनम् । आकुञ्चनं प्रसारञ्च जलबस्तिं समाचरेत् ॥1/47॥

प्रमेहञ्च उदावर्त्तं क्रूरवायुं निवारयेत् । भवेत्स्वच्छन्ददेहश्च कामदेवसमो भवेत् ॥1/48॥

बस्तिं पश्चिमोत्तानेन चालयित्वा शनैरध: । अश्विनीमुद्रया पायुमाकुञ्चयेत् प्रसारयेत् ॥1/49॥

एवमभ्यासयोगेन कोष्ठदोषो न विद्यते । विवर्द्धयेज्जठराग्निमामवातं विनाशयेत् ॥1/50॥

वित्तस्तिमानं सूक्ष्मसूत्रं नासानाले प्रवेशयेत् । मुखान्निर्गमयेत्पश्चात् प्रोच्यते नेतिकर्मकम् ॥1/51॥

साधनान्नेतियोगस्य खेचरीसिद्धिमाप्नुयात् । कफदोषा विनश्यन्ति दिव्यदृष्टि: प्रजायते ॥1/52॥

'अमन्दवेगेतुन्दं च भ्रामयेदुभपार्श्वयो: । सर्वरोगान्निहन्तीह देहानलविवर्द्धनम्' ॥1/53॥

निमेषोन्मेषकं त्यक्त्वा सूक्ष्मलक्ष्यं निरीक्षयेत् । पतन्ति यावदश्रूणि त्राटकं प्रोच्यते बुधै: ॥1/54॥

एवम्भ्यासयोगेन शाम्भवी जायते ध्रुवम् । नेत्ररोगा विनश्यन्ति दिव्यदृष्टि: प्रजायते ॥1/55॥

वातक्रमेण व्युत्क्रमेण शीत्क्रमेण विशेषतः । भालभातिं त्रिधा कुर्यात्कफदोषं निवारयेत्। घेरण्ड सं. 1.56
इडयपूरयेद् वायु रेचयेपिङ्गलयां पुनःपिङ्गला पूरयित्वा पुनश्चन्द्रेण रेचयेत् ॥
पूरकं रेचकं कृत्वा वेगेन न तु चालयेत्। एवमभ्यास योगेन कफ दोषं निवारयेत् ॥ घेरण्ड सं. 1.59.58
नासाभ्यां जलमाकृष्य पुनर्वक्त्रेण रेचयेत्। पायं पायं व्युत्क्रमेण श्लेष्मदोषं निवारयेत् ॥
शीत्कृत्य पीत्वा वक्त्रेण नासानालैर्विसर्जयेत, एवमभ्यासयोगेन कामदेव समो भवेत्

न जायते वार्द्धक्यं च जरा नैव प्रजायते, भवेत्स्वच्छन्द देहश्च कफ दोषान्निवारयेत्। घरेण्ड सं. 1.60-61

19.6 सारांश

उपरोक्त पाठ के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि हठयोग के ग्रन्थों धौति, वस्ति, नेति, नौलि, त्राटक एवं कपालभाति नामक छह कियाओं वर्णन किया गया है जिन्हें सम्मिलित रुप से षटकर्म की संज्ञा दी गयी है। शरीर में वात-पित्त-कफ दोषों की विषमता को दूर करने के लिये ये षट्कर्म अत्यन्त लाभकारी होते हैं। इन क्रियाओं के अभ्यास से शरीर की स्थूलता दूर होती है एवं शरीर लघुता (हल्कापन) को प्राप्त होता है। इन षट्कर्मों को घेरण्ड संहिता एवं हठप्रदीपिका नामक ग्रन्थों में विस्तारपूर्वक व्याख्या करके समझाया गया है। प्रथम कर्म के रुप में धौतिकर्म का वर्णन किया गया है, यह कर्म वायु, जल एवं वस्त्र द्वारा उदर प्रदेश का शोधन करता है। द्वितीय कर्म के रुप में वस्ति कर्म बड़ी आंत को स्वच्छ बनाता है। षट्कर्म की तीसरी किया के रुप में नेति कर्म का उल्लेख किया गया है। इस क्रिया का अभ्यास शीर्ष प्रदेश की सफाई करता है। षट्कर्म की चौथी किया के रूप में वर्णित नौलि कर्म जठराग्नि को प्रदीप्त करता है। त्राटक कर्म षटकर्म की पांचवी किया है जिसका अभ्यास मानसिक एकाग्रता उत्पन्न करता है तथा षट्कर्म की छटी क्रिया के रुप में कपालभाति कर्म का वर्णन किया गया है, यह कर्म वायु एवं जल के द्वारा शरीर शोधन का कार्य करता है।

षट्कर्म न केवल आन्तरिक शोधन करता है बल्कि यह मानसिक रोगों को भी दूर करने बहुत उपयोगी हैं । इस प्रकार षट्कर्मों के नियमित अभ्यास से विभिन्न प्रकार के रोगों से दूर रहा जा सकता है।

19.7 शब्दावली

1.	षट्कर्म	:	आन्तरिक शोधन की छ: क्रियायें ।
2.	धौति	:	धोना या शुद्ध करना ।
3.	त्रिदोष	:	आयुर्वेदानुसार त्रिदोष – वात, पित्त एवं कफ ।
4.	कपालभाति	:	कपाल प्रदेश या ललाट का शुद्ध होना या प्रकाशित होना ।
5.	प्रदीप्त	:	बढाना या वृद्धि करना ।
6.	भंवर	:	नदी की गोल लहरें ।
7.	व्युत्कर्म	:	नाक से जल पीकर मुख से निकालना ।
8.	शीतकर्म	:	मुख से जल पीकर नाक से निकालना ।
9.	नौलि	:	उदरस्थ माँसपेशियों का घुमाना ।
10.	त्राटक	:	स्थिर दृष्टि से किसी एक केन्द्र को देखना ।

19.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. सूरी स्वात्माराम (2001), हठप्रदीपिका। कैवतयधाम श्रीमन्माधव योगमंदिर समिति, लोनावला - 410403 (पुणे)
2. सरस्वती निरंजनानंद (1997) घेरण्ड संहिता । योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत ।

19.9 सहायक ग्रन्थ

1. सरस्वती विज्ञानानंद (2007). योग विज्ञान योग निकेतन ट्रस्ट, मुनि की रेती, ऋषिकेश- 249192
2. सिंह राम हर्ष (2007) स्वस्थवृत्त-विज्ञान | चौखम्बा सांस्कृतिक प्रतिष्ठान ।
3.ज्योतिर्मयानंद (1999) व्यावहारिक योग। इंटरनेशनल योग सोसाइटी, लालबाग लोनी, गाजियाबाद, उत्तरप्रदेश

4. वशिष्ठ संहिता (1984) कैवल्यधान श्रीमन्माधवयोग मंदिर समिति, लोनावाला (पन्त) महाराष्ट्र |

19.10 बोध प्रश्नोत्तर

१) वात, पित्त, कफ।

२) व्याधि।

३) षट्।

४) धोना / धुलाई।

५) चार

६) तीन।

७) कुंजल।

८) व्याघ्र।

९) दो।

१०) नौलि।

११) चार।

१२) त्रीक्षण या एकाग्रता से देखना।

१३) कन्धा।

१४) तीन।

१५) तीन।

१६) धौंकनी या तेज अथवा चमकना।

१७) बायीं।

१८) त्राटक।

१९) कपालभाति।

19.11 अभ्यास प्रश्न

प्रश्न 1 षट्कर्म क्या हैं ?

प्रश्न 2 धौति कर्म का अर्थ एवं विधि लिखिए।

प्रश्न 3 वमन धौति के प्रमुख लाभ क्या हैं ?

प्रश्न 4 नेति क्रिया की विधि, लाभ एवं सावधानियाँ लिखों।

प्रश्न 5 कपालभाति के प्रकार, विधि एवं लाभ स्पष्ट करें।

प्रश्न 6 त्राटक क्रिया का अर्थ एवं विधि लिखिए।

प्रश्न 7 बहिर्त्राटक क्या हैं ? वर्णन करें।

विंशति पाठ

यौगिक सूक्ष्म एवं स्थूल व्यायाम परिचय

पाठ संरचना

20.1 प्रस्तावना

20.2 उद्देश्य

20.3 यौगिक सूक्ष्म व्यायाम

- 20.3.1 ग्रीवा शक्ति विकासक क्रिया - 1
- 20.3.2 ग्रीवा शक्ति विकासक क्रिया - 2
- 20.3.3 ग्रीवा शक्ति विकासक क्रिया - 3
- 20.3.4 भुजबलि शक्ति विकासक क्रिया
- 20.3.5 पूर्ण भुजा शक्ति विकासक क्रिया
- 20.3.6 कटि शक्ति विकासक क्रिया - 1
- 20.3.7 कटि शक्ति विकासक क्रिया - 2
- 20.3.8 कटि शक्ति विकासक क्रिया - 3
- 20.3.9 कटि शक्ति विकासक क्रिया - 4
- 20.3.10 कटि शक्ति विकासक क्रिया - 5
- 20.3.11 जंघा शक्ति विकासक क्रिया - 1
- 20.3.12 जंघा शक्ति विकासक क्रिया - 2
- 20.3.13 जानु शक्ति विकासक क्रिया
- 20.3.14 पादमूल शक्ति विकासक क्रिया
- 20.3.15 गुल्फ, पादतल, पादपृष्ट शक्ति विकासक क्रिया

बोधप्रश्न

20.4 यौगिक स्थूल व्यायाम

- 20.4.1 हृदय गति (इंजन दौड़)
- 20.4.2 सर्वांग पुष्टि

बोधप्रश्न

20.5 सारांश

20.6 शब्दावली

20.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

20.8 सहायक ग्रन्थ

20.9 बोध प्रश्नोत्तर

20.10 अभ्यास प्रश्न

20.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत पाठ में यौगिक सूक्ष्म एवं स्थूल व्यायाम का परिचय संक्षेप में अध्ययन करेंगे । यौगिक विधि से सूक्ष्म शरीर पर नियन्त्रण करना ही यौगिक सूक्ष्म व्यायाम है, इससे शरीर के भीतर की प्रत्येक नस नाड़ियां तन्तु, शिरा, धमनी, मांस पेशियों और हड्डियों में विचरने वाली सूक्ष्म शक्तियों पर नियन्त्रण किया जा सकता है। मनुष्य के लिए यौगिक सूक्ष्म व्यायाम का महत्त्व इसलिए है कि शरीर में ग्लूकोज, मांस मेदादि पदार्थ आवश्यकता से अधिक इकट्ठे हो जायें तो यौगिक सूक्ष्म व्यायाम के अभ्यास से सूक्ष्म शक्तियों के रूप में परिणत होकर शीघ्र ही हड्डियों को परिपुष्ट करने लगते हैं और अन्य शक्तियों का भी विकास होने लगता है। यौगिक सूक्ष्म व्यायाम सिर से लेकर पैर तक के समस्त अंग प्रत्यंग की भिन्न- भिन्न अड़तालीस क्रियायें हैं। शरीर का सबसे सूक्ष्म भाग सिर है और स्थूल भाग पैर। ये क्रियायें शिरो भाग से अतिसूक्ष्म रूप में प्रारम्भ होती हैं और क्रमश: स्थूल रूप धारण करती हुई पैर तक चली जाती हैं।

सूक्ष्म एवं स्थूल व्यायाम तो मनुष्य के लिए रामबाण औषध तुल्य है। यौगिक व्यायाम से शरीर के प्रति बाह्य व आंतरिक अवयव का भली-भांति व्यायाम तथा उसकी मालिश होने से यह अवयव पुनः द्विगुणित शक्ति सम्पन्न होकर अपना कार्य सुचारू रूप से करता है ।

20.2 उद्देश्य – प्रस्तुत पाठ में अध्ययन करने के बाद आप जान सकेंगे -

- यौगिक सूक्ष्म एवं स्थूल व्यायाम परिचय संक्षेप में परिचय ।
- विविध यौगिक सूक्ष्म एवं स्थूल व्यायाम की विधि एवं लाभ जानना ।
- यौगिक व्यायाम का शरीर पर शारीरिक एवं मानसिक प्रभाव ।

20.3 यौगिक सूक्ष्म व्यायाम

एक बात हमें अच्छे से समझनी है कि कोई भी काम एकदम से नहीं होता। इसके लिए अभ्यास की ज़रूरत पड़ती है। चाहे वह योगासन हो या कोई भी कसरत । सुबह शरीर कड़ा (जकड़ा) रहता है, इस कारण आसनों का अभ्यास आसानी से नहीं हो पाता। इसके लिए हमें शरीर ढीला (लचीला) करने एवं योगासन की तैयारी के लिए कुछ सूक्ष्म व्यायाम कर लेने चाहिए जिससे आसनों के अभ्यास में सरलता एवं किसी प्रकार के दुष्प्रभाव न हों। वैसे योगाचार्यों के मतानुसार सूक्ष्म व्यायाम सूक्ष्मप्राण का नियमित विकास करता है एवं नामानुसार शरीर को संतुलित भी करता है। चूँकि लगभग ये सभी आसन गतिमय वायुनिरोधक (पवनमुक्तासन)

एवं शक्तिबंध समूह के अंतर्गत आते हैं अतः हमने इनकी अलग से परिभाषा न देकर सूक्ष्म व्यायाम में ही सम्मिलित किया है।

20.3.1 ग्रीवा शक्ति विकासक क्रिया – 1

विधि : भाग-क: समावस्था में खड़े रहें। श्वास खींचते हुए गर्दन को बाएँ कंधे की सीध में ले जाएँ, बिना रूके गर्दन को दाईं ओर लाएँ, श्वास छोड़ें अब गर्दन दाएँ कंधे की सीध में रखें। क्रिया को इसी तरह दस बार दोहराएँ।

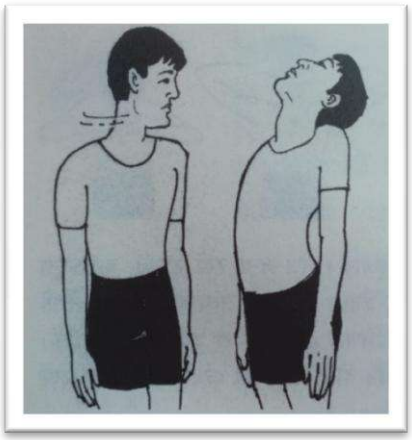

भाग- **ख :** श्वास लेकर गर्दन को नीचे से ऊपर की ओर ले जाएं। ऊपर की ओर देखें, श्वास छोड़कर गर्दन को नीचे की ओर वापस लाएं।

लाभ: ग्रीवा के समस्त दोष दूर होते हैं। गर्दन का मोटापा कम होता है टान्सिल्स, कण्ठमाला आदि रोग ठीक होते हैं। स्वर मधुर व सुरीला बनता है। हकलाहट और तुतलापन जैसे विकार ठीक होते हैं। गर्दन पुष्ट और मजबूत बनती है।

20.3.2 ग्रीवा शक्ति विकासक क्रिया – 2

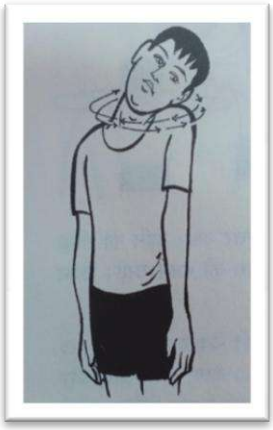

विधि : समावस्था में खड़े रहें । ठुड्डी कण्ठकूप में लगायें। आँखें बन्द न करें। श्वास खींचकर रोकें, सिर को बाएँ कन्धे की ओर से चक्राकर घुमाते हुए सामने लाएँ, श्वास छोड़ें, पुनः श्वास भरें। चक्राकर में दाईंओर से बाईं ओर सिर वापस लायें। पूर्ण चक्र होने पर श्वास छोड़ें। प्रयास करें कि दोनों समय गर्दन को इतना झुकाएँ कि कान, कंधे से स्पर्श करने लगे। कंधो को उठाएँ। क्रिया को तीन बार करें।

लाभ : ग्रीवा के समस्त दोष दूर होते हैं। गर्दन का मोटापा कम होता है टान्सिल्स, कण्ठमाला आदि रोग ठीक होते हैं। स्वर मधुर व सुरीला बनता है। हकलाहट और तुतलापन जैसे विकार ठीक होते हैं। गर्दन पुष्ट और मजबूत बनती है।

20.3.3 ग्रीवा शक्ति विकासक क्रिया – 3

विधि : समावस्था में खड़े रहें। श्वास छोड़कर पेट पिचकायें, फिर श्वास खींचकर पेट फुलाते हुए गले की नसे तानें । क्रिया को 10 बार करें ।

लाभ : ग्रीवा के समस्त दोष दूर होते हैं। गर्दन का मोटापा कम होता है। टान्सिल्स, कण्ठमाला आदि रोग ठीक होते हैं। स्वर मधुर व सुरीला बनता है। हकलाहट और तुतलापन जैसे विकार ठीक होते हैं। गर्दन पुष्ट और मजबूत बनती है।

20.3.4 भुजबलि शक्ति विकासक क्रिया

विधि : समावस्था में खड़े रहें।

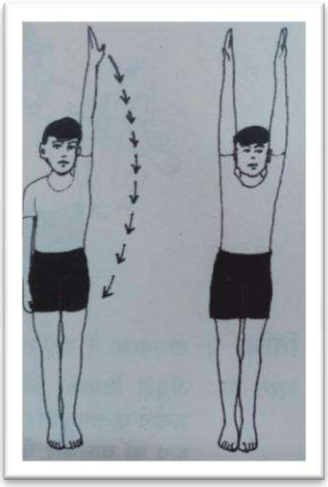

भाग-क: श्वास लेते हुए बाएँ हाथ को बाजू से कन्धे के ऊपर ले जाएँ, भुजबंध को कान से स्पर्श कराएँ। हथेली बाहर की ओर रखें, श्वास छोड़ते हुए पूर्व स्थिति में लाएँ, क्रिया 10 बार करें।

भाग-ख : श्वास खींचकर दाएँ हाथ को बाजू से कन्धे के ऊपर ले जायें, भुजबंध कान से स्पर्श करें, हथेली का तल भाग बाहर की ओर रखें। श्वास छोड़कर पुनः पूर्व स्थिति में आ जाएं। क्रिया 10 बार करें ।

भाग-ग: श्वास लेते हुए दोनों हाथ को ऊपर की ओर ले जाएं। भुजबंध कान से स्पर्श करें। श्वास छोड़ते हुए पुनः पूर्व की स्थिति में आएँ । क्रिया 10 बार करें।

लाभ: भुजाएँ पुष्ट व बलशाली बनती हैं। कोहनी से कलाई का हिस्सा संतुलित होकर उसके दर्द मिटते हैं। भुजबल्लियाँ शक्तिशाली बनकर कार्य करने की क्षमता बढ़ाती हैं।

20.3.5 पूर्ण भुजा शक्ति विकासक क्रिया

विधि :समावस्था में खड़े रहें।

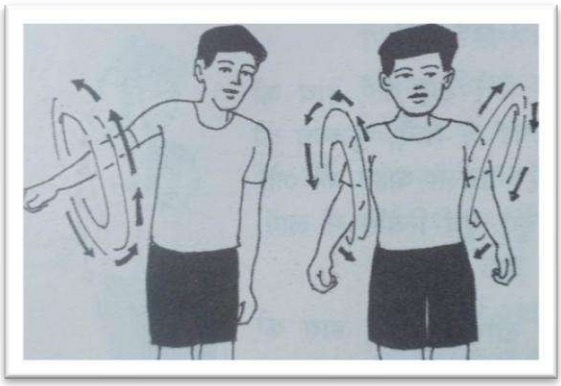

भाग-क: अंगूठा छिपाकर बाईं मुट्ठी बन्द करें, हाथ को कन्धे के सामनेज़मीन के समानांतर फैलायें, हाथ को कड़ा करें श्वास खींचकर रोकें, हाथ को चक्राकार में दस बार ऊपर से नीचे घुमाएँ, कोहनी से हाथको मोड़कर कमर से सटाएँ, श्वास छोड़ते हुए हाथ को सामने फेंकें।

भाग-ख : भाग क के समान बाएँ हाथ को नीचे से ऊपर दस बार घुमाएँ, कोहनी से हाथ को मोड़कर कमर से सटाएँ,

श्वास छोड़ते हुए हाथको समाने फेंके।

भाग-ग : अँगूठा छिपाकर दाएँ हाथ की मुट्ठी बन्द करें, कन्धे के सामने हाथको ज़मीन से समानांतर फैलाएँ, श्वास खींचकर रोकें, दाएँ हाथ कोचक्राकार दस बार ऊपर से नीचे घुमाएँ, कोहनी से हाथ मोड़करकमर से सटाएँ, श्वासछोड़ते हुए हाथ सामने फेंकें। अब क्रियासमाप्त करें।

भाग-घ : भाग ग के समान विधि को दोनों हाथ नीचे से ऊपर घुमाते हुए दसबार करें।

भाग-च : अंगूठा छिपाकर मुट्ठी बन्द करें, दोनों हाथ को कन्धों के सामने ज़मीन से समानान्तर फैलाएँ, विधि को दस बार भाग क व ग के समान ऊपर से नीचे घुमाकर पूरा करें।

लाभ: शरीर के वायु विकार ठीक होते हैं। हाथों की नस नाड़ियाँ व जोड़ों का दर्द मिटता है।हाथों की सौंदर्य वृद्धि होती है। भुजायें शक्तिशाली व पुष्ट बनती हैं। कंधे मज़बूत होते हैं।

20.3.6 कटि शक्ति विकासक क्रिया – 1

विधि : भाग-क : समावस्था में खड़े रहें। दोनों हाथों को पीछे ले जाएँ, दाहिने हाथ से बाईं कलाई को पकड़ें। अंगूठा छिपाकर बाईं मुट्ठी बंद करें, श्वास अंदर लेते हुए गर्दन, कमर को यथाशक्ति पीछे ले जाएँ। ऊपर देखते हुए पीछे झुकें। श्वास को छोड़कर सिर, गर्दन, कमर को सीधा करें एवं सामने की तरफ़ झुकते हुए सिर को घुटने तक लाने का प्रयास करें। इस क्रिया को तीन बार करें।

भाग-ख : बाएँ हाथ से दाएँ हाथ की कलाई पकड़ें और अंगूठा छिपाकर दाहिनी मुट्ठी बन्द करें। शेष क्रिया भाग-क के समान तीन बार करें।

20.3.7 कटि शक्ति विकासक क्रिया – 2

विधि : समावस्था में खड़े रहें। दोनों पैरों को यथाशक्ति फैलाएँ। अँगूठा पेट की तरफ़ रखते हुए हाथों को कमर पर स्थापित करें। श्वास अन्दर लेते हुए गर्दन व कमर को अधिक से अधिक पीछे झुकाएँ। ऊपर देखते हुए श्वास को छोड़कर सिर को अधिक से अधिक नीचे लाएँ। यह क्रिया तीन बार करें। तीसरी बार क्रिया करते समय दोनों हाथों को ज़मीन पर रखें

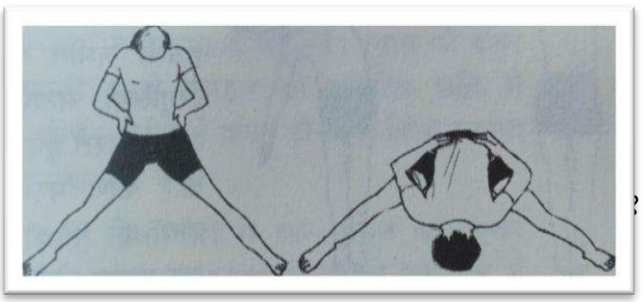

और सिर को ज़मीन पर टिकाने का प्रयास करें। सिर टिकाकर हाथों को कमर पर रखें और यथाशक्ति रुकें। तत्पश्चात् हाथ के सहारे उछलकर पूर्व स्थिति में आएँ ।

20.3.8 कटि शक्ति विकासक क्रिया – 3

विधि :दोनों पैरों में चार अंगुल काअन्तर रखते हुए खड़े हों। करतलभाग अन्दर रखते हुए जघा से सटाएँ। श्वास छोड़ते हुए गर्दन, कमर को अधिक से अधिक पीछे की ओर झुकाएँ। ऊपर देखें, श्वास को छोड़ कर सिर को शरीर का भार सँभालते हुए घुटने तक लाने का प्रयास करें। नेत्र खुले रखें, हाथों को पीठ की ओर तानें । इस क्रिया को जल्दी-जल्दी 10 बार करें।

20.3.9 कटि शक्ति विकासक क्रिया – 4

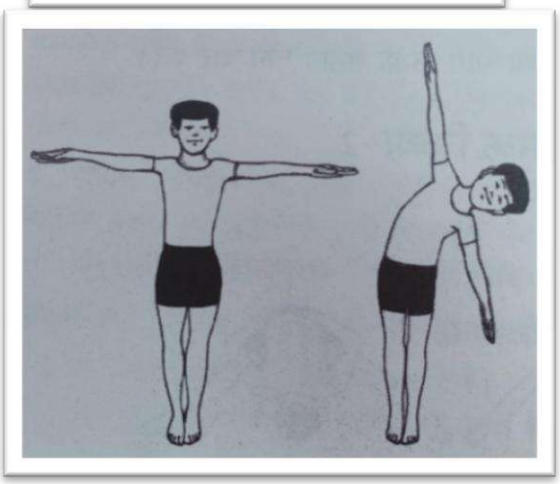

विधि : भाग-क : समावस्था में खड़े रहें। दोनों हाथ को कंधों के बाजू से ज़मीन के समानान्तर फैलाएँ । हथेली ज़मीन की ओर रखें। अँगुलियाँ सटाएँ, श्वास को अन्दर भरते हुए बाईं ओर 30° के कोण पर झुकाएँ। दाएँ हाथ को 150° ऊपर तानें । इस प्रकार दोनों हाथों को एक रेखा में रखें, साथ-साथ गर्दन, कमर को भी झुकाएँ। श्वास को बाहर निकालते हुए पूर्व स्थिति में आ जाएँ। पुनः श्वास खींचते हुए गर्दन व कमर के साथ दाएँ हाथ को 30° के कोण पर नीचे की ओर झुकाएँ। बाएँ हाथ को 150° पर ऊपर तानें। दोनों हाथ एक सी रेखा में रखें, श्वास छोड़कर पूर्व स्थिति में आ जाएँ। यह क्रिया 10 बार करें ।

भाग-ख: दोनों पैरों में एक हाथ का अन्तर रखकर सीधे खड़े हो जाएँ। भाग के समान क्रिया 10 बार पूरी करें।

20.3.10 कटि शक्ति विकासक क्रिया – 5

विधि : दोनों पैर में 1 फ़ीट का अंतर रखकर खड़े हो जाएँ। श्वास लेते हुए सिर्फ़ कमर के ऊपरी भाग को हाथों के साथ अर्ध चंद्राकार घुमाएँ (दाहिनी तरफ़) । श्वास छोड़ते हुए मूलावस्था में आएँ । अब यही क्रिया बाईं तरफ़ करें। यह क्रिया 5-6 बार की जा सकती है।

लाभ :क्रिया क्रमांक-34 से 38 तक की क्रियाओं के अभ्यास से कमर सुन्दर, सुडौल और पतली होती है तथा पुष्ट बनती है। कमर के दर्द मिटते हैं। कमर लचीली बनकर नृत्य कलाकारों के लिए उपयोगी होती है। शरीर कान्तियुक्त और फुर्तीला बनता है। उम्र के प्रथम 20 वर्ष तक साधक की लम्बाई बढ़ती है।

20.3.11 जंघा शक्ति विकासक क्रिया – 1

विधि : भाग-क : समावस्था में खड़े रहें। श्वास को अन्दर खींचते हुए कूदकर दोनों पैरों को बाजू में फेकें। दोनों हाथों को कन्धे के बाजू से सिर के ऊपर ले जाएँ। श्वास छोड़कर दोनों पैरों को हाथों के साथ कूदकर पूर्व स्थिति में लाएँ। यह क्रिया 10 बार करें।

भाग-ख : श्वास को छोड़कर कूदते हुए दोनों पैरों को जंघा के बाजू में फेकें। दोनों हाथोंको कन्धों के बाजू से सिर के ऊपर ले जाएँ। हथेली बाहर की ओर रखें। श्वास को छोड़कर कूदते हुए हाथ और पैर को पूर्व स्थिति में ले आएँ। इस क्रिया को 10 बार करें।

20.3.12 जंघा शक्ति विकासक क्रिया – 2

विधि : भाग-क : समावस्था में खड़े रहें। दोनों हाथों को ज़मीन से समानान्तर कन्धों के सामने फैलाएँ। हथेलियाँ ज़मीन की ओर रखें। श्वास खींचकर (खींचते हुए) दोनों घुटने मिलाकर कुर्सी के समान बैठें। श्वास को छोड़कर पूर्व स्थिति मेंखड़े हो जाएँ। यह क्रिया तीन बार करें।

भाग-ख : दोनों हाथों को कंधों के बाजू में ज़मीन के समानान्तर फैलाएँ ।श्वास को खींचकर पंजों पर खड़े होतेहुए घुटने फैलाकर कुर्सीनुमा नीचे बैठें। श्वास छोड़कर पूर्व स्थिति में आ जाएँ।यह क्रिया तीन बार करें ।

लाभ : जंघाएँ शक्तिशाली, सुन्दर, सुडौल बनती हैं। घुटनों का दर्द मिटता है।

20.3.13 जानु शक्ति विकासक क्रिया

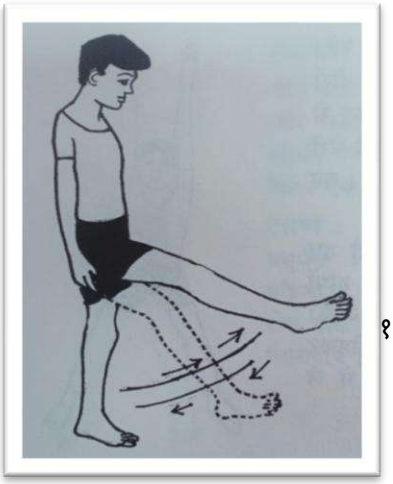

विधि : समावस्था में खड़े रहें। श्वास खींचते हुए बाएँ पैर की एड़ी को ऊपर उठाकर नितम्ब से स्पर्श करें। श्वास छोड़कर पैर को जैसे फ़ुटबॉल

में किक मारते हैं, वैसे सामने फेकें । इसी विधि को दाहिने पैर से भी करें। यह क्रिया 10 बार करें ।

लाभ : जोड़ों का दर्द मिटता है। गठिया की बीमारी ठीक होती है। कुण्डलिनी जागरण में सहायक हैं। खिलाड़ियों के लिए उपयुक्त है। घुटने सुन्दर सुडौल होते हैं।

20.3.14 पादमूल शक्ति विकासक क्रिया

विधि : भाग-क समावस्था में खड़े रहें। एड़ियाँ उठाकर पंजों पर खड़े हों। अपने स्थान पर 10-15 बार धीरे-धीरे उछलें। पंजों को ज़मीन पर टिकाकर रखें।

भाग-ख: श्वास को सामान्य रखते हुए अपने स्थान पर पंजो के बल पर ऊपर-नीचे 10-15 बार कूदें।

लाभ : को एडियों और पाँव के पँजों की अकड़न समाप्त होती हैं ।

20.3.15 गुल्फ, पादतल, पादपृष्ट शक्ति विकासक क्रिया

विधि : भाग-क : समावस्था में खड़े रहें। बाएँ पैर को ज़मीन से सामने की ओर लगभग 9" ऊपर उठाकर तानें। पंजे से 'शून्य' को बनाएँ और मिटाएँ श्वास को सामान्य रखते हुए इस क्रिया को तीन बार करें।

भाग-ख: बाएँ पैर को पीछे की ओर तानें। ज़मीन से लगभग 9" ऊपर उठाकर तानें। पंजे से 'शून्य' को बनाएँ और मिटाएँ। श्वास को सामान्य रखते हुए क्रिया को तीन बार करें।

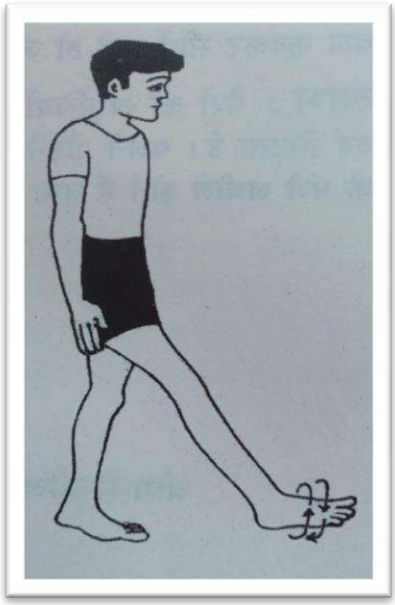

भाग-ग : भाग-क के समान दाएँ पंजे से तीन बार क्रिया को पूरा करें।

भाग-घ : दाएँ पैर को ज़मीन से लगभग 9" पीछे उठाकर तानें,भाग-ख के समान क्रिया तीन बार करें।

लाभ: पैर की अँगुलियों, पंजे, पैर का पृष्ठभाग और तलवों का दर्द मिटता है। पैर सुन्दर सुडौल बनते हैं। मोच कोदूरकरने के लिए उपयुक्त है। अधिक चलने या दौड़ने से आई थकावट दूर होती है।

बोधप्रश्न

१) ग्रीवा शक्तिविकासक की कितनी क्रियाए हैं ?

२) भुजबलिशक्ति विकासक में पाँव की स्थिति कैसी होती है ?

३) किस क्रिया के अभ्यास से भुजायें शक्तिशाली व पुष्ट बनती है ?

४) कटिशक्तिविकासक की कितनी क्रियाए हैं ?

५) जोड़ों के दर्द निवारण और कुण्डलिनी जागरण में सहायक क्रिया कौनसी है

20.4 यौगिक स्थूल व्यायाम

अब हम यहाँ यौगिक स्थूल व्यायाम के कुछ अभ्यास करेंगे । योग एक बहुत वृहद विषय है और यह अनादि काल से चला आ रहा है। उदाहरण के तौर पर हम यहाँ पर थोड़ी सी चर्चा करें कि जैसे आयुर्वेद में किसी भी एक औषधि की अपनी एक प्रकृति होती है, अपना एक गुण होता है और वही औषधि मौसम के अनुसार, गर्म या ठंडा या पीसकर लें तो वह अपना एक अलग प्रभाव दिखाती है। यदि उसमें दो-तीन प्रकार की औषधियाँ और मिला दी जाएँ, तो उसका असर और भी अधिक हो जाता है। इसी प्रकार योग से संबंधित कोई भी एक क्रिया यदि हम व्यवस्थित तरीक़े से करें, तो हमें उसका लाभ दोगुना मिलता है। यदि उसके साथ कुछ और क्रिया कर ली जाएँ (गुरु निर्देशानुसार करें), तो हम अपने शरीर को निरोगी तो बना ही लेंगे, साथ में अपने शरीर का कायाकल्प भी कर सकते हैं। पूरी दुनिया में आज करोड़ों लोग योग से लाभ उठाकर अपना जीवन सफल कर रहे हैं। सूक्ष्म व्यायाम से जहाँ सूक्ष्म अंगों का व्यायाम होता है, वही स्थूल व्यायामों की क्रियाएँ एक साथ शरीर को लाभान्वित करती हैं ।

20.4.1 हृदय गति (इंजन दौड़)

विधि : समावस्था में खड़े रहें। अँगूठा छिपाकर मुट्ठियाँ बन्द करें। कोहनियाँ कमर से सटाएँ। बाएँ हाथ को कोहिनी से मोड़ कर ज़मीन के समानान्तर कमर से सटाएँ और दाएँ हाथ को कोहनी से सीधा रखकर ज़मीन के समानान्तर समाने की ओर फैलाएँ । मुट्ठी का भाग एक-दूसरे के सामने रखें। श्वास को लेकर बाएँ पैर को घुटने तक 90° के कोण पर उठाएँ । दाएँ हाथ को सामने करें। श्वास को छोड़ें । तुरन्त श्वास लेकर दायाँ पैर घुटने से मोड़कर 90° के कोण तक उठाएँ। बाएँ हाथ को सामने करें। श्वास को छोड़कर दाहिना पैर और बाएँ हाथ पूर्व स्थिति में लाएँ । क्रिया को इस प्रकार 8-10 बार करने के पश्चात् श्वास प्रश्वास के साथ जल्दी-जल्दी अपने

स्थान पर दौड़ें। थकान आने पर क्रिया समाप्त करें।

लाभ: हाथ व पैरों का दर्द मिटता है व शरीर का मोटापा भी कम होता है। सीना जंघाएँ और पिंडलियाँ पुष्ट होती हैं तथा उनका दर्द मिटता है। दौड़ लगाने वाले साधकों के लिए विशेष लाभकारी है। शरीर फुर्तीला और शक्तिशाली बनता है।

20.4.2 सर्वांग पुष्टि

विधि : दोनों पैर को फैलाकर सीधे खड़े हो जाएँ। अँगूठा छुपाकर हाथों की मुट्ठियाँ बन्द करें। दोनों हाथों को नीचे झुकाकर बाएँ टखने के पास बायाँ हाथ नीचे और दायाँ हाथ कलाई के ऊपर स्थापित करें। श्वास को लेकर धीरे-धीरे दोनों हाथों से ऊपर की ओर बाएँ कन्धे के बाजू से सिर तक ले जाएँ और दाएँ टखने की ओर श्वास को छोड़ें। दाहिना हाथ नीचे और बायाँ हाथ ऊपर रखें। पुनः श्वास लेकर दोनों हाथों के नीचे से ऊपर दाएँ कन्धे तक लाते हुए सिर के ऊपर तक ले जाएँ। बाईं ओर मुड़ते हुए दोनों हाथों को बाएँ कन्धे से नीचे की ओर बाएँ टखने तक लाएँ । श्वास को छोड़ें, हाथ को बदल-बदलकर बायाँ नीचे और दाहिना ऊपर रखें। इस क्रिया को तीन बार करें।

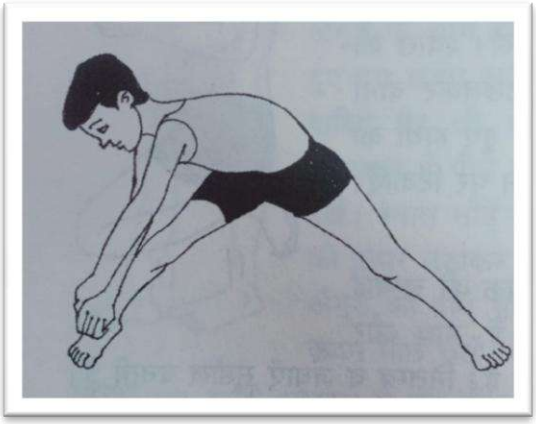

लाभ : समस्त अंग पुष्ट बनते हैं। शरीर लचीला बनता है। साधक काठिगनापन दूर होता है। फेफड़ों के रोग दूर होते हैं। कमर व पीठ का दर्द मिटताहै। पाचन क्रिया ठीक होती है।

बोधप्रश्न

६) हृदयगति क्रिया में हाथ की मुट्ठियाँ बन्द होती है या खुली ?

७) हृदयगति में पाँव को कितनी डिग्री तक मोड़ते हैं ?

८) सम्पूर्ण अंगों को पुष्ट करने वाली क्रिया कौनसी हैं ?

20.5 सारांश

प्रस्तुत पाठ में आपने जाना कि सूक्ष्म और स्थूल व्यायाम से हमारे शरीर के प्रत्येक अवयवों पर सूक्ष्मता से प्रभाव पड़ता हैं । इन यौगिक सूक्ष्म व्यायाम की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जब व्यक्ति संधिवात जैसे गम्भीर रोग से ग्रस्त हो जाता है तब भी यह क्रियाए की जा सकती है । इतना ही नही इनका आसनों से भी ज्यादा स्वास्थ्य पर साकारात्मक प्रभाव पड़ता है । अत: सभी विद्यार्थी इन क्रियाओं को विधिवत अध्ययन करेंगे और समाज को स्वस्थ बनाने में अपना सहयोग प्रदान करेंगे ।

20.6 शब्दावली

१) सूक्ष्म : बहुत छोटा अर्थात् प्रत्यंगों पर प्रभाव पड़ना।
२) स्थूल : मोटा, घना।
३) ग्रीवा : गर्दन।
४) कटि : कमर।
५) गुल्फ : टखना।
६) पादतल : पाँव का तलवा।
७) पादपृष्ठ : पाँव के पीछे का भाग।
८) सर्वांगपुष्टि : समस्त शरीर का पुष्ट होना।
९) जानु : घुटना।

20.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. यौगिक सूक्ष्म व्यायाम (प्रथम पुष्प), धीरेन्द्र ब्रह्मचारी। धीरेन्द्र योग प्रकाशन ए-50, फ्रेन्ड्स कोलोनी, नई दिल्ली

20.8 सहायक ग्रन्थ

1. सम्पूर्ण योग विद्या (2008), राजीव जैन 'त्रिलोक'। मंजुला पब्लिशिंग हाउस, भोपाल – 462003 (मध्यप्रदेश), भारत।

2. योग (2019), विवेकानन्द केन्द्र प्रकाशन ट्रस्ट, चैन्नै – 600005 (पश्चिम बंगाल), भारत।

3. योगदीपिका (2005), बी.के.एस. आयंगार। ओरियन्ट लोग्मैन प्राइवेट लिमिटेड, हैदराबाद – 500029 (आन्ध्रा प्रदेश), भारत।

20.9 बोध प्रश्नोत्तर

१) तीन।
२) समावस्था।
३) पूर्ण भुजाशक्ति विकासक।
४) पाँच।
५) जानु शक्ति विकासक।
६) बन्द।
७) 90 डिग्री।
८) सर्वांगपुष्टि।

20.10 अभ्यास प्रश्न

प्रश्न 1. यौगिक सूक्ष्म व्यायाम का संक्षिप्त में परिचय दीजिए।

प्रश्न 2. ग्रीवा शक्ति विकासक क्रिया का शारीरिक प्रभाव लिखें।

प्रश्न 3. कटि शक्ति विकासक प्रकार एक की विधि का वर्णन करों।

प्रश्न 4. जानु शक्ति विकासक क्रिया का क्या लाभ हैं ?

प्रश्न 5. सर्वांग पुष्टि से क्या समझते हो ?

प्राक्शास्त्री प्रथम वर्ष प्रथम सत्रार्द्ध (योग प्रायोगिक - तृतीय क्रेडिट)

एकविंशति पाठ

सूर्य नमस्कार

21.1 प्रस्तावना

21.2 उद्देश्य

21.3 सूर्यनमस्कार मन्त्र एवं अर्थ

21.4 सूर्यनमस्कार अभ्यास विधि

21.4.1 लाभ एवं सावधानियाँ

21.4.2 विशेष ध्यान रखने योग्य बातें

बोध प्रश्न

21.5 ग्रन्थ का मूलपाठ

21.6 सारांश

21.7 शब्दावली

21.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

21.9 सहायक ग्रन्थ

21.10 बोध प्रश्नोत्तर

21.11 अभ्यास प्रश्न

21.12 परियोजना कार्य

21.1 प्रस्तावना

सूर्य को जगत की आत्मा कहा गया है। यह प्रकृति का केन्द्र है। हमारी शारीरिक शक्तियों की उत्पत्ति, स्थिति और विकास इसी सूर्य पर निर्भर करता है। जो लोग इसके निकट संपर्क में रहते हैं वे स्वस्थ रहते हैं। वे लोग जिन्हें सूर्य किरणों से दूर रहना पड़ता है सदैव अस्वस्थ ही रहते हैं। सूर्य किरणों में स्वस्थता व नीरोगिता लाने की अपार शक्ति है। रोग कीटाणुओं को नष्ट करने की इसमें अपार क्षमता है। हमारे आचार्यों ने इसकी महत्ता को लाखों वर्ष पूर्व खोज लिया था। तभी इसको देवता की संज्ञा दी गई और सूर्य प्राणायाम, सूर्य नमस्कार, सूर्य उपासना, सूर्य योग, सूर्य यज्ञ आदि अनेक क्रियायें धार्मिक कर्मकाण्ड में सम्मिलित की गई है।

ॐ हिरण्मयेन पात्रेणसत्यस्याप्रिहितं मुखम्।
तत् त्वं पूषन् अपावृणु सत्य धर्माय दृष्टये ॥ (ईशावास्योपनिषद् 15)

सामान्यजन की दृष्टि में ब्रह्म का स्वरूप अविद्याजनित संसाररूपी ढक्कन से छुप गया है। यद्यपि वह अविद्या मिथ्या है तथापि वह ऐसी चमकीली है मानों सोने की बनी हुई है और मनुष्य को लुभा देती है, परन्तु मैं सत्य (ब्रह्म) की अनुभूति करना चाहता हूँ, जो मैने सुना है कि सूर्य में रहता है। अत: हे, सबका पोषण करने वाले सूर्य ! मुझ पर कृपा कीजिए तथा अपने असली स्वरूप को प्रकट कीजिए ।

सूर्य नमस्कार कोई धार्मिक अनुष्ठान नहीं है यह अपने आप में स्वतंत्र है तथा व्यायामों और आसनों की एक भावमय श्रंखला है। आगामी समय युवा वर्ग का है एवं युवाओं के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को आकर्षक बनाने हेतु सूर्य नमस्कार का अभ्यास व उसमें निहित भावों को आत्मसात करने का प्रयास करना चाहिए | इसके माध्यम से शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक क्षमता बढ़ती है जिसके कारण देश और प्रदेश की प्रगति को नूतन आयाम मिलेंगे। आज के युग में जहां जीवन में आधुनिकतम सुविधाएं बढ़ी हैं, वहीं व्यक्ति के जीवन में शारीरिक-मानसिक कष्ट, अशांति और आत्मिक सूनापन भी है । योग के माध्यम से व्यक्ति अपने मन को नियंत्रित कर पाता है और शारीरिक रूप से भी स्वस्थ होकर, अपने उत्तरदायित्व कुशलता से निभा पाता है। सूर्य नमस्कार, भारतीय योग संस्कृति का अद्‌भुत उपहार है। यह विभिन्न आसनों और व्यायाम का समन्वय है जिससे शरीर के सभी अंगों-उपांगों का पूरा व्यायाम हो जाता है। शरीर का पूरा शुध्दिकरण होता है और सूर्य की स्वर्णिम ऊर्जा का संचार सम्पूर्ण शरीर पर होता है |

21.2 उद्देश्य – प्रस्तुत पाठ आप जान सकेंगे -

- ❖ सूर्य शब्दार्थ एवं व्याख्या
- ❖ सूर्य का जीवन में महत्त्व
- ❖ सूर्यनमस्कार मन्त्रार्थ
- ❖ सूर्यनमस्कार अभ्यास की विधिलाभ एवं सावधानियाँ ,

21.3 सूर्यनमस्कार मन्त्र एवं अर्थ

सूर्य शब्द की व्याख्या

१. "सरति (गच्छति) आकाशे-इति सूर्यः" (जो आकाश में घूमता है, वह सूर्य है)।

२. "सुवति लोकं कर्मणि प्रेरयति-इति सूर्यः' वह (जो उदयकाल में लोगों को अपने-अपने कर्म में लगाता है, सूर्य है) ।

३. "गतौ यस्मात् परो नास्ति-इति सूर्यः" (जिसके प्रकाश के समान और कोई दूसरा प्रकाश इस पृथ्वी पर नहीं, उसे सूर्य कहते हैं)।

सूर्य तथा प्राणीमात्र का आपस में घनिष्ठतम सम्बन्ध है। यदि सूर्य न होता, तो पृथ्वी पर किसी वनस्पति का जन्म ही न होता और एक भी प्राणी यहाँ न रह पाता। **"सूर्य आत्मा जगस्तस्थुषश्च।"**। (यजु. व ऋग्वेद) सूर्य

तो चल-अचल अथवा जड़-चेतन के प्राणात्मा हैं सूर्य की गर्मी से वायु-संचार होकर प्राकृतिक-शुद्धि होती है। सूर्य-किरणें गन्दगी और दुर्गन्ध दूर करती हैं। "जहाँ सूर्य-प्रकाश का अभाव है, वहीं डॉक्टर की आवश्यकता पड़ती है।" यह निश्चित है - "प्रकाश ही जीवन है और अन्धकार ही मृत्यु।" सूर्य-किरणों से सारा समुद्र जल वाष्प बनकर पृथ्वी पर मीठा जल बरसता है। सूर्य-प्रकाश के बिना पेड़-पौधे कुम्हलाकर सूख जाते हैं। मनुष्य पीले पड़ जाते हैं। **"सूर्यस्य भागे अमृतस्य लोके" - अथर्ववेद** (सूर्य का भाग अमृत लोक ही है)। प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से प्रत्येक प्राणी का जीवन सूर्य पर ही आश्रित है।

डॉ. चार्ल्स एफ. हैनेल (Charles F. Hannel) के अनुसार-"संसार की सब विकसित शक्तियों का स्रोत सूर्य ही है।"

जिस प्रकार से सूर्य इस जगत में अंधकार (अज्ञान) को दूर कर प्रकाश (ज्ञान) को फैला कर सत्य का बोध कराता है, इस भाव को मन में धारण करते ही हम भी सूर्य नमस्कार का अभ्यास इस मंत्र के उच्चारण के साथ करते हैं।

ध्येय: सदा सवितृ-मण्डल-मध्यवर्ती। नारायण: सरसिजाऽसन सन्निविष्ट:॥

केयूरवान् मकर-कुण्डलवान किरीट। हारी हिरण्यमय वपुर्धृत शंख-चक्र:॥

अर्थ- सौर-मण्डल के मध्य में, कमल के आसन पर विराजमान (सूर्य) नारायण जो बाजूबंद, मकर की आकृति के कुण्डल, मुकुट, शंख, चक्र धारण किये हुए तथा स्वर्ण आभायुक्त शरीर वाले हैं, का सदैव ध्यान करते हैं।

सूर्य नमस्कार अभ्यास क्रम में प्रयुक्त मंत्र :

ॐ मित्राय नमः	हे सम्पूर्ण विश्व के मित्र, नमन है।
ॐ रवये नमः	हे गति एवं शब्द करने वाले, नमन है।
ॐ सूर्याय नमः	हे संसार को जीवन देने वाले तेज, नमस्कार है।
ॐ भानवे नमः	हे प्रदीप्त होने वाले प्रकाश पुञ्ज, नमन है।
ॐ खगाय नम:	हे आकाश में भ्रमण करने वाले, नमन हैं।
ॐ पूष्णाय नमः	हे संसार के पोषण करने वाले नमन है।
ॐ हिरण्यगर्भाय नमः	हे स्वर्णिम विश्वात्मा, नमन है।
ॐ मरीचये नमः	हे रश्मियों के अधिपति, नमन है।
ॐ आदित्याय नमः	हे जीवन रक्षक अदिति पुत्र, नमन है।
ॐ सवित्रे नमः	हे विश्व को उत्पन्न करने वाले, नमन है।
ॐ ह्रौं अकार्य नमः	हे शक्तिमान को उत्पन्न करने वाले, नमन है।
ॐ ह्रः भास्कराय नमः	हे प्रकाश करने वाले, आत्मज्ञान के प्रेरक, नमन है।

सूर्य नमस्कार का अभ्यास बारह स्थितियों में किया जाता है, जिस की विधि निम्न प्रकार से हैं –

21.4 सूर्यनमस्कार अभ्यास विधि

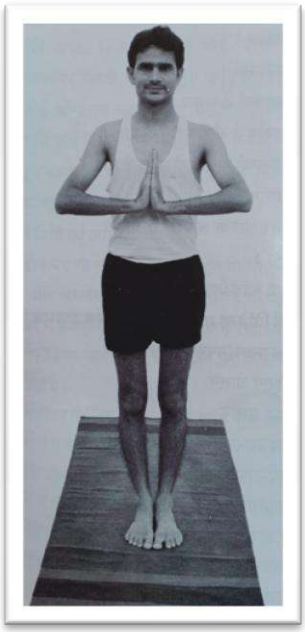

स्थिति -1

स्थिति का नाम – प्रणामासन या नमस्कार मुद्रा

श्वास स्थिति – सामान्य

ध्यान चक्र – अनाहत चक्र

विधि– सर्वप्रथम योगाभ्यासी सूर्योदय की तरफ मुख करके एड़ी, पञ्जें तथा घुटने आपस मे मिलाकर 'नमस्कार मुद्रा' में खड़ा हो जायें। दोनों हाथों को छाती के सामने रखें। नेत्र बन्द करें तथा सूर्य भगवान का ध्यान करते हुए **ॐमित्रायनमः'** मन्त्र के द्वारा आह्वान करें।

लाभ – रक्त संचार सामान्य होता हैं। एकाग्रता एवं शक्ति प्रदान करता है।

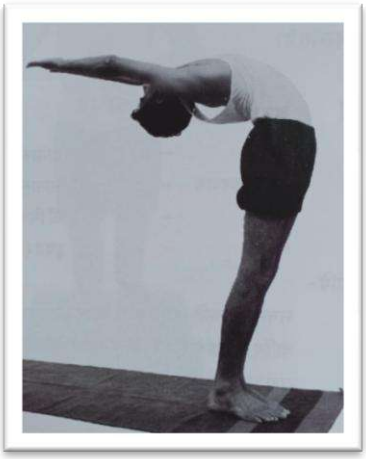

स्थिति -2

स्थितिका नाम – ऊर्ध्व हस्तासन या हस्तोत्तानासन

श्वास स्थिति – पूरक (श्वास भरते हुए)

ध्यान चक्र – विशुद्धिचक्र

विधि- श्वास भरते हुए, दोनों हाथों को सामने से बिना कोहनियाँ मोड़ते हुए पीछे की ओर ले जायें। सिर हाथों के मध्य स्थित रहेगा। कमर को भी यथाशक्ति पीछे की तरफ झुकायें तथा अन्तिम स्थिति में श्वास रोककर दृष्टि आकाश की तरफ रखें।

लाभ – उदर की अतिरिक्त चर्बी को घटाता हैं। फेफड़ों को कार्यक्षमता को बढाता है तथा पाचन तन्त्र को मजबूत बनाता हैं। भुजाओं और कन्धों की माँसपेशियों का व्यायाम होता हैं।

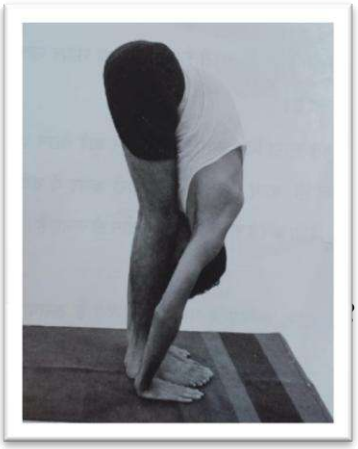

स्थिति -3

स्थिति का नाम – पादहस्तासन

श्वास स्थिति – रेचक (श्वास छोड़ते हुए)

ध्यान चक्र – स्वाधिष्ठानचक्र

विधि – श्वास बाहर निकालकर हाथों को पीछे से सामने झुकाते हुए पैरों के पास भूमि पर स्पर्श करा दें तथा सिर को घुटनों से लगाने का प्रयास करें, ध्यान रहें अन्तिम स्थिति में घुटने न मुड़ें।

लाभ – उदर एवं अमाशय के दोषों को नष्ट कर उन्हें मजबूती प्रदान करता हैं। मेरुदण्ड को लचीला बनाता है एवं उसके स्नायुओं के दबाव को सामान्य करता है। रक्त की शुद्धता को बढाता हैं। उदर की अतिरिक्त वसा को हटाता है।

स्थिति -4

स्थिति का नाम – वाम अश्व संचालनासन

श्वास स्थिति – पूरक

ध्यान चक्र – आज्ञाचक्र

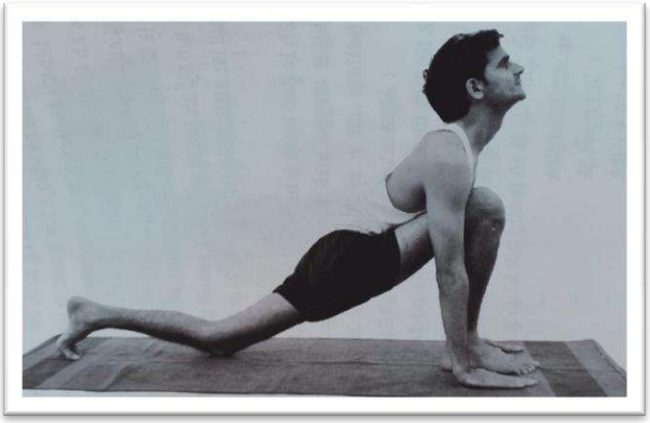

विधि – श्वास को भरते हुए बाँयें पाँव को पीछे की ओर ले जाएं। छाती को खींचकर आगे की ओर तानें। गर्दन को अधिक पीछे की तरफ झुकायें। दायाँ पाँव सीधा तना हुआ पीछे की तरफ खिंचाव और पैर का पञ्जा खड़ा हुआ।

लाभ – उदर प्रदेश के हल्के तनाव के कारण पाचन-तन्त्र में रक्त संचार बढाता है, जिससे पाचन-तन्त्र सुचारु रूप से कार्य करता है। पृष्ठभाग में लचीलापन आता है।

स्थिति -5

स्थिति का नाम – पर्वतासन

श्वास स्थिति – रेचक

ध्यान चक्र – विशुद्धि चक्र

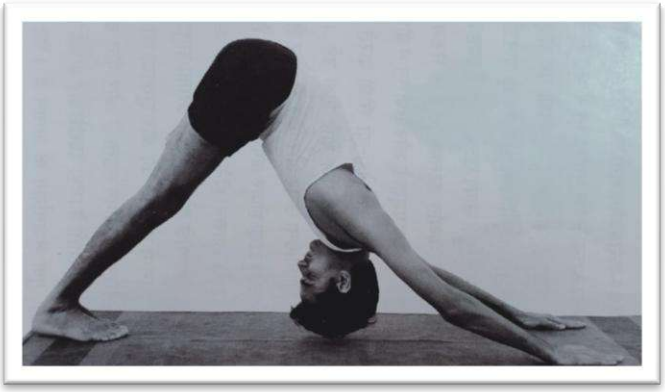

विधि – श्वास को धीरे-धीरे बाहर निकालते हुए दाएं पाँव को भी पीछे ले जाएं। दोनों पैरों की एड़ियाँ परस्पर मिली हुई हों। पीछे की तरफ खिंचाव दें और एड़ियों को पृथ्वी पर मिलाने का प्रयास करें। नितम्बों को अधिक से अधिक ऊपर उठाएं। गर्दन को नीचे झुकाकर ठोड़ी को कण्ठकूप से स्पर्श करायें।

लाभ – सिर सामने की तरफ झुका होने के कारण रक्त संचार बढ जाता है। इससे चेहरे पर ताजगी होने के साथ ही आँखों की ज्योति व बालों का झड़ना रुकता है। मेरुदण्ड लचीला तथा स्नायुओं को लाभ होता है। कन्धों व पाँवों की माँसपेशियाँ मजबूत होती है। यह आसन आलस्य को दूर करता है तथा कब्ज़ नाशक है।

स्थिति -6

स्थिति का नाम – अष्टांगनमनासन या साष्टांगासन

श्वास स्थिति – सामान्य

ध्यान चक्र – मणिपूर चक्र

विधि – श्वास भरते हुए शरीर जो पृथ्वी के समानान्तर सीधा साष्टांगदण्डवत करें और पहले घुटने, छाती और माथा भूमि पर स्पर्श करायें । नितम्बों को थोड़ा ऊपर उठाकर रखें। अन्तिम स्थिति में श्वास छोड़कर सामान्य रखें।

लाभ – वक्षस्थल और फेफड़ों की शक्ति को बढाता है। कन्धों व पाँवों की माँसपेशियाँ मजबूत होती है। स्वभाव में नम्रता का गुण विकसित होता है।

स्थिति -7

स्थिति का नाम – भुजंगासन

श्वास स्थिति – पूरक

ध्यान चक्र – स्वाधिष्ठान चक्र

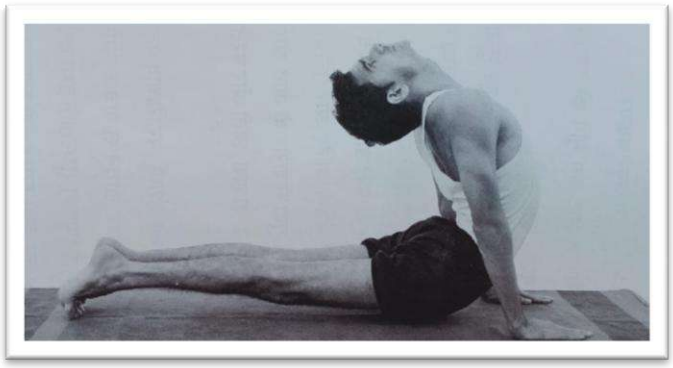

विधि– इसी स्थिति में श्वास को भरते हुए , छाती को आगे की ओर खींचते हुए हाथों को सीधे कर दें। गर्दन को पीछे की तरफ झुका दें। पीछे से दोनों पैर मिले हुए हों। नाभि तक का भाग भूमि पर टिका हुआ एवं दृष्टि आकाश की तरफ हों।

लाभ – पाचन तन्त्र में खिचाव उत्पन्न कर रक्त के संचार को बढाता है, जिससे पाचन क्रिया को क्रियाशील करता है। मेरूदण्ड को लचीला बनाकर पृष्ठभाग की माँसपेशियों सुदृढ करता है। फेफड़ों की कार्यक्षमता बढती है। दमा, श्वसनिका रोग, ग्रीवादंश (सरवाइकल स्पोंडोलाइटिस), कमर दर्द आदि रोगियों के लिए रामबाण हैं।

स्थिति -8

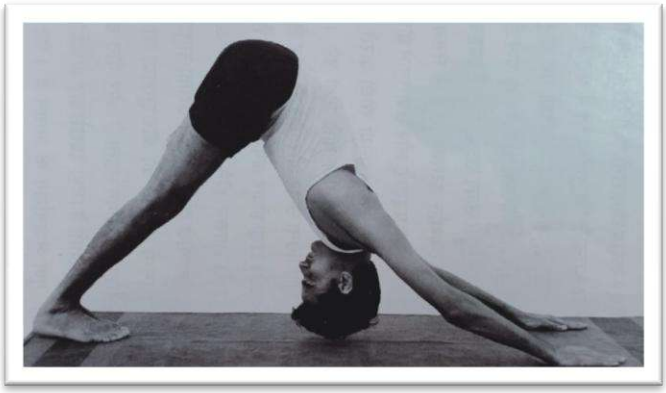

स्थिति का नाम – पर्वतासन

श्वास स्थिति – रेचक

ध्यान चक्र – विशुद्धिचक्र

विधि – श्वास बाहर निकालकर कुल्हों को ऊपर उठायें, गर्दन और सिर दोनों हाथों के बीच में रहें, नितम्ब और कमर ऊपर उठाकर तथा सिर को झुकाकर नाभि को देखने का प्रयास करें।

लाभ – स्थिति पाँच के सामान है।

स्थिति -9

स्थिति का नाम – दक्षिण-पाद अश्वसंचालनासन

श्वास स्थिति – पूरक

ध्यान चक्र – आज्ञा चक्र

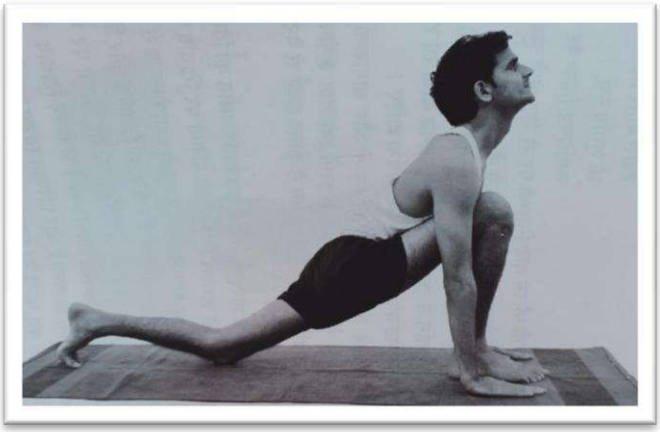

विधि – स्थिति आठ के बाद अब नीचे झुकते हुए हथेलियों को छाती के दोनों ओर टिकाकर रखें। दाँया पैर उठाकर पीछे से पूरा पञ्जा भूमि से सटाते हुए तानें। बायाँ पैर दोनों हाथों के बीच में रखें। घुटना, छाती के सामने रहें, दृष्टि आकाश की तरफ, श्वास को अन्दर भरकर रखना है।

लाभ – स्थिति चार के सामान है।

स्थिति -10

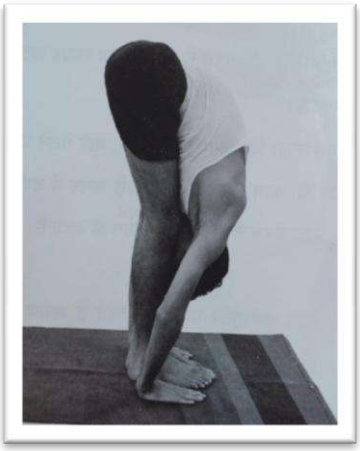

स्थिति का नाम – पादहस्तासन

श्वास स्थिति – रेचक

ध्यान चक्र – स्वाधिष्ठान चक्र

विधि – श्वास बाहर निकाल कर हाथों को पीछे से सामने झुकाते हुए पैरों के पास भूमिपर स्पर्शकरा दें तथा सिर को घुटनों से लगाने का प्रयास करें, ध्यान रहें अन्तिम स्थिति में घुटने न मुड़ें।

लाभ – स्थिति तीन के सामान है ।

स्थिति -11

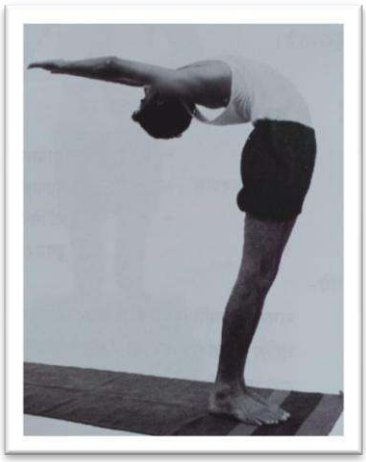

स्थितिकानाम – ऊर्ध्वहस्तासन या हस्तोत्तानासन

श्वासस्थिति – पूरक

ध्यानचक्र – विशुद्धि चक्र

विधि - श्वासभरतेहुए, दोनों हाथों को सामने से बिना कोहनियाँ मोड़ते हुए पीछे की ओर ले जायें । सिर हाथों के मध्य स्थित रहेगा । कमर को भी यथाशक्ति पीछे की तरफ झुकायें तथा अन्तिम स्थिति में श्वास रोककर दृष्टि आकाश की तरफ रखें ।

लाभ – स्थिति दो के सामान है ।

स्थिति -12

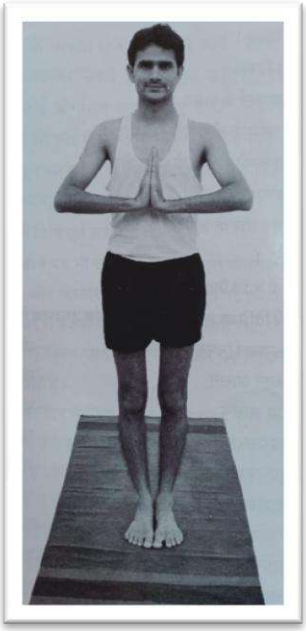

स्थिति का नाम – प्रणामासन

श्वास स्थिति – सामान्य

ध्यान चक्र – अनाहत चक्र

विधि – सूर्याभिमुख सावधान की स्थिति में लौटते हुए (एड़ी पञ्जें मिले हुए हों) नमस्कार की स्थिति में हाथों को छाती के सामने रखें । अन्तिम स्थिति में श्वास सामान्य रखें ।

लाभ – स्थिति प्रथम के सामान है ।

21.4.1 लाभ एवं सावधानियाँ

आदित्यस्य नमस्कारान्, ये कुर्वन्ति दिने दिने ।
आयुः प्रज्ञा बलं वीर्यं तेजस् तेषाञ्च जायते ।।

भावार्थ - जो प्रतिदिन सूर्य नमस्कार करते हैं, वे आयु, प्रज्ञा (अच्छी बुद्धि), बल, वीर्य और तेज प्राप्त करते हैं।

- सूर्य नमस्कार मानसिक शांति देता है और यह प्राण शक्ति प्रदाता है।
- इसमें शारीरिक और मानसिक दोनों स्तरों पर ऊर्जा संतुलित होती है।
- सूर्य नमस्कार के अभ्यास से सारे शरीर का व्यायाम हो जाता है।
- मेरुदण्ड के बारी-बारी से आगे तथा पीछे मुड़ने के कारण शारीरिक
- लाभ के साथ-साथ कुण्डलिनी जागरण में भी इसका अधिक महत्त्व है। चूँकि सुषुम्ना का मार्ग मेरुदण्ड ही है, अत ऊर्जा ऊर्ध्वमुखी भी होती है।
- क़ब्ज़ का दुश्मन है। बुढ़ापे को पास नहीं आने देता।

- स्त्रियाँ अपने शरीर को आकर्षक, सुंदर व सुडौल बना सकती हैं।
- सूर्य नमस्कार समस्त बीमारियों का नाश करता है।
- सूर्य के समान तेजवान बनाता है।
- विद्यार्थी सूर्य नमस्कार को कर इनसे होने वाले लाभों को अवश्य प्राप्त करें।

सावधानियाँ :

- 8 वर्ष से ज्यादा आयु वाले सभी व्यक्ति यह आसन कर सकते हैं।
- मेरुदण्ड की समस्या, उच्च रक्तचाप, हृदय दोष व हर्निया आदि रोगग्रस्त साधक किसी गुरु के निर्देश में यह आसन करें।

21.4.2 विशेष ध्यान रखने योग्य बातें

- साधक को अपने शरीर का ध्यान रखते हुए 2 या 3 आवृत्ति करनी चाहिए ।
- सूर्य नमस्कार करने का सबसे अच्छा समय ब्रह्ममुहूर्त का है।
- इसे शौचादि से निवृत्त होने के बाद स्नान करके प्रसन्न मन से करें।
- अभास के समय स्वच्छ एवं ढीले वस्त्र पहनें।
- अभ्यस के दौरान वातावरण शांत होना चाहिए अत: इसके लिए सुबह का समय ही बेहतर रहता है, क्योंकि इस समय जलवायु शुद्ध होती है और सूर्य की अल्ट्रावॉयलेट किरणें भी हानि नहीं पहुँचातीं। इसलिए प्रातः काल का समय ही उपयुक्त है।
- किसी कारणवश प्रातः काल सूर्य नमस्कार न कर पाएँ तो ख़ाली पेट या संध्या के समय किया जा सकता है।

बोध प्रश्न

१) सूर्य को जगत की क्या कहा जाता है ?
२) जो आकाश में घूमता है, वह ..... है ।
३) सूर्यनमस्कार का पाँचवा मन्त्र कौनसा है ?
४) सूर्यनमस्कार की आठवीं स्थिति कौनसी है ?
५) सम्पूर्ण स्वास्थ्य के लिए विद्यार्थियों को नियमित क्या करना चाहिए ?

21.5 ग्रन्थ का मूलपाठ

ॐ हिरण्मयेन पात्रेणसत्यस्याप्रिहितं मुखम्।
तत् त्वं पूषन् अपावृणु सत्य धर्माय दृष्टये ॥ (ईशावास्योपनिषद् 15)
ध्येय: सदा सवितृ-मण्डल-मध्यवर्ती। नारायण: सरसिजासन सन्निविष्ट:॥
केयूरवान् मकर-कुण्डलवान किरीट। हारी हिरण्यमय वपुर्धृत-शंख-चक्र:॥
आदित्यस्य नमस्कारान्, ये कुर्वन्ति दिने दिने ।

आयुः प्रज्ञा बलं वीर्यं तेजस् तेषाञ्च जायते ।।

सूर्य आत्मा जगस्तस्थुषश्च।"। (यजु. व ऋग्वेद)

21.6 सारांश

आज औषधि विज्ञान की इतनी तरक्की के बाद भी रोगों से छुटकारा तो नहीं मिला अपितु एक रोग को दबाने के चक्कर में हमने दूसरे रोग को उभार दिया है। रोग होने के बाद उसका उपचार करने से सर्वोत्तम है कि शरीर को हम इतना मजबूत बना लें, जिससे रोग आ ही नहीं सके। एक चिकित्सक के मतानुसार-

"Prevention is Better then Cure"

सूर्य नमस्कार अर्थात प्राणों का संवर्धन, सूर्य में निहित अनुशासन व स्वर्णिम ऊर्जा से अपने समग्र व्यक्तित्व को प्रखर करना | सूर्य नमस्कार के अभ्यास से बुध्दि, धैर्य, शौर्य और बल की प्राप्ति होती है तथा मानसिक एकाग्रता, आत्मविश्वास एवं मेधा भी बढती है । यह संजीवनी की तरह दिव्य औषधि है जो मनुष्य के व्यक्तित्व को आकर्षक बनाती है। उत्साह व स्फूर्ति उत्पन्न करते हुए उसकी कार्यक्षमताओं में वृध्दि करता है।

21.7 शब्दावली

१) हिरण्य : सुवर्ण ।

२) पूरक : श्वास लेना ।

३) रेचक : श्वस छोड़ना ।

४) कुम्भक : श्वास को रोकना ।

५) भुजंग : सांप ।

६) पुष्णे : वह जो पोषण करता है ।

७) भास्कर : चमकीला, रोशनी, सूर्य का एक नाम ।

21.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. सरल योग शिक्षा (2015), डा. वासुदेव शर्मा, जीवन पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लि. इण्डिया ।

2. योग (2019), प्रकाशक - विवेकानन्द केन्द्र प्रकाशन ट्रस्ट, चैन्नै (पश्चिम बंगाल), भारत ।

3. दैनिक जीवन में योग (2009), डा. शेखर शर्मा, प्रकाशक : निवेदिता प्रकाशन, त्रिवेणी नगर, जयपुर-302018

21.9 सहायक ग्रन्थ

1. सूर्य नमस्कार एक सम्पूर्ण व्यायाम (2011), प्रो. पाल मदान, प्रकाशक : चिंटू आर्ट प्रिंटर्स,अबोहर-152123 पंजाब ।

2. डाक्टर सूर्य (2017), योगाचार्य ओंकार नाथ, सर्व सेवा संघ-प्रकाशन राजघाट, वाराणसी-221001

3. https://hindi.speakingtree.in/blog/content-527496

21.10 बोध प्रश्नोत्तर

१) आत्मा ।

२) सूर्य ।

३) ॐ खगाय नमः ।

४) पर्वतासन ।

५) सूर्य ।

21.11 अभ्यास प्रश्न

1. सूर्यनमस्कार का जीवन में क्या महत्त्व हैं ?
2. सूर्यनमस्कार की विधि, लाभ एवं सावधानियाँ लिखिए ?
3. सूर्यनमस्कार के मन्त्रों की व्याख्या कीजिए ।
4. सूर्यनमस्कार का शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक प्रभाव स्पष्ट कीजिए ।

21.12 परियोजना कार्य

1. सूर्यनमस्कार की स्थितियों में स्वयं के चित्रों को लगाकर विधि सहित फाइन तैयार कीजिए ।
2. सूर्यनमस्कार का चार्ट बनाएँ ।

द्वाविंशति पाठ
आसन का सामान्य परिचय

22.1 प्रस्तावना

22.2 उद्देश्य

22.3 आसन का अर्थ एवं परिभाषा

22.4 आसनों का परिचय

22.5 आसनों का वर्गीकरण

22.6 आसन सिद्धि का उपाय

22.7 आसन सिद्धि का फल

बोध प्रश्न

22.8 ग्रन्थ का मूलपाठ

22.9 सारांश

22.10 शब्दावली

22.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

22.12 सहायक ग्रन्थ

22.13 बोध प्रश्नोत्तर

22.14 अभ्यास प्रश्न

22.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत पाठ में आप आसनों का सामान्य परिचय अध्ययन करेंगे। आसन एक स्थिति है, जब हम किसी का भी चिन्तन या ध्यान करें तो उसमें कोई बाधा न बने इसलिए आसन को साधा जाता है। आसन साधक को द्वन्द्व सहन करने की शक्ति प्रदान करता है। जिससे साधक सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास, मान-अपमान, हर्ष-शोक आदि द्वन्द्वों में सहर्ष तप करता हुआ अपनी साधना के लिए अग्रसित होता है। आसन से साधक का शरीर वज्र के सामान बन जाता है अत: कहा भी है शरीर एक नाव की भाँति है यदि नाव में कोई छेद हो तो वह मंजिल तक नही पहुंचा सकती वैसे ही यदि शरीर में कोई विकार है तो वह भी धर्मार्थ चतुष्टय की प्राप्ति नही करा सकता।

प्रस्तुत पाठ में हम आसन के बारे में विस्तृत ज्ञान अर्जित करेंगे -

22.2 उद्देश्य – में प्रस्तुत पाठ में आप जानेंगे –

- आसन का अर्थ एवं परिभाषा।
- आसन का स्वरूप।

- ❖ आसन सिद्धि के उपाय।
- ❖ आसन का फल।
- ❖ आसन के भेद।

22.3 आसन का अर्थ एवं परिभाषा

आसन शब्द की व्युत्पत्ति 'अस' धातु से उपवेशने के अर्थ में करणार्थक ल्युट् प्रत्यय से हुई है। जिसका अर्थ है – **'आस्यते अनेनेत्यासनम्'** जिसके द्वारा बैठा जाए उसे आसन कहते है अथवा **'आस्यते उपवेश्यते अनया मुद्रया इत्यासनम्'** जिस प्रकार की मुद्रा में बैठा जाता है, वह आसन है। इस व्युत्पत्ति के अनुसार बैठने के विविध प्रकारों का नाम आसन है। **'आस्तेऽत्र अस्मिन् वा इति आसनम्'** अर्थात् जिस पर बैठा जाता है, उसे आसन कहते हैं। एक से शरीर कर्म द्योतित होता है, दूसरे से बाह्य उपक्रम। यहाँ पर आसन के पूर्व अर्थ पर विचार करना अपेक्षित है।

आसन में उपवेशन की क्रिया ही मुख्यत: रहती है। ऐसा प्रतीत होता है कि धारणा ध्यान और समाधि में विशिष्ट रीति से बैठकर ही अभ्यास करने की अपेक्षा की गई है क्योंकि ध्यानादि चलते हुए या लेटे हुए प्राय: सुचारु रूप से नही लग सकते। ध्यानादि के लिए ब्रह्मसूत्र में जितने प्रकार हैं, उनमें से एक है – **'आसीन सम्यवात्'** अर्थात् ध्यानादि में बैठकर सम्यव होते है।

महर्षि पतञ्जलि अनुसार – **'स्थिरसुखमासनम्'** अर्थात् जिस स्थिति में स्थिर होकर, सुखपूर्वक, उसके लिए अपेक्षित समय तक बैठा जा सके, उसे आसन कहते हैं। (पा.यो.सू. 2/46)

तेजबिन्दोपनिषद् के अनुसार आसन – 'सुखनैव भवेत् यस्मिन् जस्त्रं ब्रह्मचिन्तनम्' अर्थात् जिस स्थिति में बैठकर सुखपूर्वक निरन्तर परमब्रह्म का चिन्तन किया जा सके, उसे ही आसन समझना चाहिए।

श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार आसन - **"समं कायशिरोग्रीवं धारयन्न चलं स्थिर:। सम्प्रेक्ष्यनासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्"** अर्थात् शरीर, गला और सिर को सीधे और स्थिर रहें। अन्य किसी दिशाओं को न देखते हुए अपनी नासिका के अग्रभाग को देखते हुए स्थिर होकर बैठना ही आसन है। (अध्याय श्लो. 6/13)

नारायणतीर्थ के अनुसार आसन – 'आस्यते आस्ते वाऽनेन प्रकारेणेत्यासनम्' अर्थात् इसके द्वारा विशेष प्रकार से बैठा जाता है अथवा बैठते हैं, इसलिए आसन कहते है।

बलदेव मिश्र के अनुसार – निश्चलता और सुख को उत्पन्न करने वाला आसन है। 'स्थिरं निश्चलं यत्सुखं तदासनम्' (यो.प्र.पृ. 42) अर्थात् जिस अवस्था में बिना हिले-डुले स्थिरतापूर्वक सुखपूर्वक बैठा जा सकता है, वही आसन है।

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार – 'मेरुदण्ड के ऊपर जोर न देकर, गर्दन और सिर सीधा रखने की स्थिति विशेष में रहना आसन है।(स्वामी विवेकानन्द, विवेकानन्द साहित्य, चतुर्थ खण्ड, पृ.84)

अष्टांग योग में चरणदास जी ने कहा है – 'चौरासी लाख आसन जानो, योनिन की बैठक पहचानो ।' अर्थात् विभिन्न योनियों के जीव-जन्तु जिस अवस्था में बैठते हैं उसी स्वरूप को आसन कहते हैं ।

इस प्रकार उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि जिस स्थिति में बैठने से सुख का अनुभव होता है वह आसन कहलाता है । आसनों का मुख्य उद्देश्य शारीरिक तथा मानसिक कष्टों से मुक्ति दिलवाना हैं ।

22.4 आसनों का परिचय

महर्षि पतञ्जलि ने योग सूत्र में आसनों के नामों का वर्णन नहीं किया, किन्तु भाष्यकार व्यास 2/46 के अनुसार आसनों का वर्णन – जैसे पद्मासन, वीरासन, भद्रासन, स्वस्तिकासन, दण्डासन, सोपाश्रयपर्यंकासन, क्रोन्चासन, हस्तिनिषदनासन, उष्ट्रासन, समसंस्थानासन आदि ।

विज्ञानभिक्षु के अनुसार – 'यावत्यो जीव जातयस्तावन्त्येवासनानि।'(योग वार्त्तिक 2/46) अर्थात् जितने भी प्रकार के जीव-जन्तु हैं, बैठने की जितनी स्थितियाँ हैं, उन सभी को आसन कहते हैं ।

गोरक्षनाथ,घेरण्ड मुनि और स्वामी चरणदास के अनुसार – 'आसनानि समस्तानि यावन्तो जीवजन्तव: (गोरक्ष संहिता 1/7, घेरण्ड संहिता 2/1), ''चौरासी लाख आसन जानो, योगिन की बैठक पहचानौ । तिनमें चौरासी चुग लीन्हें, दुरलभ भेद सो कीन्हें ॥' (स्वामी चरणदास) अर्थात् संसार में जितने भी जीव-जन्तु हैं, उतने ही प्रकार के आसनों की संख्या हैं अथवा विभिन्न योनियों के जीव-जन्तु जिस अवस्था में बैठते हैं उसी स्वरूप को आसन कहते हैं ।

भगवान शिव ने मत्स्येन्द्रनाथ को कहा, उसका वर्णन हठयोगप्रदीपिका व घेरण्ड संहिता ग्रन्थों में मिलता है – 'वसिष्ठाद्यैश्च मुनिभिर्मत्स्येन्द्राद्यैश्च योगिभि: । अङ्गीकृतान्यासनानि कथ्यन्ते कानिचिन्मया ॥ (1/18)

चतुरशीति लक्षाणि शिवेन कथितानि च । तेषां मध्ये विशिष्टानि शोडषेनं शतं कृतम् । तेषां मध्ये मर्त्यलोके द्वात्रिशदासनं शुभम् ॥ 2/1-2 अर्थात् भगवान शिव ने चौरासी लाख आसनों को कहा हैं । उन आसनों में चौरासी आसन ही सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं । उन चौरासी आसनों में से भी बत्तीस आसन अति श्रेष्ठ और विशिष्ट माने जाते हैं । इस प्रकार ये बत्तीस आसन योग की सिद्धियाँ प्राप्त करने में अधिक उपयोगी हैं ।

महर्षि घेरण्ड मुनि प्रणीत घेरण्ड संहिता – 2/3-6 के अनुसार आसनों का सही क्रम निम्न है -

सिद्धासन, पद्मासन, भद्रासन, मुक्तासन, वज्रासन, स्वस्तिकासन, सिंहासन, गोमुखासन, वीरासन, धनुरासन, मृतासन, गुप्तासन, मत्स्यासन, मत्स्येन्द्रासन, गोरक्षासन, पश्चिमोत्तानासन, उत्कटासन, संकटासन,

मयूरासन, कुक्कुटासन, कूर्मासन, उत्तानकूर्मासन, उत्तानमण्डूकासन, वृक्षासन, मण्डूकासन, गरुड़ासन, वृषभासन, शलभासन, मकरासन, उष्ट्रासन, भुजंगासन, योगासन ये कुल बत्तीस आसन मनुष्यलोक में सिद्धियाँ देने वाले हैं ।3-6॥

स्वमी स्वात्माराम द्वारा प्रणीत हठयोग प्रदीपिका के अनुसार पन्द्रह आसनों का सही क्रम निम्न है – स्वस्तिकासन, गोमुखासन, वीरासन, कूर्मासन, कुक्कुटासन, उत्तानकूर्मासन, धनुरासन, मत्स्येन्द्रासन, पश्चिमोत्तानासन, मयूरासन, शवासन, सिद्धासन, पद्मासन, सिंहासन, भद्रासन ।

हठप्रदीपिका के अन्तिम चार आसनों को स्वामी स्वात्माराम जी ने श्रेष्ठ माना हैं –

सिद्धं पद्मं तथा सिहं भद्रं चेति चतुष्टयम् । श्रेष्ठं तत्रापि च सुखे तिष्ठेत् सिद्धासने सदा ॥ 1/34

भावार्थ – सिद्धासन, पद्मासन, सिंहासन और भद्रासन श्रेष्ठ हैं परन्तु इन चारों में भी उत्कृष्ट सिद्धासन को माना हैं ।

शिव संहिता में वर्णित चार आसन – ' सिद्धासन तत: पद्मासनञ्चोग्रं च स्वस्तिम्' अर्थात् सिद्धासन, पद्मासन, उग्रासन और स्वस्तिकासन श्रेष्ठ हैं ।

सिद्धसिद्धान्त पद्धति 2/34 के अनुसार तीन आसन – स्वस्तिकासन, पद्मासन और सिद्धासन हैं ।

हठरत्नावली में चौरासी आसनों का वर्णन है ।

क्रम सं.	ग्रन्थ नाम	रचयिता	आसन संख्या
1	हठयोगप्रदीपिका	स्वामी स्वात्माराम	15
2	घेरण्ड संहिता	महर्षि घेरण्ड	32
3	शिव संहिता	भगवान शिव	4
4	सिद्धसिद्धान्त पद्धति	योगी गोरक्षनाथ	3
5	हठरत्नावली	श्रीनिवास योगी	84
6	वसिष्ठ संहिता	महर्षि वसिष्ठ	10

22.5 आसनों का वर्गीकरण

हठयोग में हठयोगियों ने आसनों का वर्गीकरण वैज्ञानिक रूप से किया है । कुछ आसन जो शरीर को स्वस्थ रखने में सहायक हैं । उनको शरीर संवर्धनात्मक आसन कहा है । कुछ आसन जो शरीर को आराम देने

वाले होते हैं , उन्हें विश्रामात्मक या शिथिलीकरणात्मक आसन कहा जाता है और कुछ आसन जो ध्यानादि के लिए उपयोगी होते हैं, उन्हें ध्यानात्मक आसन कहा जाता है। हठयोगप्रदीपिका में स्वामी स्वात्माराम ने इसी क्रम से आसनों का वर्गीकरण किया है। पहले शरीर संवर्धनात्मक, फिर विश्रामात्मक और अन्त में ध्यानात्मक आसनों का वर्णन किया हैं। स्वामी चरण दास ने भी इसी प्रकार वर्णन अष्टांग योग नामक अपनी पुस्तक में किया है और इनमें से दो आसनों को सिद्धि प्राप्त करने वाला बताया हैं।

आसन सिद्ध पद्म कहलावै, इनकूं करि निश्चय ठहरावै। अरु आसन सब रोग भजावै, ये दो आसन योग सधावै॥ (च.कृ.अ.पृ.10)

आसन

क्रम सं.	शरीर संवर्धनात्मक	विश्रामात्मक	ध्यानात्मक
1	सर्वांगासन	श्वासन	पद्मासन
2	भुजंगासन	मकरासन	सिद्धासन
3	वृक्षासन	शिथिल दण्डासन	स्वस्तिकासन
4	त्रिकोणासन		सुखासन

आसनों को खड़े होने, बैठने तथा लेटने की स्थिति के अनुसार भी तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता हैं –

1. खड़े होकर किए जाने वाले आसन।
2. बैठकर किए जाने वाले आसन।
3. उदर व पीठ के बल लेटकर किए जाने वाले आसन।

खड़े होकर किए जाने वाले आसनों में हाथ-पैर तथा कमर का परिश्रम अधिक होता है। बैठकर किए जाने वाले आसनों में पीठ, गर्दन, कन्धें अधिक श्रम करते हैं तथा लेटकर किए जाने वालों में पेट, छाती, गले को अधिक मेहनत करनी पड़ती है।

22.6 आसन सिद्धि का उपाय

महर्षि पतञ्जलि ने आसन सिद्धि करने के लिये दो उपाय बताये हैं - "प्रयत्नशैथिल्यानन्तसमापत्तिभ्याम्" (पा.यो.सू. 2/47) अर्थात् प्रयत्न की शिथिलता और अनन्त समापत्तियों द्वारा आसन स्थिर और सुखकारक होता है। देह कम्पादि न होना और अनन्तविध आसनों में लगाया हुआ चित्त आसन को सिद्ध करता है।

योगसूत्र के भाष्यकार डा. करमबेलकर के अनुसार शैथिल्य से तात्पर्य है – सम्पूर्ण रूप से प्रयत्न छोड़ देना। प्रयत्न अर्थात् करने की भावना यह शरीर तथा मन में किंचित भी नहीं होनी चाहिए। प्रयत्न शैथिल्य का सम्बन्ध यहाँ मुख्य रूप से शरीर से है। प्रत्येक अंग सर्वमांसपेशियों व तन्तुओं को जोड़ने आदि में कही भी तनाव या खिचाव अनुभव नही होना चाहिए। आसन की अन्तिम रूप से स्थिर रखने की भावना शरीर तथा मन में किंचित भी नही होनी चाहिए। हठयोग के आसनों में भी यह ध्यान रखना आवश्यक है कि आसन की अन्तिम अवस्था में जाने और वापिस आने तक इसमें होने वाली हलचल बिना झटके के होनी चाहिए। ऐसा होगा, तभी वह आसन सुख देने तथा दीर्घकाल तक स्थिर रखा जा सकता है।

आसन सिद्धि का दूसरा उपाय है **'अनन्त समापत्ति'** अनन्त समापत्ति का अर्थ है – अन+अन्त अर्थात् जिसका कोई अन्त न हो। अनन्त, अन्तहीन इतना विस्तृत। इस शब्द को बोलने में व्यवहार होता है, किन्तु वास्तव में इसकी ठीक से कल्पना करना अशक्य है। अनन्त के लिये सागर या आकाश का प्रतीक ठीक रहेगा। अपार अनन्त सागर में जैसे लकड़ी का कोई लट्ठा पड़ा हो या बिना किसी ओर-छोर के आकाश में कभी-कभी पतंग स्थिर सा तैरता रहता है। इस प्रकार स्वयं की कल्पना करना उस अपार सागर या आकश का ही अंग बन कर मन से एक रूप हो जाना। समापत्ति का अर्थ है - विषय से एक रूप हो जाना। इस कारण समापत्ति मुख्यतः मन से सम्बन्धित है। अनन्त आकाश में चित्त को व्यवधान रहित अर्थात् दूसरा ज्ञान बीच में न आये, इससे समापत्ति की जाती है।

आसन की सिद्धि के लक्षण है -

1) अनन्त (ईश्वर, आकाश) पर समापत्ति (समाधि)।
2) द्वन्द्वों का आघात न लगना।
3) शारीरिक एवं मानसिक दृढता की प्राप्ति होना।

22.7 आसन सिद्धि का फल

आसनों के साधन के पश्चात् महर्षि पतञ्जलि आसनों की सिद्धि के फल का वर्णन करते हैं कि आसनों के सिद्ध हो जाने पर साधक किसी भी प्रकार के द्वन्द्वों से मुक्त हो जाता है – **'ततो द्वन्द्वानभिघातः'** 2/48

व्यास के अनुसार आसनों के सिद्ध होने पर साधक द्वन्द्वों जैसे शीत-उष्ण, क्षुधापिपासा आदि की अनुभूति से पीड़ित नहीं होता। इस प्रकार द्वन्द्वों को सहन करने की नैसर्गिक शक्ति प्राप्त हो जाती है – **'शीतोष्णादिभिर्द्वन्द्वैरासनजयान्नाभिभूयते'** (व्यास भाष्य 2/48)

स्वामी स्वात्माराम ने हठयोग प्रदीपिका में आसनों की सिद्धि के विषय में कहा है कि – **"कुर्यात्तदासनं स्थैर्यमारोग्यं चांगलाघवम्"** 1/17 आसनों के सिद्ध हो जाने पर योगी को स्थिरता और अंगलाघव की प्राप्ति होती है। इस प्रकार हठयोग के आसनों से जहाँ सिद्धि प्राप्त होती है वहाँ स्थिरता, आरोग्यता और अंग लाघव भी प्राप्त होता है। महर्षि पतञ्जलि ने अपने योगसूत्र में आसनों की परिभाषा **"स्थिरसुखमासनम्"** 2/46 दी है ।

बोध प्रश्न

१) हठयोग प्रदीपिका के रचयिता है ।.....

२) घेरण्ड संहिता के रचयिता है । .....

३) आसनों को कितने वर्गों में विभाजित किया गया है ?

४) पद्मासन और सिद्धासन किस प्रकार के आसनों के अन्तर्गत आते है ?

५) महर्षि पतञ्जलि अनुसार आसन की परिभाषा क्या है ?

22.8 ग्रन्थ का मूलपाठ

'स्थिरसुखमासनम्' (पा.यो.सू. 2/46)

'सुखनैव भवेत् यस्मिन् जस्त्रं ब्रह्मचिन्तनम्' (तेजोबिन्दूपनिषद्)

"समं कायशिरोग्रीवं धारयन्न चलं स्थिर: । सम्प्रेक्ष्यनासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्" (गीताश्लो.6/13)

'आस्यते आस्ते वाऽनेन प्रकारेणेत्यासनम्'(नारायणतीर्थ)

'यावत्यो जीव जातयस्तावन्त्येवासनानि।'(योग वार्त्तिक **2/46)**

'आसनानि समस्तानि यावन्तो जीवजन्तव: **(**गोरक्ष संहिता **1/7,** घेरण्ड संहिता **2/1)**

"चौरासी लाख आसन जानो, योगिन की बैठक पहचानौ ।

तिनमें चौरासी चुग लीन्हें, दुरलभ भेद सो कीन्हें ॥' (स्वामी चरणदास)

चतुरशीति लक्षाणि शिवेन कथितानि च । तेषां मध्ये विशिष्टानि शोडषेनं शतं कृतम् ।
तेषां मध्ये मर्त्यलोके द्वात्रिशदासनं शुभम् ॥ **(1-2)**
सिद्धं पद्मं तथा भद्रं मुक्तं वज्रञ्च स्वस्तिकम्। सिंहञ्च गोमुखं वीरं धनुरासनमेव च॥3॥

मृतं गुप्तं तथा मत्स्यं मत्स्येन्द्रासनमेव च। गोरक्षं पश्चिमोत्तानं उत्कटं सङ्कटं तथा॥4॥

मयूरं कुक्कुटं कूर्मं तथाचोत्तानकूर्मकम्। उत्तानमण्डूकं वृक्षं मण्डूकं गरुडं वृषम्॥5॥

शलभं मकरं चोष्ट्रं भुजङ्गञ्चयोगासनम्। द्वात्रिंशदासनानि तु मर्त्यलोके हि सिद्धिदम्॥6॥ (घेरण्ड संहिता 2/1-6)

सिद्धं पद्मं तथा सिहं भद्रं चेति चतुष्टयम् । श्रेष्ठं तत्रापि च सुखे तिष्ठेत् सिद्धासने सदा ॥ (हठप्रदीपिका 1/34)

सिद्धासन तत: पद्मासनञ्चोग्रं च स्वस्तिम्' (शिव संहिता)

"प्रयत्नशैथिल्यानन्तसमापत्तिभ्याम्" (पा.यो.सू. 2/47)

'**ततो द्वन्द्वानभिघात**:' (पा.यो.सू. 2/47)

'शीतोष्णादिभिर्द्वन्द्वैरासनजयान्नाभिभूयते' (व्यास भाष्य 2/48)

"कुर्यात्तदासनं स्थैर्यमारोग्यं चांगलाघवम्" (हठप्रदीपिका 1/17)

22.9 सारांश

इस प्रकार हठयोग के आसनों की अन्तिम स्थिति ही राजयोग के आसनों की प्रारिम्भक अवस्था है। शरीर संवर्धनात्मक और शिथिलीकरणात्मक आसानों का अन्तर्भाव ध्यानात्मक आसनों में ही हो जाता है। क्योंकि शरीर को साधक स्वस्थ रखते हुए आराम के साथ लम्बे समय तक योग साधना में बैठना ही आसनों का मुख्य लक्ष्य है। इसलिये राजयोग में महर्षि पतञ्जलि ने केवल ध्यानात्मक आसनों की परिभाषा दी है, शरीर संवर्धनात्मक आसनों की नहीं। जब शरीर समस्त विकार रहित होगा, तभी वह ध्यानात्मक आसनों को साधने में सफल हो जायेगा।

22.10 शब्दावली

१)	अनन्त	:	जिसका कोई अन्त न हो ।
२)	शैथिल्य	:	सम्पूर्ण रूप से प्रयत्न छोड़ देना ।
३)	द्वन्द्व	:	शीतप्यास आदि द्वन्द्व है ।-भूख ,उष्ण-
४)	अनभिघात	:	। (चित्त पर)द्वन्द्व विघ्न नही डाल सकते ,आघात न लगना
५)	समापत्ति	:	समाधि ।
६)	मेरुदण्ड	:	रीढ की हड्डी ।
७)	निश्चल	:	हिलनचलन से रहित ।-

22.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. सूरी स्वात्माराम (2001), हठप्रदीपिका। कैवतयधाम श्रीमन्माधव योगमंदिर समिति, लोनावला - 410403 (पुणे)
2. सरस्वती निरंजनानंद (1997) घेरण्ड संहिता । योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत ।

3. योगदीपिका (2005), बी.के.एस.आयंगार । ओरियंट लॉंग्मैन प्राइवेट लिमिटेड, हैदराबाद-500029 (आन्ध्रा प्रदेश), भारत

22.12 सहायक ग्रन्थ

1. सरस्वती विज्ञानानंद (2007). योग विज्ञान योग निकेतन ट्रस्ट, मुनि की रेती, ऋषिकेश- 249192
2. सिंह राम हर्ष (2007) स्वस्थवृत्त-विज्ञान | चौखम्बा सांस्कृतिक प्रतिष्ठान ।
3.ज्योतिर्मयानंद (1999) व्यावहारिक योग। इंटरनेशनल योग सोसाइटी, लालबाग लोनी, 201102, गाजियाबाद, उत्तरप्रदेश
4. वशिष्ठ संहिता (1984) कैवल्यधान श्रीमन्माधवयोग मंदिर समिति, लोनावाला (पन्त) महाराष्ट्र |

22.13 बोध प्रश्नोत्तर

१) योगी स्वात्मा राम ।
२) घेरण्ड मुनि ।
३) तीन ध्यानात्मक आसन । ,विश्रान्तिदायक ,शरीर संवर्धनात्मक –
४) ध्यानात्मक ।
५) स्थिरसुखमासनम् पा).यो.सू.(46/2

22.14 अभ्यास प्रश्न

१) आसन का अर्थ एवं परिभाषा लिखिए ।
२) आसनों का सामान्य परिचय दीजिए ।
३) आसनों का वर्गीकरण करके स्पष्ट कीजिए ।
४) महर्षि पतञ्जलि अनुसार सिद्धि का क्या उपाय है ?
५) महर्षि पतञ्जलि अनुसार आसन सिद्धि का क्या फल है ?

त्रयोविंशति पाठ
खड़े होकर किए जाने वाले आसन

23.1 प्रस्तावना

23.2 उद्देश्य

23.3 ताडासन

23.4 वृक्षासन

23.5 त्रिकोणासन

23.6 पादहस्तासन

बोध प्रश्न

23.7 ग्रन्थ का मूलपाठ

23.8 सारांश

23.9 शब्दावली

23.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

23.11 सहायक ग्रन्थ

23.12 बोध प्रश्नोत्तर

23.13 अभ्यास प्रश्न

23.14 परियोजना कार्य

23.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व आपने सूर्यनमस्कार का अध्ययन किया । जिसमें आपने समझा कि सूर्यनमस्कार एक सम्पूर्ण व्यायाम हैं । आसन से स्थिरता, स्वास्थ्य तथा अंग में हल्कापन आता है । स्थिर व सुखकर शारीरिक स्थिति मानसिक संतुलन लाती है और मन की चंचलता को भी रोकती है। आसन शारीरिक व्यायाम मात्र नहीं है वे शारीरिक स्थितियां है। शताब्दियों पूर्व शरीर की प्रत्येक मांसपेशी, नाड़ी और ग्रंथि को प्रयोग में लाने के लिए आसनों का विकास हुआ है। योगी आसनों के अभ्यास से शरीर पर विजय प्राप्त करता है और उसे आत्मा के योग्य साधन बनाता है। **व्यास के अनुसार** आसनों के सिद्ध होने पर साधक द्वन्द्वों जैसे शीत-उष्ण, क्षुधा-पिपासा आदि की अनुभूति से पीड़ित नहीं होता। इस प्रकार द्वन्द्वों को सहन करने की नैसर्गिक शक्ति प्राप्त हो जाती है – **'शीतोष्णादिभिर्द्वन्द्वैरासनजयान्नाभिभूयते'** (व्यास भाष्य 2/48)

प्रस्तुत पाठ में आप खड़े होकर किए जाने वाले आसनों को जानेंगे और उनकी विधि, लाभ एवं सावधानियों को समझेंगे -

23.2 उद्देश्य – इस पाठ को पढकर आप जान पायेंगे -

- ❖ ताडासन विधि, प्रभाव, सावधानियाँ आदि का परिचय
- ❖ वृक्षासन विधि, प्रभाव, सावधानियाँ आदि का परिचय
- ❖ त्रिकोणासन विधि, प्रभाव, सावधानियाँ आदि का परिचय
- ❖ पादहस्तासन विधि, प्रभाव, सावधानियाँ आदि का परिचय
- ❖ आसनों से सम्बन्धित विशेष तथ्यों की जानकारी
- ❖ आसनों का शारीरिक-मानसिक एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य पर प्रभाव

23.3 ताडासन

1. **शब्दार्थ एवं नामकरण** – ताड का अर्थ ताड वृक्ष, पहाड़ । इस आसन में शरीर की आकृति ताड अथवा पहाड़ के समान हो जाती है, बिल्कुल अचल । अत: इसे ताडासन कहते है ।
2. **नाम** – संस्कृत = ताडासनम् , हिन्दी = ताड आसन और अंग्रेजी = Palm tree pose, Mountain pose ।
3. **आसन क्रम** –

   प्रकार एक – (ताडासन)

   - सर्वप्रथम एडि और पञ्जों को मिलाकर स्व स्थान पर खड़े हो जायें और हाथों को जँघाओं से स्पर्श कर के रखें ।

- पूरक करते हुए दोनों हाथों को सामने से ऊपर की ओर उठायें और सम्पूर्ण शरीर को तान दें अथवा हाथों की अँगुलियों को आपस में फँसाकर ऊपर की ओर पूर्ण खिंचाव दें।
- भूमि से एड़ियों को उठाकर रखें और श्वास कुम्भक की स्थिति में अथवा सामान्य रखें।
- रेचक करते हुए हाथों और एडियों को धीरे-धीरे नीचे लाकर सामान्य स्थिति में आयें।

प्रकार दो – (तिर्यक् ताडासन यानि टेढा अथवा तिरछा ताडासन)

- सर्वप्रथम साधक ताडासन में खड़ा हो जायें।
- पूरक करते हुए हाथों की अँगुलियों को आपस में फँसाकर ऊपर की ओर पूर्ण खिंचाव दें।
- फिर रेचक करते हुए कटिप्रदेश से दाँयी तरफ धीरे-धीरे शरीर को झुका दें।
- अन्तिम स्थिति में कुछ क्षणों तक रुकें और बाह्य कुम्भक करके रखें।
- पूरक करते हुए शरीर को धीरे-धीरे सीधा करें।
- इसी प्रकार रेचक करते हुए धीरे-धीरे शरीर को बाँयी तरफ झुका दें।
- पुन: पूरक करके सामान्य स्थिति में आयें।
- इस प्रकार दो से तीन बार आवृति करें।

4. **कालावधि** – 10 से 30 सैकण्ड तक अथवा क्षमतानुसार रोकें।
5. **प्रभाव** –
    1) शारीरिक –
        - कद वृद्धि, रक्तसंचार उत्तम, संधिवात रोग में लाभकारी, भारीपन व आलस्य समाप्त होना, एकाग्रता बढना, सहनशीलता एवं धैर्य का विकास होना आदि।
        - स्त्रियों के लिए अत्यन्त लाभकारी है।
        - शरीर की समस्त माँसपेशियों का विकास होता है।
        - उदर से सम्बन्धित दोष नष्ट होना, पृष्ठभाग और उदर की स्थूलता कम होती हैं।
        - पक्षाघात, कमर दर्द, उरोवेदना, घुटनों में दर्द आदि में विशेष उपयोगी है।
    2) मानसिक –
        - प्रमाद और तनाव को दूर करता है तथा शरीर और मन की एकाग्रता बढाता है।
    3) आध्यात्मिक –
        - सुषुम्ना नाडी की सक्रियता बढती है।
6. **चक्रों पर प्रभाव** – मूलाधार से सहस्रार चक्र तक समस्त चक्रों पर प्रभाव पड़ता हैं।

7. **ग्रन्थियों पर प्रभाव** – पीयूष से लेकर पौरुषग्रन्थि पर्यन्त समस्त ग्रन्थियाँ प्रभावित होती हैं।
8. **सावधानियाँ** –
    - जिन विद्यार्थियों को चक्कर आयें वे न करें अथवा क्षमतानुसार अभ्यास करें।
    - सिर दर्द, उच्चरक्तचाप, निम्नरक्तचाप, गर्भवती महिलाओं को अभ्यास वर्जित हैं।
    - ज्यादा आयु के व्यक्ति पाँव के पञ्जों पर अभ्यास न करें।
9. **विशेष** –
    - शंखप्रक्षालन क्रिया में तिर्यक् ताडासन का अभ्यास किया जाता है।
    - पाँव के घुटनों को खींचकर, नितम्ब संकुचित कर, पेट को अन्दर खींचकर, वक्षस्थल को फूलाकर, गर्दन सीधी और दृष्टि सामने रखने का प्रयत्न करें।
    - दोनों भुजाएँ कानों से स्पर्श करके रखें।
    - दोनों पाँवों पर शरीर का भार सामान्य रखें अन्यथा शरीर पर दुष्प्रभाव पड़ेगा।
    - शरीर को आगे और पीछे की तरफ न झुकायें।

23.4 वृक्षासन

1. **शब्दार्थ एवं नामकरण** – इस आसन में शरीर की आकृति वृक्ष (पेड़) के समान होने के कारण इसे वृक्षासन कहते है।
2. **नाम** – संस्कृत = वृक्षासनम् , हिन्दी = वृक्षा आसन और अंग्रेजी = Tree Pose।
3. **श्लोक एवं अर्थ** –

    वामोरुमूलदेशे च याम्यं पादं निधाय तु।
    तिष्ठेत्तु वृक्षवद्भूमौ वृक्षासनमिदं विदु: ॥ (घेरण्ड संहिता 2/34)

अर्थ - वाम जंघा की जड़ में दायें पैर को रखकर पुन: वृक्ष के समान भूमि पर खड़ा हो, यही वृक्षासन है।

4. **आसन क्रम** –
    - सर्वप्रथम हम खड़े होकर दोनों पाँवों को मिलाकर, हाथों को दोनों ऊरुप्रदेश से स्पर्श रखते हुए दृष्टि किसी एक निश्चित बिन्दु पर केन्द्रित करते हैं।
    - फिर हाथों के सहारे श्वास भरते हुए दाहिने पैर को मोड़कर तलवे को बायीं जाँघ के मूल भाग पर रखकर श्वास रेचक करें।
    - श्वास पूरक करते हुए दोनों हाथों को धीरे-धीरे ऊपर ले जाकर एक साथ मिला लें।

- अन्तिम स्थिति में श्वास-प्रश्वास समान्य बना कर रखें।
- शारीरिक सन्तुलन बनाये रखते हुए अन्तिम स्थिति में यथाशक्ति रोकर रखें।
- फिर धीरे-धीरे शरीर को उसी क्रम में वापिस लेकर आना और सम स्थिति में आकर खड़े हो जाना।
- एक पाँव के अभ्यास के पश्चात् सन्तुलन करने के लिए दूसरे पाँव से उसी क्रम में अभ्यास को पूर्ण करेंगे।
- शरीर के आकुञ्चन में रेचक और प्रसारण में पूरक करें।

5. **कालावधि** – एक से तीन मिनट अथवा यथा शक्ति सम्भव हों, परन्तु धीरे-धीरे समय काल को बढायें।

6. **प्रभाव** –

    1) शारीरिक –

        - इस आसन का अभ्यास सन्तुलन की प्राप्ति के लिए, पैरों की माँसपेशियों और उदर क्षेत्र को मजबूत बनाने के लिए किया जाता है।
        - यह वृक्क एवं मूत्राशय की अतिक्रियाशीलता को कम करता है।
        - यह ब्रह्मचर्य का पालन के लिए वीर्य रक्षा की क्षमता विकसित करता है।
        - शरीर में समत्व का भाव पुष्ट होता है।
        - शरीर की अकड़न तथा कम्पवात रोग को समाप्त करने में सहायक है।
        - दृष्टिदोष दूर करता है।

    2) मानसिक –

        - यह अभ्यास एकाग्रता और संकल्प शक्ति के लिए सर्वोत्तम है।
        - आज्ञाचक्र पर ध्यान लगाने से स्मरण शक्ति तीव्र होती है।
        - आत्मबल वृद्धि के साथ-साथ साधक धैर्यवान बनने लगता है।

    3) आध्यात्मिक –

        - यह सुषुम्ना नाडी को जाग्रत करने में सहायक है।
        - साधक साधना में उत्तरोत्तर सफलता प्राप्त करता है जैसे वृक्ष सदा आकाश की ओर गमन करता है।
        - यह अभ्यास सात्त्विकता को बढाता है।

7. **चक्रों पर ध्यान एवं प्रभाव** –अनाहत और आज्ञा चक्र प्रभावित होतें हैं।

8. **ग्रन्थियों पर प्रभाव** – जनन व शुक्रग्रन्थि, अधश्चेतक मस्तिष्क (हाइपोथाइमस) ग्रन्थियाँ।

9. **सावधानियाँ** –

    - जो खड़ने में असमर्थ हों, उनको इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए।
    - घुटनों का ओप्रेशन हो चुका है, वह न करें।

10. **विशेष** –

    - जिस पाँव का घुटना मुड़ा हुआ हो उसको बाहर की ओर फैलाकर एक सीध में रखें।
    - दोनों हाथों की भुजाएँ कानों के स्पर्श रहें।

23.5 त्रिकोणासन

1 **श्ब्दार्थ एवं नामकरण** – त्रिक् का अर्थ तीन, कोण का अर्थ भुज अथवा त्रिभुज । इस आसन में शरीर की आकृति त्रिभुज के समान होने के कारण इसे 'त्रिकोणासन' कहते हैं ।

2 **नाम** – संस्कृत = त्रिकोणासनम् , हिन्दी = त्रिकोण आसन और अंग्रेजी = Triangle pose ।

3 **आसन क्रम** –

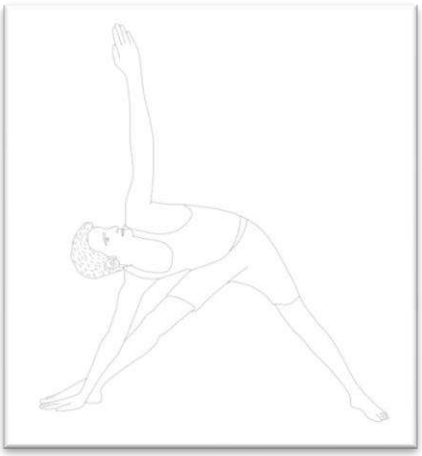

- सर्वप्रथम सम स्थिति में खड़े हो जायें ।
- फिर दोनों पाँवों के मध्य तीन से चार फिट का अन्तर बनायें ।
- पूरक करते हुए दोनों हाथों को कन्धों के समानन्तर लेकर आयें ।
- तत्पश्चात् रेचक करते हुए दाँयें पाँव के पञ्जें को दाँयी तरफ घुमा दें और धीरे-धीरे दाँयें हाथ की हथेली को दाँयें पाँव के पञ्जें से स्पर्श करायें ।
- तत्पश्चात् बाँयें हाथ की हथेली को सामने की तरफ करते हुए 90 डिग्री का कोण बनायें और धीरे-धीरे ग्रीवा को घुमाकर बाँये हाथ की मध्यमा अँगुली पर दृष्टि केन्द्रित करें ।
- अन्तिम अवस्था में श्वास की स्थिति बाह्य कुम्भक अथवा धीमी गति से श्वास-प्रश्वास करें ।
- फिर पूरक करते हुए धीरे-धीरे दोनों हाथों को कन्धों के समानन्तर लेकर आयें ।
- रेचक करते हुए दाँयें पाँव के पञ्जें की स्थिति को ठीक करें और दोनों हाथों को सामान्य स्थिति में लाकर पाँवों को परस्पर मिला लें ।
- इसी क्रम में बाँयी तरफ से भी करें ।

4 **कालावधि** – दस सैकण्ड से एक मिनट तक अथवा क्षमतानुसार समय बढायें ।

5 **प्रभाव** –

1) शारीरिक –

- उदर विकार, मन्दाग्नि, अजीर्णता, कोष्ठबद्धता, पृष्ठशूल (कमर दर्द), ग्रीवा से सम्बन्धित रोग और पित्ताधिक्य जैसे शारीरिक रोगों को दूर करने में उत्तम अभ्यास है ।
- कटिप्रदेश की अतिरिक्त मेद (चर्बी), श्वसन से सम्बन्धित रोग, मधुमेह, उरोवेदना आदि रोगों लाभप्रद है ।
- नितम्बास्थि को भी सुदृढ बनाता हैं तथा नितम्ब और जँघाओं की स्थूलता घटाता है ।
- शरीर की शारीरिक क्षमता और कद में वृद्धि करता है ।

- मेरुदण्ड की तन्त्रिका तन्त्र को सुदृढ बनाता है।

2) मानसिक –

- चिन्ता, तनाव और उतावलेपन को समाप्त कर मानसिक स्थिरता एवं धैर्य में वृद्धि करता है।

3) आध्यात्मिक –

- कुण्डलिनी जाग्रण में सहायक हैं।
- साधक नियमित अभ्यास से 'संयमित' होने लगता है।

6 **चक्रों पर प्रभाव** – विशुद्धि और आज्ञाचक्र।

7 **ग्रन्थियों पर प्रभाव** – वटु-परावटु, अग्न्याशय, अधिवृक्क, कोलन आदि ग्रन्थियाँ।

8 **सावधानियाँ** –

- उच्च व निम्नरक्तचाप, चक्कर आना, सिर दर्द, घुटने का ओप्रेशन, गठिया रोग से अधिक पीड़ित, गर्भावस्था, अधिक कमर दर्द, ग्रीवा शूल, अधिक पित्त बनना आदि व्याधियों में योगाभ्यास निषेध है अथवा योगप्रशिक्षक के सान्निध्य में अभ्यास करें।

9 **विशेष** –

- दोनों पाँवों के घुटने पूर्णतया खिंचाव में रखें अर्थात् घुटनें न मोड़ें।
- शरीर को आगे और पीछे की तरफ न झुकायें।
- नितम्ब त्रिकास्थि को मध्य में ही रखें अधिकांश अभ्यासी सरलता की दृष्टि से दाँये और बाँये तरफ शरीर को बढा लेते हैं।

23.6 पादहस्तासन

1. **शब्दार्थ एवं नामकरण** – पाद यानि पाँव, हस्त = हाथ, इस आसन में दोनों हाथ पाँव के पार्श्व में स्थापित करके पृष्ठभाग को ताना जाता है इसलिए इसको पादहस्तासन और पश्चिमोत्तानासन भी कहा जाता है।
2. **नाम** – संस्कृत = पादहस्तासनम् , हिन्दी = पाद हस्त आसन और

   अंग्रेजी = Hand to foot pose।

3. **आसन क्रम** –

- सर्वप्रथम ताडासन में खड़े हो जायें और हाथों की हथेलियों को जँघाओं के आगे स्पर्श करें।
- श्वास भरते हुए दोनों हाथों को ऊपर की ओर ले जायें और भुजाओं को कानों से स्पर्श करके रखें।

- रेचक के साथ, कमर से खिंचाव देते हुए, दोनों हाथों को धीरे-धीरे पैरों के बगल में स्थापित करें और हथेलियों को भूमि पर स्पर्श करें।
- तत्पश्चात् सिर को घुटनों से स्पर्श करें।
- कुछ देर इसी स्थिति में रुकें और फिर श्वास भरते हुए दोनों हाथों को धीरे-धीरे ऊपर उठायें।
- श्वास छोड़ते हुए हाथों को नीचे लायें।
- इस आसन के बाद शिथिल दण्डासन में खड़े होकर रक्त के प्रवाह को अनुभव करें।

4. **कालावधि** –10 से 30 सैकण्ड तक अथवा साधक धीरे धीरे अभ्यास के साथ समयावधि को यथासम्भव बढायें।

5. **प्रभाव** –

1) शारीरिक -

- यकृत और प्लीहा सुदृढ, जठराग्नि प्रदीप्त, कृमि विकार दूर करता और मधुमेह के रोगियों के लिए भी लाभदायक है।
- यह कब्ज, अजीर्ण तथा शुक्र दौर्बल्य को दूर करता है तथा उरो पीडा (साइटिका) होने की संभावना को टालता है।
- पेट, कटि व नितम्ब प्रदेश की अतिरिक्त चर्बी को घटाकर शरीर में मृदुता और लघुता को विकसित करता है।
- वृक्क, मूत्र संस्थान और स्त्री व पुरुषों के प्रजनन से सम्बन्धित समस्त अवयवों को सुदृढ बनाता हैं।
- यह शरीर का संधिवात को समाप्त कर रोगी को नवजीवन प्रदान करता है।
- मज्जा तन्तु के दोष समाप्त होते है और मेरुदण्ड के स्नायु तन्त्रिका सुचारु रूप से कार्य करने लगती है; जिसके परिणाम स्वरूप पैरों की जकड़न समाप्त होती है।
- मस्तिष्क पर रक्त का प्रवाह होने से स्मरणशक्ति, नेत्र ज्योति में वृद्धि, बालों का न झड़ना तथा मुखमण्डल की कान्ति को बढाता हैं।

2) मानसिक –

- यह आवेग और उत्तेजनाओं को शान्त करता है और स्मरणशक्ति का विकास करता है।
- नियमित अभ्यास से चित्त शान्त होता है।

3) आध्यात्मिक –

- इस आसन से प्राण का सुषुम्ना नाड़ी मे संचार होना प्रारम्भ होता है जो आत्मबोध कराने मे साहयक है।
- साधक नियमित अभ्यास से अध्यात्मिक उन्नति कर सकता है।

6. **चक्रों पर प्रभाव** – मूलाधार, स्वाधिष्ठान,मणिपूर, सहस्त्रारचक्र।

7. **ग्रन्थियों पर प्रभाव** – जननग्रन्थि (गोनाइड्स),अधिवृक्क (एड्रिनल) और क्लोम ग्रन्थियों पर प्रभाव पड़ता है

8. **सावधानियाँ** –

- उच्च रक्तचाप, हृदय रोगी, चक्कर आने पर, ग्रीवाकशेरुका (स्पोण्डिलाइटिस) से पीड़ित व्यक्तियों को अभ्यास नहीं करना चाहिए।
- पृष्ठशूल (स्लिप डिस्क), आन्त्रवृद्धि (हर्निया), मेरूदण्ड से सम्बन्धित दोष तथा पेट में अल्सर की शिकायत होने पर इसे न करें।
- गर्भवती स्त्रियाँ इस अभ्यास को न करें।

9. **विशेष –**

- नूतन योगाभ्यासी प्रारम्भ में पाँव के अँगूठों को पकड़कर ही रखें; सिर घुटनों से स्पर्श न करें।
- आसन करते समय झटके के साथ नहीं करना चाहिए।

बोध प्रश्न

१. ताडासन का अभ्यास खड़े होकर किया जाता है या बैठकर।

२. एकाग्रता और संकल्प शक्ति के लिए सर्वोत्तम आसन है।

३. ताडासन अथवा पादहस्तासन में से कौनसा आसन कमर दर्द में नही करना।

23.7 ग्रन्थ का मूलपाठ

वामोरुमूलदेशे च याम्यं पादं निधाय तु।
तिष्ठेत्तु वृक्षवद्भूमौ वृक्षासनमिदं विदु: ॥ (घेरण्ड संहिता 2/34)

23.8 सारांश

स्वामी स्वात्माराम ने हठयोग प्रदीपिका में आसनों की सिद्धि के विषय में कहा है कि – **"कुर्यात्तदासनं स्थैर्यमारोग्यं चांगलाघवम्"** 1/17 आसनों के सिद्ध हो जाने पर योगी को स्थिरता और अंगलाघव की प्राप्ति होती है। इस प्रकार हठयोग के आसनों से जहाँ सिद्धि प्राप्त होती है वहाँ स्थिरता, आरोग्यता और अंग लाघव भी प्राप्त होता है। महर्षि पतञ्जलि ने अपने योगसूत्र में आसनों की परिभाषा **"स्थिरसुखमासनम्"** 2/46 दी है।

23.9 शब्दावली

१. ताडासन : शरीर की आकृति ताड अथवा पहाड़ के समान।

२. अचल : स्थिर।

३. पूरक : श्वास लेना।

४. रेचक : श्वास छोड़ना।

५. कुम्भक : श्वास रोकना।

६. संधिवातरोग : शरीर के जोड़ों का दर्द।

७. उदर स्थूलता : पेट का मोटापा।

८. रक्तचाप : खून का दबाव।

९. त्रिकोण : त्रिभुज।

23.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. योगदर्शने स्वास्थ्यविज्ञानम् (2014), डा. धरणी दुड़गेल। प्रतिभा प्रकाशन, शक्तिनगर, दिल्ली 110007

2. योगासनों के स्वरूप एवं उनकी वैज्ञानिकता (2019), डा. नवनीत मलेठिया | आइडियल पब्लिकेशन, जयपुर – 302003।

3. हठयोग ,(1985)सुरेन्द्र कुमार शर्मा। प्रकाशक 110007 –दिल्ली ,जवाहर नगर ,ईस्टर्न बुक लिंकर्स :

4. Positive Health, Dr. R Nagarathna and Dr. H R Nagendra, Published by – Swami Vivekananda Yoga Prakashana, Bangalore – 560019.

5. योगदीपिका (2005), बी.के.एस.आयंगार। ओरियंट लॉंगमैन प्राइवेट लिमिटेड, हैदराबाद-500029 (आन्ध्रा प्रदेश), भारत।

23.11 सहायक ग्रन्थ

1. डा. अमृत लाल गुर्वेन्द्र, डा. गायत्री गुर्वेन्द्र (2020), योगाऽमृत। किताब महल, दरियागंज, नई दिल्ली

2 योग विज्ञान, हठयोग परिचय (2002), मानव चेतना एवं योग विज्ञान संकाय, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, गायत्रीकुंज-शान्तिकुंज विस्तार, हरिद्वार।

3. सरल योग शिक्षा (2015), डा. वासुदेव शर्मा, जीवन पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लि. इण्डिया।

4. योग (2019), प्रकाशक - विवेकानन्द केन्द्र प्रकाशन ट्रस्ट, चैन्नै (पश्चिम बंगाल), भारत।

23.12 बोध प्रश्नोत्तर

१. बैठकर।

२. वृक्षासन।

३. पादहस्तासन।

23.13 अभ्यास प्रश्न

१. ताडासन का शब्दार्थ, विधि, लाभ एवं सावधानियों का वर्णन कीजिए।

२. त्रिकोणासन का शब्दार्थ, विधि, लाभ एवं सावधानियों का वर्णन कीजिए।

३. पादहस्तासन का शब्दार्थ, विधि, लाभ एवं सावधानियों का वर्णन कीजिए।

23.14 परियोजना कार्य

१. वृक्षासन का चित्र बनाकर चार्ट तैयार करें।

चतुर्विंशति पाठ
बैठकर किए जाने वाले आसन

24.1 प्रस्तावना

24.2 उद्देश्य

24.3 गोरक्षासन

24.4 पद्मासन

24.5 वज्रासन

24.6 उष्ट्रासन

24.7 वक्रासन

बोध प्रश्न

24.8 ग्रन्थ का मूलपाठ

24.9 सारांश

24.10 शब्दावली

24.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

24.12 सहायक ग्रन्थ

24.13 बोध प्रश्नोत्तर

24.14 अभ्यास प्रश्न

23.15 परियोजना कार्य

24.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व आपने खड़े होकर किए जाने वाले आसनों का अध्ययन किया । जिसमें आपने शरीर के विभिन्न अंगों पर पड़ने वाले प्रभाव को अनुभव किया । आसन से स्थिरता, स्वास्थ्य तथा अंग में हल्कापन आता है । स्थिर व सुखकर शारीरिक स्थिति मानसिक संतुलन लाती है और मन की चंचलता को भी रोकती है। आसन शारीरिक व्यायाम मात्र नहीं है वे शारीरिक स्थितियां है। शताब्दियों पूर्व शरीर की प्रत्येक मांसपेशी, नाड़ी और ग्रंथि को प्रयोग में लाने के लिए आसनों का विकास हुआ है। योगी आसनों के अभ्यास से शरीर पर विजय प्राप्त करता है और उसे आत्मा के योग्य साधन बनाता है।

प्रस्तुत पाठ में आप बैठकर किए जाने वाले आसनों को जानेंगे और उनकी विधि, लाभ एवं सावधानियों को समझेंगे -

24.2 उद्देश्य – इस पाठ को पढकर आप जान पायेंगे -

- ❖ गोरक्षासन विधि, प्रभाव, सावधानियाँ आदि का परिचय
- ❖ पद्मासन विधि, प्रभाव, सावधानियाँ आदि का परिचय
- ❖ वज्रासन विधि, प्रभाव, सावधानियाँ आदि का परिचय
- ❖ उष्ट्रासन विधि, प्रभाव, सावधानियाँ आदि का परिचय
- ❖ वक्रासन विधि, प्रभाव, सावधानियाँ आदि का परिचय
- ❖ आसनों से सम्बन्धित विशेष तथ्यों की जानकारी
- ❖ आसनों का शारीरिक-मानसिक एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य पर प्रभाव

24.3 गोरक्षासन

1 **शब्दार्थ एवं नामकरण** – गो का अर्थ यहाँ इन्द्रियों से है और उसकी रक्षा अर्थात् उन पर विजय प्राप्त करना है । इस आसन के अभ्यास से इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना सरल है और गोरक्षासन योगी गोरक्षनाथ द्वारा सिद्ध किया गया है इस लिए इसे गोरक्षासन कहते हैं ।

2 **नाम** – संस्कृत = गोरक्षासनम् , हिन्दी = गोरक्ष आसन और अंग्रेजी = Cowherd Pose, Gorakhnath's Pose ।

3 **श्लोक** एवं **अर्थ** –

जानूर्वोरन्तरे पादौ उत्तानौव्यक्तसंस्थितौ ।
गुल्फौ चाञ्छाद्य हस्ताभ्यामुत्तानाभ्यां प्रयत्नत: ॥ (घेरण्ड संहिता 2/25)

दोनों पैरों को उरुओं और जंघाओं के बीच में चित्त रखकर अव्यक्त (गोपनीय) भाव से रखे, फिर दोनों हाथों से एड़ियों को पकड़ ले ।

4 **आसन क्रम** –

- दोनों पैरों को सामने फैलाकर बैठ जाते है।
- घुटनों को मोड़कर, तलवों को मिलाकर एड़ियों को ऊपर उठा देते हैं।
- घुटने और पैर के पंजे जमीन पर रहते हैं।
- इससे श्रोणि प्रदेश, नितम्ब और प्रजननेन्द्रियाँ एड़ी के पीछे रहती हैं।
- हाथों को नितम्बों के पीछे इस प्रकार रखते हैं कि अँगुलियाँ बाहर की ओर रहें, शरीर को सामने की ओर झुकाते हुए ऊपर उठाते हैं कि पाँव जमीन के लम्बवत् हो जायें।
- नाभि के सामने से दोनों कलाइयों को आर-पार करते हुए बायीं एड़ी को दांये हाथ से तथा दायीं एड़ी को बायें हाथ से पकड़ लेते हैं।

- मेरुदण्ड को सीधा रखते हुए सामने की ओर देखते है।
- इस अवस्था में जालन्धर बन्द एवं नासिकाग्र दृष्टि का अभ्यास भी करते हैं। सामाम्य श्वास लेते हुए जितनी देर तक आराम से बैठ सकते हैं, उतनी देर बैठिये।

5 **कालावधि** – एक से दस मिनट तक अथवा यथासामर्थ्य से समय को बढायें।

6 **प्रभाव** –

1) शारीरिक -

- प्रजनन इन्द्रियों, कामवासना और वीर्य स्खलन पर नियन्त्रण प्राप्त किया जाता है।
- कण्ठ के संकुचन से गले के रोगों का नाश होता है।
- भृकुटि पर ध्यान करने से नेत्र विकार नष्ट होता है।
- अपान वायु शुद्ध होती है।
- घुटनों, पिण्डलियों और जांघों के विकार दूर हो कर स्नायु में मजबूती आती है और पैरों को बहुत अधिक लचीला बना देता है।
- नितम्बास्थि में लचीलापन आता है।

2) मानसिक –

- इसमें दृष्टि भृकुटि पर एकाग्र करने से मन तुरंत शान्त होता है।
- इन्द्रियाँ शीघ्रता से वश में होने लगती है।

3) आध्यात्मिक -

- यह आसन अपान के प्रवाह को ऊर्ध्वगामी बनाकर ध्यान की अवस्था लाने में सहायक होता है।

7 **चक्रों पर प्रभाव** – मूलाधार, स्वाधिष्ठानचक्र।

8 **ग्रन्थियों पर प्रभाव** – प्रजनन व पौरुषग्रन्थि, अधिवृक्क ग्रन्थि (एड्रिनल)।

9 **सावधानियाँ** –

- कमर दर्द से पीड़ित, पुराना गठिया रोग होने पर यह अभ्यास न करें।
- अर्श (बवासीर) रोग में भी निषेध है।

10 विशेष –

- यथाशक्ति मेरूदण्ड को एक सीध में रखें।
- दृष्टि भृकुटि पर एकाग्र कर के रखें।

24.4 पद्मासन

1. **शब्दार्थ एवं नामकरण** – पद्म का अर्थ कमल का पुष्प। इस आसन में बैठने पर शरीर कमल के समान दिखता है ; इसलिए इस आसन को पद्मासन कहा जाता है। साधना के लिए यह एक उत्कृष्ट आसन है।
2. **नाम –** संस्कृत = पद्म , हिन्दी = कमल आसन और अंग्रेजी = Louts Pose , अन्य नाम कमलासन, श्री आसन, आदि आसन, ब्रह्मासन, मुक्तपद्मासन।
3. श्लोक एवं अर्थ –

वामोरुपरि दक्षिणं हि चरणं संस्थाप्य वामं तथा,

दक्षोरूपरि पश्चिमेन विधिना कृत्वा कराभ्यां दृढम्।

अङ्गुष्ठौ हृदये निधाय चिबुकं नासाग्रमालोकयेद्,

एतद्व्याधिविकारनाशनकरं पद्मासनं प्रोच्यते॥ (घेरण्ड संहिता, अध्याय 2, श्लोक 9)

अर्थ - वाम जंघा के ऊपर दक्षिण जंघा को रखकर तथा दक्षिण जंघा पर वामचरण को स्थापित करके तथा पीछे से दोनों हाथों से पैरों के अगुष्ठों क दृढता से पकड़कर तथा चिबुक (ठोडी) को हृदय पर निधान करके नासिका के अग्रभाग को देखना चाहिए। इससे सभी रोगों का शमन होता है। यह पद्मासन कहलाता है।

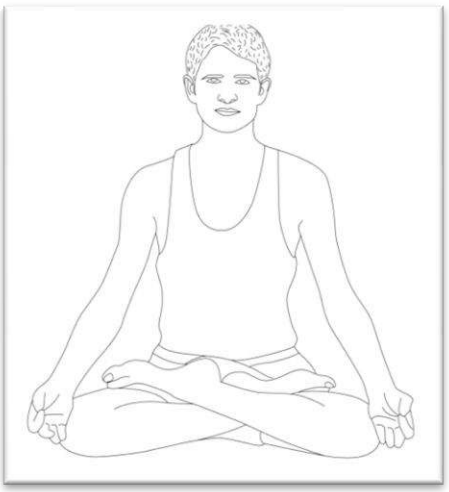

5 आसन क्रम –

प्रकार एक (पद्मासन)

- इस आसन को करने के लिए सर्वप्रथम पैरों को सामने फैलाते है, फिर दाँयें पैर को उठाकर बाँयी जँघा के ऊपर रखते हैं।
- पाँव का तलवा ऊर्ध्वमुखी रहे तथा एडी के अग्रभाग के निचले हिस्से को स्पर्श करे और इसी तरह दूसरे पाँव से भी करें।
- अन्तिम अवस्था में दोनों घुटनें भूमि से स्पर्श होने चाहिए।

- सिर तथा पीठ को बिना जोर लगाए सीधा रखने का प्रयास करें और श्वास-प्रश्वास सामान्य रखें।
- यह ध्यानात्मक आसन है अत: अभ्यास में आँखों को आवश्यकतानुसार बन्द कर सकते हैं। इसे ही पद्मासन कहते हैं।[1]

प्रकार दो (अंगुष्ठबद्ध पद्मासन)

- सर्वप्रथम पद्मासन में बैठ जायें।
- तत्पश्चात् पूरक करते हुए दोनों हाथों को कमर के पीछे ले जाकर, इस प्रकार से निकालें जैसे गणितीय गुणा का निशान काटता है वैसे ही हाथों को एक दूसरे से काटते हुए, दाँयें हाथ से दाँयें पाँव के अँगुष्ठ को और बाँयें हाथ से बाँयें पाँव के अँगुष्ठ को पकड़ें।
- अन्तिम स्थिति में श्वास-प्रश्वास सामान्य और त्रिकास्थि, मेरुदण्ड, ग्रीवा, दृष्टि एक सीध में रखें।
- यह आसन थोड़ा कठिन है परन्तु पद्मासन के सिद्ध हो जाने के बाद इसका अभ्यास किया जा सकता है।
- अधिक अभ्यासी इस आसन में आगे की ओर झुककर भूमि पर मस्तक को स्पर्श कर सकते हैं।

6 कालावधि – एक से पाँच मिनट तक अथवा साधक के अभ्यास पर निर्भर करता है।

7 आसन फलम् –

एतद्व्याधिविकारनाशनकरं पद्मासनं प्रोच्यते ॥[2]
देतद्व्याधिविनाशकारि यमिनां पद्मासनं प्रोच्यते ॥[3]
पद्मासनं भवेदेतत्सर्वव्याधिविषापहम् ॥[4]
इदं पद्मासनं प्रोक्तं सर्व व्याधिविनाशनम्।[5]

8 प्रभाव –

1) शारीरिक –

- यह शारीरिक शांति प्रदान करने में सहायक है।

[1] योगविज्ञान, हठयोग परिचय, पृष्ट 103
[2] घेरण्ड संहिता, अध्याय 2, श्लोक 9
[3] हठयोगप्रदीपिका, प्रथमोपदेश: , श्लोक 44
[4] उपनिषत्सञ्चयनम्, त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषत्, मन्त्रभाग-2 , श्लोक 39
[5] शिव संहिता, तृतीय पटल:, श्लोक 105-108

- यह प्राणवायु की आवश्यकता को कम करता है और श्वास नियन्त्रण के लिए उपयुक्त आसन है ।
- जोड़ों के दर्द को धीरे-धीरे नष्ट करता है। पेशिय तनाव कम हो जाता है। रक्तचाप घट जाता है । शारीरिक स्थिरता से मन में भी स्थिरता आती है ।
- अत्यधिक ठण्ड में इसे लगाने से गर्मी का संचार होने लगता है ।
- यह मेरूदण्ड को सबल और पाचनक्रिया को मजबूत बनाता हैं ।
- इससे त्रिकास्थि और गुदास्थि प्रदेश की तन्त्रिकाएँ मजबूत बनती हैं ।
- यह कब्ज़, गठिया, फील-पाँव और फाइलेरिया आदि रोगों में लाभकारी है ।
- अपान वायु को शक्ति मिलती है ।
- मेधा शक्ति का विकास होता है ।
- इससे इन्द्रियों को नियन्त्रित किया जा सकता है ।

2) मानसिक –

- इसका प्रभाव मस्तिष्क व मानसिक स्थिरता पर पड़ता हैं ।
- इससे मन को अन्तर्मुखी बनाने में सहायता मिलती है।

3) आध्यात्मिक –

- यह प्राण के प्रवाह को मूलाधार से सहस्रार की ओर बढाकर ध्यान की अनुभूति कराता है । अत: यह कुण्डलिनी जागृत करने में उत्तम अभ्यास है ।
- समस्त योग शास्त्रों में इसे ध्यान के अभ्यास हेतु अत्यन्त श्रेष्ठ आसन स्वीकारा हैं ।

9 चक्रों पर प्रभाव – मूलाधार और स्वाधिस्ठान चक्रों पर प्रभाव पड़ता है ।[6]

10 ग्रन्थियों पर प्रभाव – यह जनन व शुक्रग्रन्थि एवं अधिवृक्क ग्रन्थियों को प्रभावित करता है ।[7]

8 सावधानियाँ –

- घुटनों के दर्द व शल्यचिकित्सा, उरोवेदना, मेरुदण्ड का ओप्रेशन व अत्यधिक कष्ट आदि समस्याओं में अभ्यासी किसी प्रशिक्षक के सान्निध्य में ही करें ।
- यदि टखनों में मोच आई हुई हो तो अभ्यास ध्यानपूर्वक करें ।

9 विशेष –

- जो साधक पद्मासन न कर पायें व सुखासन में भी कर सकते हैं ।
- यदि पाँवों में बहुत ज्यादा सख्तपन व अकड़न हो तो तितली आसन अथवा घुटना घुमाने का अभ्यास करें ।
- आसन लगाने में अतिशीघ्रता न दिखायें, क्षमतानुसार ही बल का प्रयोग करें ।
- प्रारम्भ में अर्द्धपद्मासन को सिद्ध करें तत्पश्चात् नियमित अभ्यास से धीरे-धीरे पद्मासन सिद्ध होने लगता है ।

---

[6] जैनविश्वभारती संस्थान, जीवन विज्ञान प्रायौगिक, पृष्ट 45

[7] जैनविश्वभारती संस्थान, जीवन विज्ञान प्रायौगिक, पृष्ट 45

- अभ्यास के समय सजगता एवं जागरुकता बनी रहें।

24.5 वज्रासन

1. **शब्दार्थ एवं नामकरण** – वज्र का अर्थ कठोर, वज्र नाम की नाडी है जो पाचनसंस्थान से जुड़ी हुई है। इसमें दोनों जँघाएँ वज्र के समान और जठराग्नि भी कठोर से भी कठोर भोजन का पाचन करने में सक्षम हो जाती हैं। इस आसन में दोनों अर्थ पूर्ण सार्थक होते है। इसलिए इसे वज्रासन कहा जाता है।
2. **नाम** – संस्कृत = वज्रासनम् , हिन्दी = वज्र आसन और अंग्रेजी = Thunderbolt Pose।
3. **श्लोक एवं अर्थ** –

जङ्घाभ्यां वज्रवत्कृत्वा गुदापार्श्वे पदावुभौ।
वज्रासनं भवेदेतद्योगिनां सिद्धिदायकम् ॥ घेरण्ड संहिता 2/12

अर्थ- दोनों जंघाओं को वज्रवत् (समानसुदृढ भाव में) करके गुदा के पार्श्व (दोनों ओर) दोनों पैरों को रखना, यह वज्रासन योगियों को सिद्धि देने वाला है।

4. **आसन क्रम** –

- दोनों पैरों को सामने फैलाकर बैठते हैं तथा बगल में हथेलियाँ जमीन पर रहेंगी।
- अब दाहिने पैर को घुटने से मोड़कर दाहिने नितम्ब के नीचे ले जाएँ, पैर के पंजे अन्दर की तरफ रहेंगे।
- इसी तरह बांयें पैर को मोड़कर बाएँ नितम्ब के नीचे ले जाएँ।
- दोनों हाथों को दोनों जँघाओं पर रखते है।
- इसमें हल्की सी आँखें बन्द कर लेते है।
- इसमें सिर, गर्दन तथा रीढ की हड्डी तीनों एक सीध में रहना चाहिए।

5. **कालावधि –** एक से पाँच मिनट तक अथवा क्षमतानुसार करें।
6. **प्रभाव** –

1) शारीरिक -

- इस आसन से जंघाओं तथा पिंडलियों की मांसपेशियाँ मजबूत होती है।
- इसको करने से पाचन संस्थान तथा प्रजनन संस्थान पर प्रभाव पड़ता है।
- आमाशय से सम्बन्धित रोग जैसे अति अम्लता एवं पेप्टिक अल्सर का निवारण करता है और समस्त उदरविकार को दूर करता है।
- पाचन की दर को तीव्र करता है। इसको खाना खाने के बाद किया जाना लाभदायक है।
- यह ब्रह्मचर्य पालन के लिए उत्तम अभ्यास है।
- इसके अभ्यास से वज्र नाड़ी पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है।

- यह श्रोणि प्रदेश में रक्त प्रवाह एवं स्नायविक आवेगों में परिवर्तन करता है। मांसपेशियों को पुष्ट करता है।
- आन्त्रवृद्धि और बवासीर में लाभदायक है परन्तु बवासीर रोग से पूर्व ही करें।
- स्त्रियों की अनियमित मासिक धर्म समस्या को नियमित करके स्वस्थ बनाता है।
- अजीर्णता और मन्दाग्नि को दूर करता है।
- वातरोग से उत्पन्न शिरो वेदना में लाभकारी है।

2) **मानसिक -**

- साधक की यौन भावनाएँ उसके नियन्त्रण में आ जाती है।
- यह आसन षड्विकारों को शान्त करता है।

3) **आध्यात्मिक -**

- यह एक ध्यानात्मक आसन है; जिसमें साधक दीर्घकाल तक स्थिर होकर परमात्मा को प्राप्त करने में समर्थ होता है।
- सुषुम्ना को जाग्रत करता है।
- पूर्व या उत्तराभिमुखी बैठकर अभ्यास करने से सिद्धि मिलती है।

7. **चक्रों पर प्रभाव** – इस से मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान चक्र जाग्रत होते हैं।
8. **ग्रन्थियों पर प्रभाव** – जनन व शुक्रग्रन्थि व कामवासना ग्रन्थियाँ प्रभावित होती है।
9. **सावधानियाँ** –
    - यदि जाँघों में दर्द का अनुभव हो तो इसी आसन में घुटनों को थोड़ा अलग कर लें।
    - घुटने के दर्द वाले व्यक्ति इसको न करें।
    - बवासीर की शिकायत वाले रोगी भी इसे न करें।
10. **विशेष** –
    - एक मात्र यह आसन है जो भोजनोपरान्त किया जाता है।
    - इस के अभ्यास से वृद्धावस्था में भी साधक वज्रवत रहता है।
    - पँजों को मोड़कर न बैठे अर्थात् पँजों को सीधा रखें और यथा सम्भव घुटनों को मिलाकर रखें।

24.6 उष्ट्रासन

1. **शब्दार्थ एवं नामकरण** – उष्ट्र- ऊँट अर्थात् इसी में शरीर की आकृति ऊँट के समान होने पर इसका नाम उष्ट्रासन पड़ा।
2. **नाम** – संस्कृत = उष्ट्रासनम् , हिन्दी = ऊँटासन और अंग्रेजी = Camel Pose।
3. **श्लोक एवं अर्थ** –

अधास्य शेते पदयुग्मव्यस्तं पृष्ठे निधायापि धृतं कराभ्याम्।
आकुञ्चयेत्सम्यगुदरास्यगाढमौष्ट्रञ्च पीठं योगिनो वदन्ति ॥ घेरण्ड संहिता, 2/41

भावार्थ - नीचे मुख करके शयन करे, पुन: दोनों पैरों को पीछे से लाकर दोनों हाथों से धारण करे, तथा उदर और मुख को दृढता से आकुंचन (सिकोड़) ले, इसे योगीजन उष्ट्रासन करते है।

4. **आसन क्रम –**

- सर्वप्रथम साधक जाँघ और पैरों को एक साथ कर, पैर की अँगुलियों को पीछे की ओर जमीन पर रखते हुए, जमीन पर घुटने स्पर्श कर दें यानि वज्रासन में बैठ जायें।

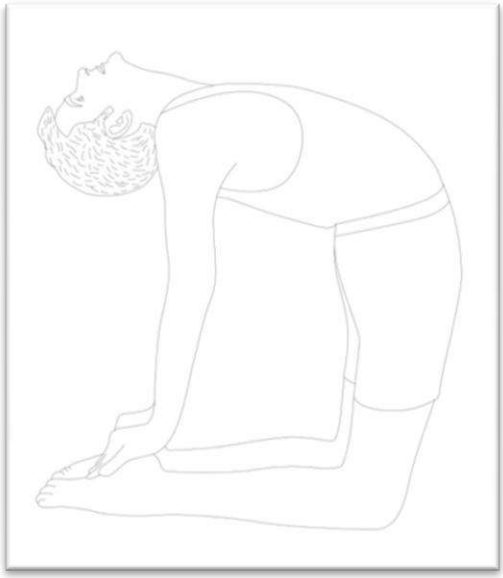

- श्वास भरते हुए घुटनों के बल खड़े हो जायें।
- दोनों हाथों को आगे की ओर फैलायें और हथेलियाँ जमीन की ओर रखें।
- श्वास छोड़ते हुए दाहिनी हथेली दाहिनी एड़ी पर और बायीं हथेली बायीं एड़ी पर रखें। यदि संभव हो, हथेलियों को पैरों के तलवों पर रखें।
- हथेलियों से पैरों को दबायें, सिर को पीछे की ओर ले जायें, जाँघों की ओर रीढ को दबायें, जिससे जमीन की सीध में रहे।
- नितम्ब संकुचित करें और गर्दन पीछे की ओर ताने हुए, रीढ की सबसे नीचे वाली तिकोनी हड्डी को और भी आगे दबायें।
- स्वाभाविक श्वास-प्रश्वास के साथ इस स्थिति में आधे मिनट तक स्थिर रहें।
- श्वास लेते हुए एक एक कर हाथों को हटायें और धीरे से वज्रासन में बैठ जायें।

5. **कालावधि** – 15 सैकण्ड से 3 मिनट तक।

6. **प्रभाव –**

1) शारीरिक -

- कुबड़ेपन को समाप्त कर कन्धों की मांसपेशियों को मजबूत बनाता है।
- पाचन क्रिया पुष्ट और कब्ज़ दूर होती है।
- मेरूदण्ड लचीला और पृष्ठ वेदना को समाप्त करता है।
- नाभि संस्थान सुदृढ और जठराग्नि को प्रदीप्त करता है।
- मधुमेह, हृदयरोग, नेत्र ज्योति में वृद्धि, कण्ठ स्वरों को स्वस्थ और अवटु (थायरायड) रोगियों को लाभ पहुँचाता है।
- पेट का मोटापा कम और फेफड़ों की कार्य क्षमता में वृद्धि होती है।

- घुटना, जँघा और उरुभाग की शक्ति बढती है।

2) मानसिक -

- सिर पर रक्तसंचार बढने से मस्तिष्क विकार समाप्त होते हैं।
- ज्यादा चिन्ता करने से अर्द्धसिरो वेदना (माइग्रेन) जैसा मानसिक रोग दूर होता है।

3) आध्यात्मिक -

- इस के अभ्यास से खेचरी मुद्रा की सिद्धि प्राप्त होती है।
- वाक्सिद्धि मे सहायक है।

7. **चक्रों पर प्रभाव** – स्वाधिष्ठान, विशुद्धिचक्र।
8. **ग्रन्थियों पर प्रभाव** – अवटु, परावटु, जनन व शुक्रग्रन्थि, बाल्यग्रन्थि, पौरुषग्रन्थि आदि ग्रन्थियाँ।
9. **सावधानियाँ** –
    - उच्च रक्तचाप व अल्सर के रोगियों के लिए यह आसन वर्जित है।
    - संधिवात से अधिक पीड़ित रोगी को निषेध है।
10. **विशेष** –
    - जिनकी अवटुग्रन्थि बढी हुई है उनको विशेष सावधानी रखनी चाहिए।
    - अभ्यास के दौरान मुख को बन्द रखें और ग्रीवा पर खिंचाव का अनुभव करें।

24.7 वक्रासन

1. **शब्दार्थ एवं नामकरण** – वक्र का अर्थ टेढा। इस आसन में रीढ टेडी या मुड़ी हुई रहती है अत: इस आसन को वक्रासन के नाम से जाना जाता है।
2. **नाम** – संस्कृत = वक्रासनम् , हिन्दी = वक्र आसन और अंग्रेजी = Half Spinal Twist Pose।
3. **आसन क्रम** –
    - सर्वप्रथम दंडासन में बैठकर पूरक करते हुए दाँयें पैर को मोड़कर जमीन पर बाँयें घुटने के पार्श्व में रखते हैं।
    - उसके विपरीत रेचक करते हुए बाँयी भुजा को छाती तथा घुटने के बीच से ले जाते हैं।
    - कोहनी से घुटने को शरीर से दबाकर हाथ को सीधा करके पैर के अंगुठे को इस प्रकार

पकड़ते हैं कि दायाँ घुटना काँख के पास हो, दूसरा हाथ मेरुदण्ड के सीध में रखें तथा हथेली खुली होनी चाहिए।

- यह अभ्यास नूतन साधकों के लिए है परन्तु अभ्यासी हाथ को बगल से घूमाकर बाँयी जँघा पर स्थापित करें।
- दृष्टि को पीछे की ओर रखते हैं तथा ठुड्डी को कन्धें से स्पर्श करें।
- अन्तिम स्थिति में श्वास-प्रश्वास सामान्य रहेगा।
- विपरीत क्रम में भी इसी अभ्यास को दोहरायें।

4. **कालावधि** – पन्द्रह से तीस सैकण्ड तक और दो से तीन आवृत्ति करें।

5. **प्रभाव** –

1) शारीरिक -

- यह यकृत, तिल्ली तथा मूत्राशय को सक्रिय करता है।
- अग्नाशय को उद्दीप्त कर इन्सुलिन के स्राव को बढाता है अत: मधुमेह में लाभकारी है।
- यह कोष्ठबद्धता, अजीर्णता, तथा उदर विकारों में अत्यन्त लाभकारी है।
- पेट के समस्त दूषित कीटाणुओं को नष्ट करता है।
- भुजबन्ध, जानु, और जंघा सम्बन्धि रोगों में लाभदायक हैं।
- रीढ की हड्डी पुष्ट और स्वस्थ होती है। आमाशय के विभिन्न अंगों की मालिश होती है।
- तन्त्रिका तन्त्र को सुदृढ बनाता है तथा रक्त का शोधन करता है।

2) मानसिक –

- कामविकार को शान्त कर चित्त को एकाग्र बनाता है।
- क्रोध शान्त एवं मन की अस्थिरता को समाप्त करता है।
- तनाव को पूर्णतया समाप्त करने में सहायक है।

3) आध्यात्मिक -

- इस आसन के अभ्यास से साधक इन्द्रियजय बनता है।
- निरन्तर अभ्यास से कुण्डलिनी शक्ति का जागरण होता है और योगी का चन्द्ररस अपनी चञ्चलता का त्याग कर स्थिरता को पाता है।[8]
- निरन्तर अभ्यास से नाद श्रवण और समाधि भी लग जाती है।

6. **चक्रों पर प्रभाव** – मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरचक्र।

7. **ग्रन्थियों पर प्रभाव** – यकृत, वटु व अवटु,(थायरायड, पैराथायरायड) जनन व शुक्रग्रन्थि, अधिवृक्क (एड्रिनल), कलोम आदि ग्रन्थियों को प्रभावित करता है।

8. **सावधानियाँ** –

[8] हठप्रदीपिका 1/29

- आन्त्र पित्तवर्ण (पेप्टिक अल्सर), आन्त्र वृद्धि (हर्निया) , उच्च या तीव्र गलगण्ड (हाइपर थाइराइड) से पीड़ीत व्यक्ति को इसका अभ्यास किसी प्रशिक्षित डाक्टर के मार्गदर्शन में लेना चाहिए।
- हृदय रोग, उरोवेदना (साइटिका), पृष्ठशूल (स्लिपडिस्क) आदि में सावधानीपूर्वक करना चाहिए।
- गर्भावस्था में न करें।

9. **विशेष** –
    - मेरुदण्ड सीधा रहे तथा ठुड्डी व कन्धे सीधे रहें।
    - यह अभ्यास दोनों ओर से अवश्य करें।
    - आसन के प्रारम्भ में दोनों पैरों को मिलाकर रखें और आसन के अन्तिम समय सामने वाला पाँव सीधा रहें।

बोध प्रश्न

१. निम्न में से उष्ट्र का क्या अर्थ हैं ?
    a. गाय
    b. ऊँट
    c. कमल
    d. ऊँचा

२. इनमें से ऐसा कौनसा आसन है जो भोजन के बाद किया जाता है ?
    a. पद्मासन
    b. वक्रासन
    c. वज्रासन
    d. गोरक्षासन

३. इनमें से कौनसा आसन है जो ध्यान के लिए सर्वोत्तम माना गया हैं ?
    a. पद्मासन

b. वज्रासन
c. गोरक्षासन
d. उष्ट्रासन

४. निम्न में से कुबड़ेपन को समाप्त कर माँसपेशियों को मजबूत बनाने वाला आसन कौनसा है ?

a. उष्ट्रासन
b. वज्रासन
c. गोरक्षासन
d. वक्रासन

24.8 ग्रन्थ का मूलपाठ

जानूर्वोरन्तरे पादौ उत्तानौव्यक्तसंस्थितौ ।
गुल्फौ चाञ्छाद्य हस्ताभ्यामुत्तानाभ्यां प्रयत्नत: ॥ (घेरण्ड संहिता 2/25)
वामोरुपरि दक्षिणं हि चरणं संस्थाप्य वामं तथा,
दक्षोरूपरि पश्चिमेन विधिना कृत्वा कराभ्यां दृढम् ।
अङ्गुष्ठौ हृदये निधाय चिबुकं नासाग्रमालोकयेद्,
एतद्व्याधिविकारनाशनकरं पद्मासनं प्रोच्यते ॥ (घेरण्ड संहिता, अध्याय 2, श्लोक 9)
जङ्घाभ्यां वज्रवत्कृत्वा गुदापार्श्वे पदावुभौ ।
वज्रासनं भवेदेतद्योगिनां सिद्धिदायकम् ॥ घेरण्ड संहिता 2/12
अधास्य शेते पदयुग्मव्यस्तं पृष्ठे निधायापि धृतं कराभ्याम् ।
आकुञ्चयेत्सम्यगुदरास्यगाढमौष्ट्रञ्च पीठं योगिनो वदन्ति ॥ घेरण्ड संहिता, 2/41

24.9 सारांश

प्रस्तुत पाठ में आपने जाना बैठकर किए जाने वाले आसनों का हमारे शरीर के विभिन्न अंगों पर प्रभाव । आसन एक शारीरिक मुद्रा है जिसमें हम विभिन्न पशु-पक्षि, पर्वत आदि की आकृति धारण करके शरीर में उसी समान गुणों को विकसित करने का प्रयास करते हैं । यह विज्ञान हमारे पूर्वज ऋषि-मुनियों ने गहन अध्ययन के पश्चात् खोजा है । अत: हमें इन आसनों को आत्मसात करके विभिन्न समस्याओं से अपने को बचा सकते हैं ।

24.10 शब्दावली

१.	संकुचन	:	सिकुड़ना
२.	प्रसारण	:	फैलाव
३.	अर्श	:	बवासीर
४.	भृकुटि	:	दोनों भौंह के मध्य
५.	पद्म	:	कमल

६. वज्र : कठोर, हीरा

७. उष्ट्र : ऊँट

८. वक्र : टेढा

९. कोष्ठबद्धता : कब्ज़

१०. पृष्ठशूल : पीठदर्द

24.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. योगदर्शने स्वास्थ्यविज्ञानम् (2014), डा. धरणी ढुङ्गेल । प्रतिभा प्रकाशन, शक्तिनगर, दिल्ली 110007

2. योगासनों के स्वरूप एवं उनकी वैज्ञानिकता (2019), डा. नवनीत मलेठिया | आइडियल पब्लिकेशन, जयपुर – 302003 ।

3. हठयोग ,(1985)सुरेन्द्र कुमार शर्मा । प्रकाशक 110007 –दिल्ली ,जवाहर नगर ,ईस्टर्न बुक लिंकर्स :

4. Positive Health, Dr. R Nagarathna and Dr. H R Nagendra, Published by – Swami Vivekananda Yoga Prakashana, Bangalore – 560019.

5. योगदीपिका (2005), बी.के.एस.आयंगार । ओरियंट लॉंग्मैन प्राइवेट लिमिटेड, हैदराबाद-500029 (आन्ध्रा प्रदेश), भारत ।

24.12 सहायक ग्रन्थ

1. डा. अमृत लाल गुर्वेन्द्र, डा. गायत्री गुर्वेन्द्र (2020), योगाऽमृत । किताब महल, दरियागंज, नई दिल्ली

2 योग विज्ञान, हठयोग परिचय (2002), मानव चेतना एवं योग विज्ञान संकाय, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, गायत्रीकुंज-शान्तिकुंज विस्तार, हरिद्वार ।

3. सरल योग शिक्षा (2015), डा. वासुदेव शर्मा, जीवन पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लि. इण्डिया ।

4. योग (2019), प्रकाशक - विवेकानन्द केन्द्र प्रकाशन ट्रस्ट, चैन्नै (पश्चिम बंगाल), भारत ।

24.13 बोध प्रश्नोत्तर

१. b

२. c

३. a

४. a

24.14 अभ्यास प्रश्न

१. आसन की आवश्यकता तथा महत्त्व पर प्रकाश डालिए।
२. वज्रासन के लाभ स्पष्ट कीजिए।
३. पद्मासन करने की विधि लिखिए।
४. वक्रासन की सावधानियाँ क्या-क्या हैं ?

23.15 परियोजना कार्य

१. एक आसन का चार्ट बनाकर प्रभाव के संकेत दीजिए।

पञ्चविंशति पाठ
उदर के बल किए जाने वाले आसन

25.1 प्रस्तावना

25.2 उद्देश्य

25.3 **नौकासन**

25.4 **भुजंगासन**

25.5 **शलभासन**

25.6 **धनुरासन**

25.7 **मकरासन**

बोध प्रश्न

25.8 ग्रन्थ का मूलपाठ

25.9 सारांश

25.10 शब्दावली

25.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

25.12 सहायक ग्रन्थ

25.13 बोध प्रश्नोत्तर

25.14 अभ्यास प्रश्न

25.15 परियोजना कार्य

25.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व आपने बैठकर किए जाने वाले आसनों का अध्ययन किया । जिसमें आपने शरीर के विभिन्न अंगों पर पड़ने वाले प्रभाव को अनुभव किया । आसन से स्थिरता, स्वास्थ्य तथा अंग में हल्कापन आता है । स्थिर व सुखकर शारीरिक स्थिति मानसिक संतुलन लाती है और मन की चंचलता को भी रोकती है। आसन शारीरिक व्यायाम मात्र नहीं है वे शारीरिक स्थितियां है। शताब्दियों पूर्व शरीर की प्रत्येक मांसपेशी, नाड़ी और ग्रंथि को प्रयोग में लाने के लिए आसनों का विकास हुआ है। योगी आसनों के अभ्यास से शरीर पर विजय प्राप्त करता है और उसे आत्मा के योग्य साधन बनाता है।

प्रस्तुत पाठ में आप उदर के बल किए जाने वाले आसनों को जानेंगे और उनकी विधि, लाभ एवं सावधानियों को समझेंगे -

25.2 उद्देश्य – इस पाठ को पढकर आप जान पायेंगे -

- ❖ नौकासन विधि, प्रभाव, सावधानियाँ आदि का परिचय
- ❖ भुजंगासन विधि, प्रभाव, सावधानियाँ आदि का परिचय
- ❖ शलभासन विधि, प्रभाव, सावधानियाँ आदि का परिचय
- ❖ धनुरासन विधि, प्रभाव, सावधानियाँ आदि का परिचय
- ❖ मकरासन विधि, प्रभाव, सावधानियाँ आदि का परिचय
- ❖ आसनों से सम्बन्धित विशेष तथ्यों की जानकारी
- ❖ आसनों का शारीरिक-मानसिक एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य पर प्रभाव

25.3 नौकासन

1 **शब्दार्थ एवं नामकरण** – नौका = नाव, आसन = मुद्रा या स्थिति । इस आसन में साधक के शरीर की आकृति नाव के सदृश बन जाती है अत: इस आसन को नौकासन से पुकारा गया है ।

2 **नाम** – संस्कृत = नौकासनम्, हिन्दी = नावासन और अंग्रेजी = Bote Pose ।

3 **आसन क्रम** – प्रकार प्रथम :-

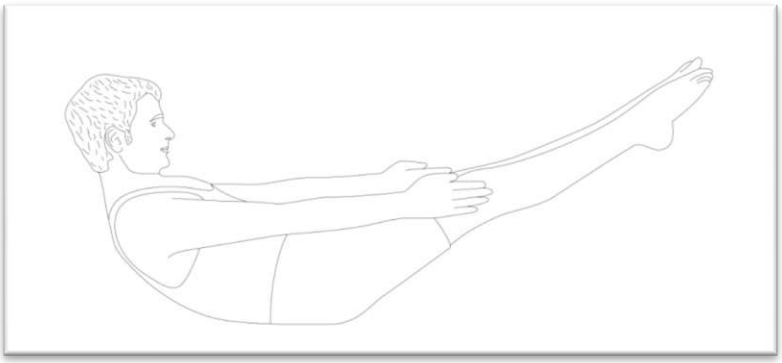

- सर्वप्रथम अभ्यासी अपने आसन पर पीठ के बल लेट जायें ।
- दोनों पाँवों की एड़ियाँ मिला लें और हाथों को जँघाओं के साथ स्पर्श करा दें ।
- पूरक करते हुए दोनों पाँवों, हाथ व धड़ को एक साथ जमीन से ऊपर उठायें ।
- तत्पश्चात् कुम्भक की अवस्था में रोककर नितम्ब त्रिकास्थि पर सम्पूर्ण शरीर का सन्तुलन बनाकर रखें और दृष्टि पाँवों के अँगूठें पर रहें ।
- रेचक करते हुए धीरे-धीरे वापिस सामान्य स्थिति में आयें ।
- इस प्रकार इसकी आवृत्ति 3-5 बार दोहरायें ।

प्रकार द्वितीय :-

- सर्वप्रथम पेट के बल जमीन पर उल्टे लेट जायें।
- दोनों हाथों को सामने की ओर और पाँवों को पीछे की तरफ फैला दें और बाजुओं को कानों से और पाँवों को परस्पर स्पर्श करा दें।

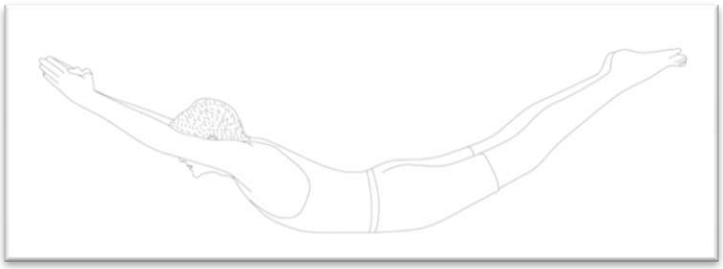

- पूरक करते हुए दोनों पाँवों, हाथ व धड़ को एक साथ जमीन से ऊपर उठायें और हाथों की नमस्कार मुद्रा बना लें।
- तत्पश्चात् कुम्भक की अवस्था में रोककर नाभि संस्थान पर सम्पूर्ण शरीर का सन्तुलन बनाकर रखें और दृष्टि करमूल पर केन्द्रित करें।
- रेचक करते हुए धीरे-धीरे वापिस सामान्य स्थिति में आयें।
- इस प्रकार इसकी आवृत्ति 3-5 बार दोहरायें।

4 **कालावधि** – अपनी श्वास की क्षमता से रोकें।

5 **प्रभाव** –

1) शारीरिक –

- यह अभ्यास सम्पूर्ण पृष्टभाग की माँसपेशियों को बलिष्ठ बनाता है। जिससे कमर दर्द, पेट का मोटापा, शरीर का कम्पवात रोग, उदर विकार, कृमि दोष, अजीर्णता, नाभि का डिगना, मधुमेह, हर्निया, वृक्क रोग, कोष्ठबद्धता, उदरवायु विकार आदि रोगों में अत्यन्त लाभकारी हैं।
- स्त्रियों के मासिक धर्म की अनियमितता को दूर करता है तथा प्रसव के पश्चात् उत्पन्न शारीरिक विकारों को पूर्णतया समाप्त करने में सक्षम हैं।
- हाथों व पाँवों में उचित प्रकार से खिंचाव देने पर शरीर में वृद्धि करता हैं।
- पाचन क्रिया बलिष्ठ बनती है तथा उदर की चर्बी शीघ्रता से कम होती है।

2) मानसिक –

- समत्व भाव में वृद्धि, क्रोध पर नियन्त्रण, मानसिक एकाग्रता में विकास होता है।

3) आध्यात्मिक –

- कुण्डलिनी जागरण में सहायक है।
- प्राणों में उष्णता उत्पन्न होने से सुषुम्ना नाडी संचारित होने लगती है।

6 **चक्रों पर प्रभाव** – स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहतचक्र।

7 **ग्रन्थियों पर प्रभाव** – अग्न्याशय, अधिवृक्क, जनन व शुक्रग्रन्थि आदि ग्रन्थियाँ।

8 **सावधानियाँ –**

- कमर दर्द, उदर से सम्बन्धित कोई भी शल्य क्रिया (ओप्रेशन), गर्भावस्था, हर्निया, मासिक धर्म में इन अभ्यासों को नही करना चाहिए।

9 **विशेष –**

- नूतन अभ्यासी 'अर्द्ध नावासन' से भी शुरु कर सकते हैं।
- इस आसन के पश्चात् भुजंगासन अथवा शशांकासन कर सकते है।

25.4 भुजंगासन

1 **शब्दार्थ एवं नामकरण –** भुजंग यानि सर्प। इस आसन में शरीर का आकार भुंजग अर्थात् सर्प के समान होने के कारण इसे भुजंगासन व सर्पासन कहते है।

2 **नाम** – संस्कृत = भुजंगासनम् , हिन्दी = सर्पासन और अंग्रेजी = Cobra Pose।

3 **श्लोक एवं अर्थ –**

अङ्गुष्ठनाभिपर्यन्तमधोभूमौ विनिन्यसेत्।
करतलाभ्यां धरां धृत्वा ऊर्ध्वशीर्ष: फणीव हि ॥ घेरण्ड संहिता, 2/42

भावार्थ - अंगुष्ठ से लेकर नाभि पर्यन्त नीचे भूमि पर रखकर, करतलों से धरा को अवलम्बित करके सिर को सर्प के फन के समान ऊपर करे, यही भुजंगासन है।

4 **आसन क्रम –**

- इसको करने के लिए सर्वप्रथम पेट के बल लेट जाते हैं।
- हाथों को कोहनी से मोड़कर सीने के पास रखते हैं, पीछे से पैर मिले रहते हैं।
- अब हाथों का सहारा लेकर शरीर को चेहरे से धीरे-धीरे ऊपर उठाते हैं।
- नाभि तक शरीर को ऊपर उठाते हैं।
- फिर कुछ समय तक इसी स्थिति में रुकते हैं और धीरे-धीरे वापस आते हैं।
- भुजाओं पर सारा जोर पड़ता है इसलिए इसे भुजंगासन कहते हैं।

5 **कालावधि** – समय सामर्थ्यानुसार बढायें और न्यूनतम तीन बार आवृति करें।

6 **आसन फलम् –**

देहाग्निर्वर्द्धते नित्यं सर्वरोगविनाशनम्।
जागर्ति भुजगी देवी भुजगासनसाधनात् ॥ घेरण्ड संहिता, 2/43

भावार्थ - भुजंगासन से नित्य ही जठराग्नि बढती है, सब रोगों का विनाश होता है, भुजंगासन की साधना से भुजगी देवी जागती है अर्थात् इस आसन को करने से कुंडलिनी शक्ति जाग्रत होती है।

7 प्रभाव –

1) शारीरिक -

- इसका प्रभाव शरीर की मांसपेशियों में गहराई से होता है।
- दमा, मन्दाग्नि तथा वायु दोषों पर इसका विशेष प्रभाव है तथा इससे रीढ की हड्डी लचीली बनी रहती है।
- डिंब ग्रंथि व गर्भाशय को स्वस्थ बनाता है।
- पेट का मोटापा कम होता है।
- जठराग्नि को प्रदीप्त करता है और भूख बढाता है तथा कब्ज को भी दूर करता है।
- ऋतु धर्म की अनियमितता में विशेष लाभकारी है।
- मेरुदण्ड का रक्तसंचार सुदृढ होता है।
- इन्द्रियाँ संयमित होकर ब्रह्मचर्य की वृद्धि होती हैं।

2) मानसिक –

- नियमित अभ्यास से मनोविकृत रोग समाप्त होकर चित्त प्रसन्न रहता है।
- प्रमाद को दूर भगाता है और दृढनिश्चयी बनाता है।
- क्रोध को शान्त करने में उपयोगी है।

3) आध्यात्मिक -

- सुषुम्ना नाडी जाग्रत होती है।
- भुजंगासन की साधना से भुजगी देवी जागती है अर्थात् इस आसन को करने से कुंडलिनी शक्ति जाग्रत होती है।

8 चक्रों पर प्रभाव –स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत एवं विशुद्धिचक्र।

9 ग्रन्थियों पर प्रभाव – डिम्ब, अधिवृक्क तथा अवटु आदि ग्रन्थियाँ।

10 सावधानियाँ –

- आन्त्र वर्ण (पेप्टिक अल्सर), वृषणरोग, आँतों के यक्ष्मा या उच्च परावटुग्रन्थिरोग से ग्रस्त व्यक्तियों को यह अभ्यास विशेष निर्देशन में ही करना चाहिए।
- इसमें वज्रासन के भी लाभ प्राप्त होते हैं, बल्कि जो लोग वज्रासन नहीं कर पाते, जिन्हें वज्रासन करने में दिक्कत होती है, जिनकी जाँघ की मांसपेशियाँ कड़ी है, अथवा एड़ी के पास या घुटनों में दर्द होता है, वे इस आसन को कर सकते हैं।
- स्नायविक विकार के लिए भी यह बहुत उपयोगी अभ्यास है।
- गर्भवती महिला इसका अभ्यास न करें।

11 **विशेष** –

- अभ्यास दौरान साधक अचानक से आसन में न जायें अर्थात् श्वास की गति अनुसार जायें।
- अन्तिम स्थिति में श्वास सामान्य और पाँव की एडियाँ मिलाकर रखें।
- नितम्ब भाग को सिकोड़कर रखें।

25.5 शलभासन

1. **शब्दार्थ एवं नामकरण** – शलभ का अर्थ टिड्डा नामक कीट है। शलभ की आकृति के समान साधक की स्थिति बनने के कारण इसे शलभासन कहते है।
2. **नाम** – संस्कृत = शलभासनम् , हिन्दी = शलभ आसन और अंग्रेजी = Locust Pose।
3. **श्लोक एवं अर्थ** –

अधास्य शेते करयुग्मं वक्षे-भूमिमवष्टभ्य करयोस्तलाभ्याम्।
पादौ च शून्ये च वितस्ति चोर्ध्वं-वदन्ति पीठं शलभं मुनीन्द्रा: ॥ घेरण्ड संहिता 2/37

अर्थ - पहले नीचे मुख करके लेट जाये, दोनों हाथों को छाती में रख, करतलों से भूमि को पकड़ पुन: पैरों को शून्य में ऊपर की ओर फैलाये, इसे मुनिजन शलभासन कहते हैं।

4. **आसन क्रम** –

- पैरों को जोड़कर, पेट के बल लेटते हैं और तलवे ऊपर की ओर रहे।
- प्रारम्भिक अवस्था में हाथों को जाँघों के नीचे रखा जा सकता है।
- जब हम हाथों को जाँघों के नीचे रखते हैं, तब पैरों को उठाने के लिए हाथों का सहारा ले सकते हैं, लेकिन धीरे-धीरे जब अभ्यास परिपक्व हो जाये, तब हाथों को जाँघों के नीचे से निकाल कर बगल में रख देते हैं।
- हथेलियाँ नीचे की ओर रहती है। ठुड्डी को थोड़ा सामने की ओर ले जाकर भूमि पर रखते हैं और पूरे अभ्यास के दौरान भूमि पर ही रखते हैं।
- यह आरम्भिक स्थिति है। पैरों को परस्पर मिलाकर धीरे-धीरे जितना संभव हो उतना ऊपर उठाते हैं।

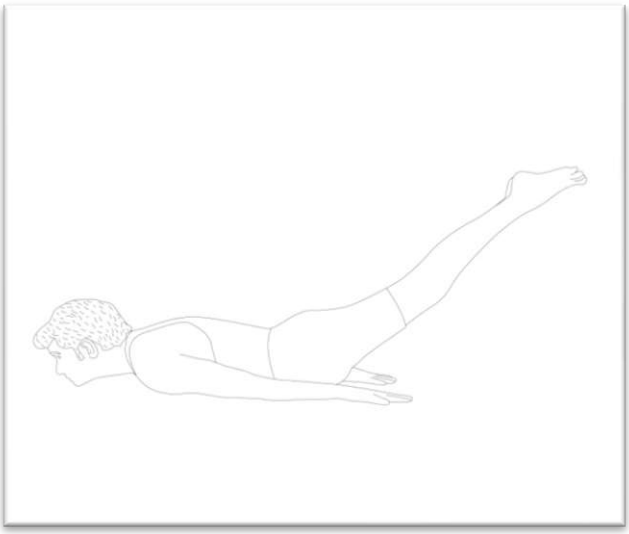

- पैरों को ऊपर के लिए हाथों से भूमि पर दबाव डालते हैं और कमर के पीछे के भाग को माँसपेशियों को संकुचित करते हैं।
- अन्तिम स्थिति में आँखों को बन्द कर पूरे शरीर को शिथिल बनाते हैं।
- सम्भव हो तो अन्तिम अवस्था में मूलबन्ध लगा कर रखें।
- फिर पैरों को धीरे-धीरे भूमि पर ले आते हैं। यह एक आवृति हुई।

- प्रारम्भिक स्थिति में वापस आकर सिर को एक ओर मोड़ते हुए, श्वास एवं हृदय की गति के सामान्य होने तक विश्राम करते है।

5. **कालावधि –** दस से तीस सैकण्ड तक अथवा स्व सामर्थ्यानुसार स्थिति में रुकें।

6. **प्रभाव –**

   1) शारीरिक –

      - परानुकम्पी तन्त्रिकाओं का प्रधान्य विशेष रूप से गर्दन एवं श्रोणि प्रदेश में होता है।
      - शलभासन पूरे स्वैच्छिक तन्त्रिका तंत्र को, विशेष परानुकम्पी नि:स्त्राव को उद्दीप्त करता है।
      - यह उरो वेदना (सायटिका), नितम्ब भाग के पास उत्पन्न कमर दर्द को दूर भगाता है।
      - वृक्क और मूत्र संस्थान की कार्यक्षमता को बढाता हैं।
      - यह यकृत तथा आमाश्य के अन्य अंगों की क्रियाशीलता को सुचारु बनाता है।
      - पेट एवं आँतों के रोगों को दूर कर क्षुधा (भूख) बढाता है और मोटापा कम करता है।
      - कोष्ठबद्धता (कब्ज़), उदर वायु विकार (अपान का प्रकुपित) आदि में लाभदायक है।
      - स्त्रियों के अनियमित ऋतुस्त्राव को सन्तुलित बनाता है।

   2) मानसिक –

      - मानसिक अवसाद के रोगियों के लिए उत्तम अभ्यास हैं।

   3) आध्यात्मिक –

      - यह ब्रह्मचर्य की पालना में सहायक है। चित्त एकाग्र होकर ब्रह्मलीन होने लगता है।
      - मैत्री एवं करुणा के भावों में वृद्धि होती है।

7. **चक्रों पर ध्यान एवं प्रभाव** – मूलाधार, स्वाधिष्ठान और विशुद्धि चक्र जाग्रत होते हैं।

8. **ग्रन्थियों पर प्रभाव** – अधिवृक्क (एड्रिनल) और जनन व शुक्रग्रन्थि (गोनाड्स) ग्रन्थियाँ प्रभावित होती हैं।

9. **सावधानियाँ –**

   - शलभासन के लिए बहुत अधिक शारीरिक प्रयास की आवश्यकता होती है। अत: जिन लोगों का हृदय कमजोर हों, हृदय धमनी घनास्त्रता (कोरोनरी थ्रोम्बोसिस) या उच्च रक्तचाप हो, उन्हें यह अभ्यास नहीं करना चाहिए।
   - पित्ताधिक्य के कारण आन्त्रवर्ण (पेप्टिक अल्सर), आन्त्रवृद्धि (हर्निया), आँतों के यक्ष्मा तथा इस प्रकार के अन्य रोगों से पीड़ित व्यक्तियों को यह अभ्यास नहीं करने का सुझाव दिया जाता है।
   - कमर दर्द में अभ्यास निषेध है परन्तु प्रशिक्षक के तत्त्वाधान में धीरे-धीरे अभ्यास कर सकते है।
   - अस्थमा होने पर अथवा श्वास से सम्बन्धित रोग होने पर अभ्यास निषेध है।

10. **विशेष –**

    - अभ्यास के दौरान झटके से पाँवों को न उठायें।
    - सुविधा के लिए मुठ्ठियों को बन्द रखें और अँगुलियाँ की दिशा नीचे की ओर हों।
    - अन्तिम स्थिति में घुटने और एडियाँ मिली रहें तथा वक्र (घुटनों के मुड़ने) की स्थिति न बनें।

- मधुमेह में लाभप्रद है परन्तु कुछ योगाचार्यों ने निषेध भी किया है । मेरा मानना है कि यदि उच्चरक्तचाप, हृदय से पीड़ित रोगी को मधुमेह है, तो निषेध होता हैं ।

25.6 धनुरासन

1. **शब्दार्थ एवं नामकरण** – धनुरासन अर्थात् धनु-धनुष, धनुषी आकार के कारण धनुषासन । इसमें शरीर की आकृति तने हुए धनुष के समान हो जाती है इसलिए इसे धनुरासन कहा जाता है । भुजंगासन, शलभासन और धनुरासन क्रम में किया जाता है अत: इसे योगासनत्रयी से भी जाना जाता है ।
2. **नाम** – संस्कृत = धनुरासनम् , हिन्दी = धनुषासन, धनुर आसन और अंग्रेजी = Bow Pose ।
3. **श्लोक एवं अर्थ** –

   प्रसार्य पादौ भुवि दण्डरूपौ करौ च पृष्ठे धृतपादयुग्मम् ।
   कृत्वा धनुस्तुल्यपरिवर्त्तिताङ्गं निधाय योगी धनुरासनं तत् ॥ घेरण्ड संहिता 2/18

अर्थ - दोनों पैरों को भूमि पर दण्ड रूप में फैलाकर, हाथों को पीछे करके दोनों पैरों को पकड़े, इसके बाद शरीर को धनुष के समान करके अंगों को परिवर्तित करें, इधर-उधर पलटे ।

4. **आसन क्रम** –

- सर्वप्रथम इसमें उदर के बल लेट जाते हैं, फिर पैरों को पीछे की ओर मोड़कर एड़ियों को नितम्बों के समीप लाते हुए पैरों के टखनों को हाथों से पकड़ लेते हैं ।
- अब पूरक करते हुए धीरे से पकड़े हुए पैरों को ऊपर की ओर खींचते हुए जाँघे, सिर तथा छाती तीनों को एक साथ उठाते हैं ।
- अन्तिम स्थिति में साधक श्वास को क्षमतानुसार ही रोकें अन्यथा मन्द गति से श्वास-प्रश्वास को करें ।
- शरीर का आकार धनुष के समान हो जाता है ।
- रेचक के साथ वापस आयें और क्रमश: छाती व जाँघें भूमि पर स्पर्श करायें व पाँव को छोड़ दें और सामान्य स्थिति में आयें ।
- पूरक, कुम्भक, रेचक करें और अन्तिम स्थिति में श्वास-प्रश्वास समान्य रहें ।

5. **कालावधि –** पन्द्रह से एक मिनट तक अथवा यथा शक्ति अनुसार धीरे-धीरे अभ्यास को बढायें ।
6. **प्रभाव** –

   1) **शारीरिक**

- यह मेरूदण्ड तथा पीठ की माँसपेशियों को लचीला बनाता है तथा इससे स्नायु दुर्बलता दूर होती है।
- जठराग्नि प्रदीप्त होती है तथा पाचन क्रिया ठीक होती है।
- यह कब्ज तथा पित्त और वायु विकार दूर करने में सहायक है।
- श्वास सम्बन्धित रोगों को सुधारने में सहायक है।
- यह अपच, यकृत की मन्द क्रियाशीलता, मधुमेह, इन्द्रिय संयम तथा मासिक धर्म सम्बन्धित अनियमितताओं के उपचार में सहायक है और अंगों को सुडौल बनाता है।
- वृक्क और मूत्र संस्थान को मजबूत करता है और साथ में नपुंसकता को दूर भगाता है।
- नाभि का डिगना अर्थात् नाभि का अपनी मूल स्थिति से हटकर इधर-उधर चले जाना है; इस नाभि स्थानान्तरण को व्यवस्थित करता है।
- शरीर की अतिरिक्त चर्बी दूर होती है और सम्पूर्ण शरीर सुन्दर बनता है।
- शरीर वृद्धि में सहायक है।

2) **मानसिक** –

- यह आसन वृक्क संस्थान को प्रभावित करता है जिससे वृक्क मजबूत बनता है। वृक्क (किडनी) का निर्बल होना उच्चरक्तचाप, चिड़चिड़ापन, अनिद्रा,तन्द्रा, उग्रता, तनाव आदि को जन्म देता है। अभ्यास से साधक मानसिक रूप से सुदृढ बनता हैं।

3) **आध्यात्मिक** -

- मेरूदण्ड लचिला होता है जिससे कल्पनाशक्ति में वृद्धि होती है; जो आत्मबोध में सहायक है।

7. **चक्रों पर प्रभाव** – मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत और विशुद्धि चक्र को जाग्रत करता है; परन्तु विशेषकर मणिपूर को।
8. **ग्रन्थियों पर प्रभाव** – यह आसन समस्त ग्रन्थियों को प्रभावित करता हैं परन्तु विशेष रूप से 'क्लोम ग्रन्थि' को प्रभावित करता है; जिससे 'इन्सुलिन' का स्राव सन्तुलित होने लगता है। 'एड्रीनल ग्रन्थि' भी हार्मोन्स का स्राव ठीक करने लगती है।
9. **सावधानियाँ** –
    - जल्दी करने का प्रयास न करें।
    - इसको खाली पेट करना चाहिए।
    - हृदय विकार, उच्च रक्तचाप, आन्त्रवृद्धि (हर्निया), आन्त्ररोग, वृक्क विकार, अम्लपित्त विकार (अल्सर) कमर दर्द आदि रोगों में इस अभ्यास को न करें।
10. **विशेष** –
    - प्रारम्भ काल में साधक घुटनों को दूर-दूर रख सकता है; परन्तु सतत अभ्यास के पश्चात् उन्हें परस्पर मिलाया जा सकता है।
    - उदर पर अधिक दबाव लाने के लिए मेरूदण्ड को ज्यादा खींचाव दिया जायें।

- भुजांओं को यथा सम्भव हो उतना सीधा करें और अपनी दृष्टि ऊपर रखें।

25.7 मकरासन

1. **शब्दार्थ एवं नामकरण** – जब मकर (मगरमच्छ) पानी से बाहर आकर धूप में विश्राम लेता है। उस समय जो उसकी (मकर) स्थिति बनती है, उस स्थिति को मकरासन कहते है। यह एक विश्रामात्मक आसन है।
2. **नाम** – संस्कृत = मकरासनम् , हिन्दी = मकर आसन और अंग्रेजी = Crocodile Pose।
3. **श्लोक एवं अर्थ** –

   अधास्य शेते हृदयं निधाय भूमौ च पादौ च प्रसार्यमाणौ।
   शिरे च धृत्वा करदण्डयुग्मे देहाग्निकारं मकरासनं तत् ॥ घेरण्ड संहिता, अध्याय 2, श्लोक 40

   भावार्थ - नीचे मुख करके लेटे, पुन: भूमि पर हृदय रखकर पैरों को फैलाकर पुन: हाथों से सिर को धारण करे, जठराग्नि बढाने वाला यह मकरासन होता है।
4. **आसन क्रम** –
   - पेट के बल सीधा लेट कर सिर और कन्धों को ऊपर उठाते हैं तथा कुहनियों को जमीन पर रखते हुए ठुड्डी को हथेलियों पर टिकाते हैं।

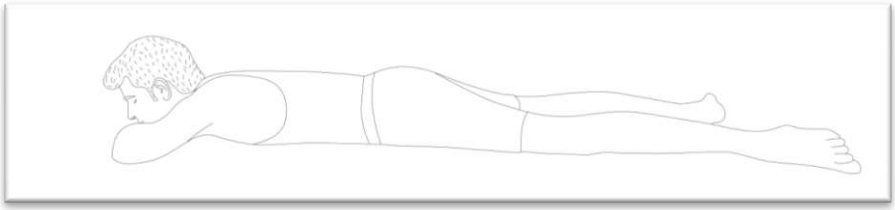

   - मेरूदण्ड को अधिक चापाकर स्थिति में करने के लिए कहुनियों को मिलाकर रखें।
   - यदि गर्दन पर अतिरिक्त तनाव पड़ रहा हो तो कुहनियों को थोड़ा फैला लें।
   - पाँवों की अँगुलियों का रुख बाहर की ओर विपरीत दिशा में बनाकर रखें।
   - आँखों को बन्द कर पूरे शरीर को शिथिल बनायें।
   - श्वास सहज एवं लयबद्ध होना चाहिए।
5. **कालावधि** – दो मिनट तक अथवा यथा सामर्थ्यानुसार अभ्यास किया जा सकता है।
6. **आसन फलम्** –

   देहाग्निकारं मकरासनं तत्। (घेरण्ड संहिता, अध्याय 2, श्लोक 40)
   जठराग्नि बढाने वाला यह मकरासन होता है।
7. **प्रभाव** –

   1) शारीरिक –
      - यह छाती और फेफड़ों का विस्तार करता है।

- गले को साफ करता है, क्योंकि अभ्यास के समय जब हम गले को ऊपर करते हैं, तो श्वासन नली एक सीधी रेखा में हो जाती हैं।
- जमा हुआ कफ साफ हो जाता है और बन्द मार्ग खुल जाता है।
- मेरुदण्ड पीडा, उरो वेदना (साइटिका), श्रोणी प्रदेश के पास पीडा होना, ग्रीवा कशेरुका से सम्बन्धित समस्या और समस्त मेरुदण्ड के रोगों मे लाभकारी हैं।
- दमा और यक्ष्मा (जुकाम से विकृत पुराना रोग) में लाभकारी।
- उच्चरक्त चाप सामान्य होता है।
- पाचन तन्त्र और उत्सर्जन क्रिया में प्रभावशाली है।

2) मानसिक –

- मन शान्त और स्वस्थ रहता है।
- मानसिक आधियों (तनावों) से पैदा होने वाला सिर दर्द और बढा हुआ पित्त आदि मनोशारीरिक व्याधियों में उत्तम अभ्यास है।
- मस्तिष्क को पूरा विश्राम मिलता है, जिससे मानसिक रोग दूर होते हैं।

3) आध्यात्मिक –

- चित्त को निरुद्ध करके आनन्द की प्राप्ति कराता है।

8. **चक्रों पर प्रभाव** – अनाहत, विशुद्धि चक्र।

9. **ग्रन्थियों पर प्रभाव** – अवटु तथा परावटु ग्रन्थियाँ (थायराइड एवं पैराथायराइड ग्रन्थियाँ)।

10. **सावधानियाँ** –

- जिन व्यक्तियों की कमर में पीडा रहती है और उन्हें इस अभ्यास में कष्ट अनुभव हो तो अभ्यास न करें।
- शरीर तनाव रहित, स्थिर एवं शिथिल रहें।
- आँखों को हल्का सा मूंद कर रखें।

11. **विशेष** –

- सर्वांगासन, हलासन और विपरीत करणी मुद्रा के पश्चात् यह आसन अवश्य करें।
- श्वास-प्रश्वास के साथ सजगता एवं जागरुकता बनी रहें।

बोध प्रश्न

१. भुजंगासन में शारीरिक स्थिति प्रतीत होती हैं।

a. बन्दर के समान
b. पर्वत के समान
c. टिड्डे के समान
d. सर्प के समान

२. मकरासन को श्रेणी में रखा जाता है।

a. शरीर संवर्धनात्मक

b. विश्रान्तिदायक

c. ध्यानात्मक

d. उपरोक्त मे से कोई नही

३. कमर दर्द के लिए सर्वोत्तम आसन .....है।

25.8 ग्रन्थ का मूलपाठ

अङ्गुष्ठनाभिपर्यन्तमधोभूमौ विनिन्यसेत् ।
करतलाभ्यां धरां धृत्वा ऊर्ध्वशीर्ष: फणीव हि ॥ घेरण्ड संहिता, 2/42
देहाग्निर्वर्द्धते नित्यं सर्वरोगविनाशनम्।
जागर्ति भुजगी देवी भुजगासनसाधनात् ॥ घेरण्ड संहिता, 2/43
अधास्य शेते करयुग्मं वक्षे-भूमिमवष्टभ्य करयोस्तलाभ्याम् ।
पादौ च शून्ये च वितस्ति चोर्ध्वं-वदन्ति पीठं शलभं मुनीन्द्रा: ॥ घेरण्ड संहिता 2/37
प्रसार्य पादौ भुवि दण्डरूपौ करौ च पृष्ठे धृतपादयुग्मम् ।
कृत्वा धनुस्तुल्यपरिवर्त्तिताङ्गं निधाय योगी धनुरासनं तत् ॥ घेरण्ड संहिता 2/18
अधास्य शेते हृदयं निधाय भूमौ च पादौ च प्रसार्यमाणौ ।
शिरे च धृत्वा करदण्डयुग्मे देहाग्निकारं मकरासनं तत् ॥ घेरण्ड संहिता, अध्याय 2, श्लोक 40

25.9 सारांश

प्रस्तुत पाठ में आपने उपरोक्त पाँच आसनों का अध्ययन किया। जिसके अन्तर्गत आपने आसनो की विधियों के साथ साथ लाभ एवं सावधानियों का भी अध्ययन किया। इन आसनो में एक विश्रान्तिदायक तथा चार शरीर सर्वधनात्मक आसन है। प्रिय विद्यार्थियों आसनो की विविध कियाविधि का अध्ययन करने के बाद आप इस बात से भली भाँति अवगत हो चुके होंगे कि वर्तमान युग में प्रत्येक व्यक्ति के लिए आसन कितने उपयोगी है। आसनो के नियमित अभ्यास से वे किसी प्रकार स्वयं को स्वस्थ्य रख दीर्घायु प्राप्त कर सकते है, तथा हठयोग के प्रमुख लक्ष्य यानि राजयोग की प्राप्ति कर सकते है। किन्तु किसी भी आसन को पुस्तक में पढ़कर न किया जाए तो बेहतर होगा। आसनो के प्रारम्भ में कुशल मार्ग दर्शन नितान्त आवश्यक है, तभी आसन लाभ प्रदान करते है। इसलिए प्रत्येक आसन की विधि को भली - भांति सीखकर ही अभ्यास को प्रारम्भ करें।

25.10 शब्दावली

१.	नौका	:	नाव
२.	भुजंग	:	साँप
३.	शलभ	:	टिड्डा नामक कीट
४.	मकर	:	मगरमच्छ
५.	एड्रिनल	:	अधिवृक्क ग्रन्थि

६. सायटिका : उरो वेदना

७. उदरवायु विकार : अपान वायु का प्रकुपित होना

25.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. योगदर्शने स्वास्थ्यविज्ञानम् (2014), डा. धरणी ढुङ्गेल । प्रतिभा प्रकाशन, शक्तिनगर, दिल्ली 110007

2. योगासनों के स्वरूप एवं उनकी वैज्ञानिकता (2019), डा. नवनीत मलेठिया | आइडियल पब्लिकेशन, जयपुर – 302003 ।

3. हठयोग ,(1985)सुरेन्द्र कुमार शर्मा । प्रकाशक 110007 –दिल्ली ,जवाहर नगर ,ईस्टर्न बुक लिंकर्स :

4. Positive Health, Dr. R Nagarathna and Dr. H R Nagendra, Published by – Swami Vivekananda Yoga Prakashana, Bangalore – 560019.

5. योगदीपिका (2005), बी.के.एस.आयंगार । ओरियंट लॉंग्मैन प्राइवेट लिमिटेड, हैदराबाद-500029 (आन्ध्रा प्रदेश), भारत ।

25.12 सहायक ग्रन्थ

1 योग विज्ञान, हठयोग परिचय (2002), मानव चेतना एवं योग विज्ञान संकाय, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, गायत्रीकुंज-शान्तिकुंज विस्तार, हरिद्वार ।

2. सरल योग शिक्षा (2015), डा. वासुदेव शर्मा, जीवन पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लि. इण्डिया ।

3. योग (2019), प्रकाशक - विवेकानन्द केन्द्र प्रकाशन ट्रस्ट, चैन्नै (पश्चिम बंगाल), भारत ।

25.13 बोध प्रश्नोत्तर

१. d

२. b

३. भुजंगासन

25.14 अभ्यास प्रश्न

1. शलभासन की आवश्यकता तथा महत्त्व पर प्रकाश डालिए ।
2. धनुरासन की सावधानियाँ स्पष्ट कीजिए ।
3. मकरासन करने की विधि लिखिए ।
4. भुजंगासन के शारीरिक लाभ क्या-क्या हैं ?

25.15 परियोजना कार्य

१. एक आसन का चार्ट बनाकर प्रभाव के संकेत दीजिए

षड् विंशति पाठ

पीठ के बल किए जाने वाले आसन

26.1 प्रस्तावना

26.2 उद्देश्य

26.3 उत्तानपादासन

26.4 सर्वांगासन

26.5 हलासन

26.6 मत्स्यासन

26.7 चक्रासन

26.8 शवासन

बोध प्रश्न

26.9 ग्रन्थ का मूलपाठ

26.10 सारांश

26.11 शब्दावली

26.12 सन्दर्भ ग्रन्थ

26.13 सहायक ग्रन्थ

26.14 बोध प्रश्नोत्तर

26.15 अभ्यास प्रश्न

26.16 परियोजना कार्य

26.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व आपने उदर के बल किए जाने वाले आसनों का अध्ययन किया । जिसमें आपने शरीर के विभिन्न अंगों पर पड़ने वाले प्रभाव को अनुभव किया । आसन से स्थिरता, स्वास्थ्य तथा अंग में हल्कापन आता है । स्थिर व सुखकर शारीरिक स्थिति मानसिक संतुलन लाती है और मन की चंचलता को भी रोकती है। आसन शारीरिक व्यायाम मात्र नहीं है वे शारीरिक स्थितियां है। शताब्दियों पूर्व शरीर की प्रत्येक मांसपेशी, नाड़ी और ग्रंथि को प्रयोग में लाने के लिए आसनों का विकास हुआ है। योगी आसनों के अभ्यास से शरीर पर विजय प्राप्त करता है और उसे आत्मा के योग्य साधन बनाता है।

प्रस्तुत पाठ में आप पीठ के बल किए जाने वाले आसनों को जानेंगे और उनकी विधि, लाभ एवं सावधानियों को समझेंगे -

26.2 उद्देश्य – इस पाठ को पढकर आप जान पायेंगे -

- ❖ उत्तानपादासन विधि, प्रभाव, सावधानियाँ आदि का परिचय
- ❖ सर्वांगासन विधि, प्रभाव, सावधानियाँ आदि का परिचय
- ❖ हलासन विधि, प्रभाव, सावधानियाँ आदि का परिचय
- ❖ मत्स्यासन विधि, प्रभाव, सावधानियाँ आदि का परिचय
- ❖ चक्रासन विधि, प्रभाव, सावधानियाँ आदि का परिचय
- ❖ शवासन विधि, प्रभाव, सावधानियाँ आदि का परिचय
- ❖ आसनों से सम्बन्धित विशेष तथ्यों की जानकारी
- ❖ आसनों का शारीरिक-मानसिक एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य पर प्रभाव

26.3 उत्तानपादासन

1. **शब्दार्थ एवं नामकरण** – उत्तान का अर्थ तना हुआ अथवा मुँह ऊपर किये मेरुदण्ड के बल लेटा हुआ है और पाद का अर्थ पाँव है। ऐसी स्थिति जब साधक पीठ के बल लेटकर अपने पाँवों को तानते हुए ऊपर की ओर उठाकर रखें, उसे उत्तानपादासन कहते है।
2. **नाम** – संस्कृत = उत्तानपादासनम् , हिन्दी = उत्तान पाद आसन और अंग्रेजी = Leg Raised Pose।
3. **आसन क्रम** –
   - सर्वप्रथम अभ्यासी पीठ के बल भूमि पर लेट जायें।
   - अपने हाथों को अपनी जँघाओं के पास स्थापित करें और हथेलियों का रुख भूमि की तरफ रखें।

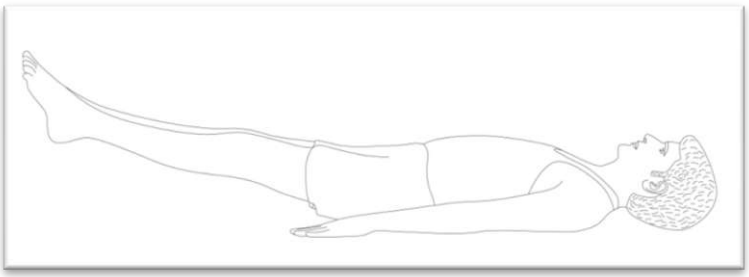

   - फिर पूरक-कुम्भक करके दोनों पाँवों को धीरे-धीरे से 30 डिग्री तक उठाकर स्थिर रखें।
   - यथा सामर्थ्य रोकर रखे, फिर रेचक करते हुए पाँवों को विश्राम दें।
   - नूतन अभ्यासियों को यह अभ्यास दो से तीन बार दोहराना चाहिए।
4. **कालावधि** – पन्द्रह सैकण्ड से दो मिनट तक अथवा सामर्थ्यानुसार रोककर रखें।
5. **प्रभाव** –

1) शारीरिक -

- नाभि न डिगना यानि नाभिकन्द बलिष्ठ बनती है। जिसके परिणामस्वरूप पाचन तन्त्र को बल मिलता है और समस्त उदरविकार समाप्त होते है।
- मेरुदण्ड की माँसपेशियाँ मजबूत होती है तथा कार्यक्षमता में वृद्धि भी होती है।
- उदर की अतिरिक्त वसा को कम करके शरीर को ऊर्जावान बनाता है।
- ग्रीवा की ग्रन्थियों को मजबूती प्रदान करता है।

2) मानसिक –

- साधक का मन शान्त व क्रोध नियन्त्रित होने लगता है।

3) आध्यात्मिक -

- ब्रह्मचर्य की साधना विकसित होती है। जिससे साधक अपनी साधना को उन्नत बनाने में सक्षम होता है।

6. **चक्रों पर प्रभाव** – मणिपूरचक्र।
7. **ग्रन्थियों पर प्रभाव** – अधिवृक्क (एड्रिनल) और प्रजनन व शुक्र ग्रन्थियाँ।
8. **सावधानियाँ** –

- उच्चरक्तचाप, हृदयरोगी, उरोवेदना (साइटिका), रीड्डु व पेट की शल्यचिकित्सा (ओप्रेशन) दौरान, गर्भावस्था काल में अभ्यास निषेध है।
- पृष्ठ वेदना वाले रोगी इस अभ्यास को एक-एक पाँव से करें।

9. **विशेष** –

- अत्यधिक पृष्ठ कष्ट वाले रोगी प्रशिक्षक के निरीक्षण में करें।
- आसन की अन्तिम स्थिति में घुटने न मुड़ें और पाँवों की एडी-पञ्जें मिले रहें।
- कन्धों व ग्रीवा को शिथिल बनाकर रखें और सम्पूर्ण ध्यान मणिपूरचक्र पर।

26.4 सर्वांगासन

1 **शब्दार्थ एवं नामकरण** – सर्व+अंग= सर्वांग अर्थात् पूर्ण अंगों का आसन यानि इस अभ्यास में शरीर के सभी अवयवों का सर्वांगीण विकास हो जाता है अत: इसे सर्वांगासन कहते है।

2 **नाम** – संस्कृत = सर्वांगासनम् , हिन्दी = सर्वांग आसन और अंग्रेजी = Shoulder Stand Yoga Pose।

3 **आसन क्रम** –

- सर्वप्रथम पीठ के बल एक तान लेट जायें।
- उसके बाद पूरक करके श्वास कुम्भक, फिर दोनों पाँवों को धीरे-धीरे 30 डिग्री तक ले जाकर रोकें और श्वास रेचक करें।

- फिर पुन: पूरक-कुम्भक के साथ पाँव 90 डिग्री तक लेकर जायें और रेचक करें।
- तत्पश्चात् पूरक करते हुए अपनी पीठ को उठायें तथा दोनों हाथों की हथेलियों से पृष्ठभाग को सहारा दें। यह स्थिति 'सालम्ब सर्वांगासन' कहलाती है।
- यदि अभ्यास उत्तम हो तो दोनों हाथों की हथेलियाँ भूमि पर स्पर्श करके रखें। यह 'सर्वांगासन' कहलाता है।
- अन्तिम स्थिति में श्वास-प्रश्वास मन्द गति से लें।

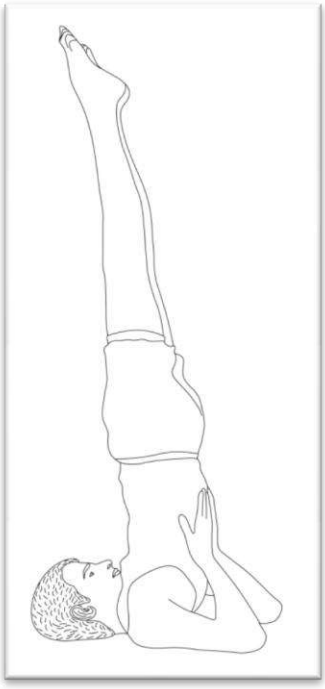

4 **कालावधि** – पन्द्रह सैकण्ड से तीन मिनट तक वा नियमित अभ्यास के पश्चात् समय को बढायें।

5 **प्रभाव** –

1) शारीरिक –

- यह अभ्यास मेरुदण्ड को सुदृढ और उससे सम्बन्धित समस्त माँसपेशियों को लचीला बनाता है।
- जठराग्नि को उदीप्त करता हुआ तथा भोजन का उचित पाचन करता है; जिससे अभ्यासी दीर्घकाल तक युवा बना रहता है।
- स्नायु तन्त्र को बलिष्ठ बनाता है और जिसके परिणाम स्वरूप आलस्य रहित, कार्य करने की क्षमता में वृद्धि और जीवन में उत्साह भरता है।
- अतिरिक्त चर्बी (वसा) को कम करके अजीर्णता, कोष्ठबद्धता, गुल्मरोग, मधुमेह, बवासीर, ग्रीवा से सम्बन्धित रोग और सिर दर्द वालों के लिए लाभप्रद है।
- नेत्र ज्योति में वृद्धि, बालों का पकना व न झड़ना, मुखमण्डल की आभा को बढता है और मस्तिष्क को पूर्ण विश्राम प्रदान करता है।
- साधक की प्रज्ञा तथा बुद्धि तीक्ष्ण होती है।
- गर्भाशय को बलिष्ठ बनाता है तथा ऋतुधर्म को भी नियमित करता है।
- कद वृद्धि में सहायक है।
- मिर्गी रोग एवं अविकसित मस्तिष्क वालों के लिए आसन अति उत्तम है।

<u>विशेष लाभ</u> - कण्ठ से सम्बन्धित रोग, स्वरतन्त्र का अस्वस्थ होना, फेफड़ों के रोगों में (दमा रोग) विशेष लाभकारी, जुकाम-खाँसी रोग आदि में लाभप्रद हैं।

2) मानसिक –

- मनोविकृत उत्तेजना, कामवासनाओं के संवेगों को शान्त कर मन को एकाग्र करने में सहायक है।

3) आध्यात्मिक -

- चित्त को शान्त करके आध्यात्म की ओर अग्रसित करता है।
- 'कुण्डलिनी शक्ति' को जाग्रत करने में इस आसन की बहुत बड़ी भूमिका है।

6 **चक्रों पर प्रभाव** – सहस्रार, आज्ञा, विशुद्धि चक्र।

7 **ग्रन्थियों पर प्रभाव** – अवटु-परावटु, पीयूष ग्रन्थियाँ।

8 **सावधानियाँ** – इस आसन की सावधानियाँ 'हलासन' के समान रहेंगी।

9 **विशेष** –

- इस आसन की विशेषता भी 'हलासन' के समान रहेंगी।
- पूर्ण स्थिति प्राप्त न होने पर साधक 'विपरीत करणी मुद्रा' का अभ्यास कर सकता है।

26.5 हलासन

1 **शब्दार्थ एवं नामकरण** – इस आसन में अन्तिम स्थिति भारतीय हल के समान होने के कारण इसे हलासन के नाम से पुकारा जाता है।

2 **नाम** – संस्कृत = हलासनम् , हिन्दी = हल आसन और अंग्रेजी = Plow pose yoga।

3 **आसन क्रम** –

- सर्वप्रथम पीठ के बल एक तान लेट जायें।
- उसके बाद पूरक करके श्वास कुम्भक, फिर दोनों पाँवों को धीरे-धीरे 30 डिग्री तक ले जाकर रोकें और श्वास रेचक करें।

- फिर पुन: पूरक-कुम्भक के साथ पाँव 90 डिग्री तक लेकर जायें और रेचक करें।
- तत्पश्चात् पूरक करते हुए अपनी पीठ को उठायें तथा दोनों हाथों की हथेलियों से सहारा दें और रेचक के साथ धीरे-धीरे मेरुदण्ड को मोड़ते हुए दोनों पाँवों के पञ्जों को भूमि पर स्पर्श करें।
- दोनों हाथों की हथेलियाँ भूमि पर स्पर्श करके रखें।
- अन्तिम स्थिति में श्वास-प्रश्वास समान्य बना कर रखें।

4 कालावधि –15 सैकण्ड से 3 मिनट तक वा नियमित अभ्यास के पश्चात् समय बढाया जा सकता है।

5 प्रभाव –

1) शारीरिक –

- यह अभ्यास मेरुदण्ड को सुदृढ और उससे सम्बन्धित समस्त माँसपेशियों को लचीला बनाता है।
- जठराग्नि को उदीप्त करता हुआ तथा भोजन का उचित पाचन करता है; जिससे अभ्यासी दीर्घकाल तक युवा बना रहता है।
- स्नायु तन्त्र को बलिष्ठ बनाता है और जिसके परिणाम स्वरूप आलस्य रहित, कार्य करने की क्षमता में वृद्धि और जीवन में उत्साह भरता है।
- अतिरिक्त चर्बी (वसा) को कम करके अजीर्णता, कोष्ठबद्धता, गुल्मरोग, मधुमेह, बवासीर, ग्रीवा से सम्बन्धित रोग और सिर दर्द वालों के लिए लाभप्रद है।
- नेत्र ज्योति में वृद्धि, बालों का पकना व न झड़ना, मुखमण्डल की आभा को बढाता है और मस्तिष्क को पूर्ण विश्राम प्रदान करता है।
- साधक की प्रज्ञा तथा बुद्धि तीक्ष्ण होती है।
- गर्भाशय को बलिष्ठ बनाता है तथा ऋतुधर्म को नियमित भी करता है।
- कद वृद्धि में सहायक है।

2) मानसिक –

- मनोविकृत उत्तेजना, कामवासनाओं के संवेगों को शान्त कर मन को एकाग्र करने में सहायक है।

3) आध्यात्मिक -

- चित्त को शान्त करके आध्यात्म की ओर अग्रसित करता है।
- 'कुण्डलिनी शक्ति' को जाग्रत करने में इस आसन की बहुत उपयोगिता है।

6 चक्रों पर प्रभाव - मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, विशुद्धिचक्र।

7 ग्रन्थियों पर प्रभाव - जनन व शुक्रग्रन्थि, वृक्क (एड्रिनल), अवटु-परावटु, क्लोम आदि ग्रन्थियाँ।

8 सावधानियाँ –

- उच्चरक्तचाप, हृदय रोग, यकृत व तिल्ली में वृद्धि वाले व्यक्तियों को अभ्यास निषेध है।
- ग्रीवा कशेरुकाओं (सर्वाइकल स्पाण्डिलाइटिस) में पीडा, उरोवेदना (साइटिका), कमर दर्द, आंत्रवृद्धि तथा मूर्च्छा आने वाले रोगियों को यह अभ्यास नहीं करना चाहिए।
- गर्भावस्था और ऋतुधर्म काल में आसन न करें (यह नियम अधिकतम सभी आसनों में लागू होता है; कुछ एक आसनों को छोड़कर)।

9 **विशेष –**

- हलासन के पश्चात् उसका पूरक आसन भुजंगासन व मत्स्यासन करना चाहिए।
- ग्रीवा शिथिल बनाकर रखें और घुटनों को सीधा रखें।
- शीघ्रता से पाँवों को न उठायें तथा प्रारम्भ काल में पाँवों को मोड़कर भी उठा सकते हैं।

26.6 मत्स्यासन

1. **शब्दार्थ एवं नामकरण** – मत्स्य का अर्थ मछली है। यह मछली की आकृति के समान होने के कारण इसे मत्स्यासन कहते हैं। यह रोगों को नष्ट करने वाला होता है।
2. **नाम** – संस्कृत = मत्स्यासनम् , हिन्दी = मत्स्य आसन और अंग्रेजी = Fish Pose।
3. **श्लोक एवं अर्थ** –

   मुक्तपद्मासनं कृत्वा उत्तानशयनञ्चरेत्।
   कूर्पराभ्यां शिरो वेष्ट्य मत्स्यासनन्तु रोगहा॥ घेरण्ड संहिता 2/21

अर्थ - मुक्तपद्मासन लगाकर घुटनों में सिर का वेष्टन करके सीधे होकर (चित्तहोकर) शयन कर, इस प्रकार यह मत्स्यासन सब रोगों का नाशक होता है।

4. **आसन क्रम** –

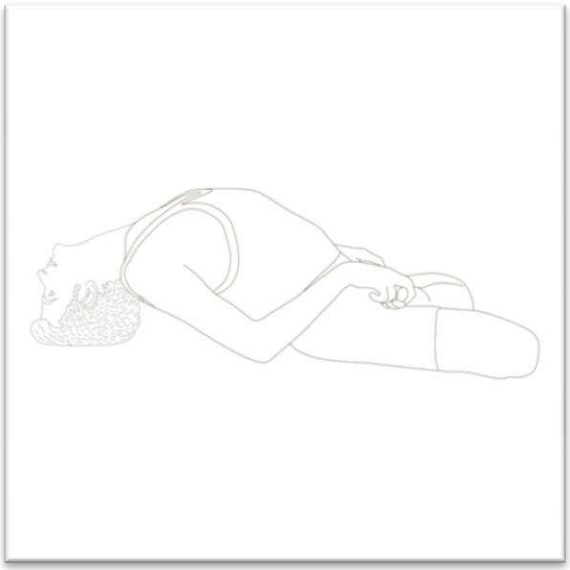

- सर्वप्रथम पद्मासन में बैठकर कोहुनियों के सहारे पीछे की ओर झुकते हैं और सिर का ब्रह्मरंध्र को जमीन पर रखते हैं।
- फिर दोनों हाथों से पैरों के पंजो को पकड़ लेते हैं।
- कोहनियाँ जमीन पर रहती हैं। अत: पैर और जाँघ पद्मासन की अवस्था में जमीन पर, मेरूदण्ड एक सेतु की तरह चापाकार स्थिति में और सिर भूमि पर रहेगा।
- सिर की स्थिति को इस प्रकार व्यवस्थित करें कि मेरूदण्ड का अधिकतम विस्तार हो।
- शरीर का भार नितम्बों एवं पैरों पर डालकर भुजाओं एवं पूरे शरीर को शिथिल बनायें।
- आँखे बन्द करें तथा धीमा, गहरा श्वसन करें।
- फिर जिस क्रम से आप मत्स्यासन की स्थिति में आये थे, उसके वितरीत क्रम से प्रारम्भिक स्थिति में लौट आयें।
- पैरों को बदलकर अभ्यास की पुनरावृत्ति करें। यह मत्स्यासन का अभ्यास है।
- ध्यान दें - लेटते समय रेचक फिर पूरक तथा अन्तिम अवस्था में श्वास मन्द एवं गहरी होती है।

5. **कालावधि** – एक मिनट से तीन मिनट तक अथवा उच्च साधक यथा शक्ति से समय को बढायें।

6. **प्रभाव** –

    1) शारीरिक –

        - आँतों तथा आमाशय के अंगों का विस्तार होता है।
        - मेरूदण्ड सुदृढ बनता है; साथ हि पेट के सभी रोगों के लिए लाभदायक है।
        - यह प्रदाही एवं खूनी बवासीर को भी दूर भगाता है।
        - प्रजनन संस्थान के रोगों को दूर करने या उनसे बचाव में सहायता मिलती है।
        - इस अभ्यास से फेफड़ों का विस्तार होता और फेफड़ों तथा श्वसन से संबन्धित रोग दूर होते हैं।
        - मस्तिष्क के रक्त प्रवाह में लाभप्रद है। क्योंकि मस्तिष्क में ओक्सीजन युक्त रक्त की मात्रा बढ जाती है।
        - फेफड़ों को बल मिलता है और श्वास-प्रश्वास की क्रिया सक्रिय होती है।
        - हृदय स्थान के मज्जा तन्तु समूह का रक्त प्रवहन सुचारु रूप से होने लगता है।
        - नेत्र-कान-नासिका दोष, मधुमेह, निम्नरक्तचाप और मोटापे में लाभप्रद हैं।

    2) मानसिक –

        - निम्नरक्तचाप, हृदयरोग, अवसाद, स्वप्नदोष, चिड़चिड़ापन आदि मानसिक रोगों में लाभप्रद हैं।
        - अन्त:स्रावी ग्रन्थियों पर विशेष प्रभाव पड़ता है जो कि एक प्रकार का मानसिक रोग हैं।
        - शरीर हल्कापन और ऊर्जावान अनुभव करता है। जिससे चित्त प्रसन्न रहता है।
        - एकाग्रता तथा स्मृति बढती हैं।

    3) आध्यात्मिक –

        - चित्त एकाग्र होकर निरुद्ध होने लगता है जो समाधि अवस्था को उपलब्ध कराने में सहायक है।

7. **चक्रों पर ध्यान एवं प्रभाव** – विशुद्धि और आज्ञा चक्र। कुछ आचार्यों ने मणिपूर और अनाहत चक्र को भी स्वीकारा हैं।

8. **ग्रन्थियों पर प्रभाव** – पीनियल, परावटु-अवटु (गलग्रन्थियाँ), बाल्यग्रन्थि (थायमस), अधिवृक्क (एड्रिनल) ग्रन्थियाँ प्रभावित होती हैं।

9. **सावधानियाँ** –

    - हृदय रोग, चक्कर आना, सिर दर्द, अम्लपित्तविकार (पेप्टिक अल्सर), आन्त्रवृद्धि, मेरूदण्ड से सम्बन्धित रोगों या किसी गंभीर रोग से पीड़ित व्यक्तियों को इस आसन का अभ्यास नहीं करना चाहिए।
    - गर्भवती महिलाओं को भी इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए।
    - ग्रीवा अपकशेरुकता विकार (सर्वाकिल सपोन्डोलाइटिस), नेत्र, कान, नासिका और उदर-वक्षस्थल की शल्यक्रिया हुई हो तो अभ्यास निषेध है

10. **विशेष** –

- यह सर्वांगासन का पूरक आसन है।
- शरीर का दबाव कोहनियों पर रहें न कि ग्रीवा या कमर पर।
- अन्तिम स्थिति में श्वास-प्रश्वास तीव्रता से न करें।
- पाँवों को सीधा फैलाकर अर्थात् बिना पद्मासन के भी अभ्यास किया जा सकता हैं।

26.7 चक्रासन

1 **शब्दार्थ एवं नामकरण** – चक्र का अर्थ पहिया। इस में शरीर की मुद्रा पहियें के समान हो जाती है अत: इसे चक्रासन कहते है।

2 **नाम** – संस्कृत = चक्रासनम् , हिन्दी = चक्रासन, पहिया आसन और अंग्रेजी = Wheel Pose।

3 **आसन क्रम** –

क्रम प्रकार एक

- सर्वप्रथम पीठ के बल भूमि पर एक तान होकर लेट जायें।
- फिर पाँवों को मोड़कर नितम्ब प्रदेश के पास स्थापित करें।
- दोनों हाथों को कोहनियों से मोड़कर कानों के पास इस तरह से रखें, तांकि अँगुलियों का रूख अन्दर की ओर हो।
- तत्पश्चात् पूरक करते हुए हाथों, कन्धों व पाँवों के बल से शरीर को ऊपर की ओर उठायें।
- पूर्ण स्थिति प्राप्त हो जाने पर धीरे-धीरे रेचक करें।
- नूतन अभ्यासी अन्तिम स्थिति में मन्द गति से पूरक-रेचक करें परन्तु अभ्यासी कुम्भक करके रखें।
- उसी क्रम से रेचक करते हुए धीमी गति से समान्य स्थिति में आ जायें।

क्रम प्रकार दो

- सर्वप्रथम अपने स्थान पर शिथिल दण्डासन में खड़े हो जायें।
- पाँवों के मध्य दो से तीन फीट का अन्तर लें।
- पूरक करते हुए धीरे-धीरे हाथों को सामने की ओर से ऊपर उठायें।
- आन्तरिक कुम्भक के साथ कटिप्रदेश से मोड़ते हुए पीछे की ओर धीरे-धीरे जाते हुए भूमि पर हाथों को स्पर्श करें।

- तत्पश्चात् धीमी गति से रेचक करें अथवा कुम्भक में रहें।
- शरीर का सम्पूर्ण भार मध्यस्त यानि हाथों व पाँवों पर समान रूप से रहें।
- पूरक करते हुए धीरे-धीरे बिना झटके के वापिस सामान्य स्थिति में आकर रेचक करें।

4 कालावधि – 10 सैकण्ड से 30 सैकण्ड तक अथवा स्व क्षमतानुसार रोकें।

5 प्रभाव –

1) शारीरिक -

- मेरुदण्ड में लचीलापन आता है, जिसके परिणाम स्वरूप शरीर में रक्तसंचार उत्तम प्रकार से कार्य करता है।
- हाथ, पैर, मणिबन्ध, स्कन्ध, पृष्ठ प्रदेश, जाँघ आदि समस्त अंगों की माँसपेशियों व हड्डियों में शक्ति का संचार होता है।
- फेफड़ो के प्रसारण से उनकी श्वसन क्षमता में वृद्धि होती हैं।
- पसलियों की ताकत बढने के साथ-साथ वक्षस्थल चौडा व कद वृद्धि में सहायक है।
- हृदय में रक्तसंचार का कार्य उचित होने लगता है।
- शरीर की जीवनी शक्ति बढती है और साधक दीर्घकाल पर्यन्त स्वस्थ एवं निरोग रहता है।
- स्त्रियों के आन्तरिक अवयवों को सुदृढ बनाकर प्रजनन अंगों को भी शक्ति प्रदान करता है।
- उदर वायु विकारों का शमन कर शरीर का अतिरिक्त मोटापा भी कम करता है।
- यकृत, प्लीहा को सुदृढ बनाता है, जिससे भूख-प्यास का सन्तुलित होना, पाचनतन्त्र का ठीक कार्य करना, नाभि का न डिगना तथा अपच, अजीर्णता, कोष्ठबद्धता, आमवात आदि जैसे समस्त रोगों का नाश होता हैं।
- मुखमण्डल के सभी अवयव उत्तम कार्य करने में सक्षम बनते हैं तथा चेहरे पर ओज एवं कान्ति का विस्तार होता है।

2) मानसिक –

- मनोविकारों को शान्त कर चित्त को एकाग्र बनाता है।
- कल्पना शक्ति को बढाने में सर्वोत्कृष्ट अभ्यास है।

3) आध्यात्मिक –

- सात्त्विकता को बढा कर अविद्या का नाश करता है।
- शक्ति का ऊर्ध्वरोहण कर 'चैतन्य केन्द्रों' व 'सुषुम्ना नाडी' का जाग्रण करता है।

6 चक्रों पर प्रभाव – मूलाधार, स्वाधिष्ठान, विशुद्धिचक्र।

7 ग्रन्थियों पर प्रभाव – अधिवृक्क, जनन व शुक्रग्रन्थियाँ।

8 सावधानियाँ –

- पित्ताधिक्य अवस्था में (अल्सर, पेप्टिक अल्सर), वृषणरोग, पेट में सूजन, गर्भावस्था, पृष्ठ वेदना, मेरूदण्ड की अस्वस्थता, ग्रीवा कशेरुका की वेदना में तथा संधिवात (गठिया) के रोगी भी, इस आसन का अभ्यास न करें।
- उच्चरक्तचाप, हृदय रोग, चक्कर आने पर, नेत्र दोष आदि में वर्जित है।

9 **विशेष** –

- आसन के प्रारम्भ और अन्त में शीघ्रता जरा भी न करें।
- सिर को हाथों के मध्यस्थ ही रखें अर्थात् भुजाओं के कान स्पर्श रहें।
- पाँवों और हाथों के अन्तर एक समान होना चाहिए।

26.8 शवासन

1. **शब्दार्थ एवं नामकरण** – शव का अर्थ होता है- मृत शरीर। इस आसन मे शरीर की स्थिति मुर्दे के समान हो जाती है, इसलिए इस आसन का नाम शवासन है।
2. **नाम** – संस्कृत = मृतासनम्, शवासनम् , हिन्दी = शवासन और अंग्रेजी = Corpse Pose।
3. **श्लोक एवं अर्थ** –

उत्तान शववद्भूमौ शयानन्तु शवासनम्।
शवासनं श्रमहरं चित्तविश्रान्तिकारणम् ॥ घेरण्ड संहिता, 2/20
भावार्थ - शव के समान भूमि में सीधा शयन करना शवासन कहलाता है। यह शवासन श्रम को हरने वाला और चित्त को विश्राम दिलाने का कारण होता है ॥

उत्तानं शववद् भूमौ शयनं तच्छवासनम्।

श्वासनं श्रान्तिहरं चित्तविश्रान्तिकारकम् ॥ हठयोग प्रदीपिका, 31

4. **आसन क्रम** –

- सर्वप्रथम पीठ के बल सीधे लेट जाते हैं।
- दोनों पाँवों में लगभग एक हस्त का अन्तर रखते हैं।
- दोनों हाथों को शरीर से लगभग छः इन्च दूर रखते हैं और हथेलियाँ आसमान की ओर रहती है।
- अंगुलियाँ हल्की सी मुड़ी हुई तथा आँखे बन्द रहेगी।
- गर्दन सुविधानुसार किसी एक तरफ को कर देते है।

- कुछ समय इसी अवस्था में विश्राम करते हैं।

5. **कालावधि** – साधक अभ्यास आवश्कतानुसार कर सकता है, समय निश्चित नही।

6. **प्रभाव** –

   1) शारीरिक –

      - यह शरीर के प्रति सजगता प्रदर्शित करता है तथा थकान को दूर करता है।
      - उच्च रक्तचाप, मधुमेह, तन्त्रिका तन्त्र दौर्बल्य, हृदय रोगों से ग्रसित रोगी को यह आसन बहुत लाभ पहुँचाता हैं।
      - इस आसन को अन्य आसनों के बीच-बीच में और अन्त में किया जाता है।

   2) मानसिक –

      - अनिद्रा में अधिक लाभदायक और स्मरणशक्ति भी बढती है।
      - शरीर व मन को शान्ति तथा शिथिलता प्रदान कर तनाव जनित चिन्ता, तनाव, भय, शोक आदि अन्य रोगों को दूर करता है।
      - मानसिक सात्त्विकता का वर्धन होता है।

   3) आध्यात्मिक –

      - प्रत्याहार की पूर्णता को प्राप्त होकर संयम की प्राप्ति होती है।

7. **चक्रों पर प्रभाव** – कुण्डलिनी शक्ति का जाग्रण होता है।

8. **ग्रन्थियों पर प्रभाव** – समस्त अन्त:स्रावी ग्रन्थियों का संतुलन होता हैं।

9. **सावधानियाँ** –

   - जिन्हें डाक्टर ने किसी कारणवश पीठ के बल सोने से मना किया हो वे इसे न करें।
   - इस आसन में मुँह बन्द, आँखें बन्द, सिर, मेरुदण्ड व गर्दन तीनों एक सीध में तथा चेहरे पर किसी प्रकार का तनाव नहीं होना चाहिए।

10. **विशेष** –

    - आसन में नींद नही लेनी चाहिए।
    - शरीर की स्थिति भलिभाँति होनी चाहिए, तांकि गुरुत्वाकर्षण का प्रभाव न्यूनतम रहें।

बोध प्रश्न

१. मत्स्यासन में शारीरिक आकृति किस के समान प्रतीत होती हैं।

   a. मच्छली के समान
   b. मेढक के समान
   c. टिड्डे के समान
   d. सर्प के समान

२. चक्रासन को श्रेणी में रखा जाता है।

   a. शरीर संवर्धनात्मक

b. विश्रान्तिदायक

c. ध्यानात्मक

d. उपरोक्त मे से कोई नही

३. समस्त चक्र जागरण के लिए सर्वोत्तम आसन .....है।

26.9 ग्रन्थ का मूलपाठ

मुक्तपद्मासनं कृत्वा उत्तानशयनश्चरेत् ।
कूर्पराभ्यां शिरो वेष्ट्य मत्स्यासनन्तु रोगहा ॥ घेरण्ड संहिता 2/21

उत्तान शववद्भूमौ शयानन्तु शवासनम् ।
शवासनं श्रमहरं चित्तविश्रान्तिकारणम् ॥ घेरण्ड संहिता, 2/20

उत्तानं शववद् भूमौ शयनं तच्छवासनम् ।
श्वासनं श्रान्तिहरं चित्तविश्रान्तिकारकम् ॥ हठयोग प्रदीपिका, 31

26.10 सारांश

प्रस्तुत पाठ में आपने उपरोक्त छह आसनों का अध्ययन किया। जिसके अन्तर्गत आपने आसनो की विधियों के साथ साथ लाभ एवं सावधानियों का भी अध्ययन किया। इन आसनो में एक विश्रान्तिदायक तथा पाँच शरीर सर्वधनात्मक आसन है। **स्वामी स्वात्माराम** ने हठयोग प्रदीपिका में आसनों की सिद्धि के विषय में कहा है कि – **"कुर्यात्तदासनं स्थैर्यमारोग्यं चांगलाघवम्"** 1/17 आसनों के सिद्ध हो जाने पर योगी को स्थिरता और अंगलाघव की प्राप्ति होती है। इस प्रकार हठयोग के आसनों से जहाँ सिद्धि प्राप्त होती है वहाँ स्थिरता, आरोग्यता और अंग लाघव भी प्राप्त होता है। महर्षि पतञ्जलि ने अपने योगसूत्र में आसनों की परिभाषा **"स्थिरसुखमासनम्"** 2/46 दी है।

26.11 शब्दावली

१.	सर्वांग	:	पूर्ण अंग अर्थात् सभी अवयव।
२.	उत्तान	:	तना हुआ।
३.	मत्स्य	:	मच्छली।
४.	अवसाद	:	उदासी, सुस्ती, एक प्रकार का मानसिक रोग
५.	प्रदाही	:	दाह, जलन, ताप।
६.	मणिबन्ध	:	कलाई।
७.	आमवात	:	जोड़ों का रोग, आँव रोग
८.	ऊर्ध्वरोहन	:	ऊपर चढना

26.12 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. योगदर्शने स्वास्थ्यविज्ञानम् (2014), डा. धरणी दुड़गेल। प्रतिभा प्रकाशन, शक्तिनगर, दिल्ली 110007

2. योगासनों के स्वरूप एवं उनकी वैज्ञानिकता (2019), डा. नवनीत मलेठिया | आइडियल पब्लिकेशन, जयपुर – 302003।

3. हठयोग ,(1985)सुरेन्द्र कुमार शर्मा। प्रकाशक 110007 –दिल्ली ,जवाहर नगर ,ईस्टर्न बुक लिंकर्स :

4. Positive Health, Dr. R Nagarathna and Dr. H R Nagendra, Published by – Swami Vivekananda Yoga Prakashana, Bangalore – 560019.

5. योगदीपिका (2005), बी.के.एस.आयंगार। ओरियंट लॉंग्मैन प्राइवेट लिमिटेड, हैदराबाद-500029 (आन्ध्रा प्रदेश), भारत।

26.12 सहायक ग्रन्थ

1. डा. अमृत लाल गुर्वेन्द्र, डा. गायत्री गुर्वेन्द्र (2020), योगाऽमृत। किताब महल, दरियागंज, नई दिल्ली

2 योग विज्ञान, हठयोग परिचय (2002), मानव चेतना एवं योग विज्ञान संकाय, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, गायत्रीकुंज-शान्तिकुंज विस्तार, हरिद्वार।

3. सरल योग शिक्षा (2015), डा. वासुदेव शर्मा, जीवन पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लि. इण्डिया।

4. योग (2019), प्रकाशक - विवेकानन्द केन्द्र प्रकाशन ट्रस्ट, चैन्नै (पश्चिम बंगाल), भारत।

26.14 बोध प्रश्नोत्तर

१. a

२. a

३. चक्रासन

26.15 अभ्यास प्रश्न

१. सर्वांगासन की विधि, लाभ एवं सावधानियां स्पष्ट कीजिए।

२. मत्स्यासन शारीरिक-मानसिक एवं आध्यात्मिक प्रभावों को स्पष्ट कीजिए।

३. चक्रासन की चित्र सहित विधि लिखिए।

४. शारीरिक स्वास्थ्य मे शवासन की क्या भूमिका हैं ?

26.16 परियोजना कार्य

१. अपने आस-पास में 15 दिन योगासनों की शिक्षा दीजिए तथा एक रिपोर्ट तैयार कीजिए।

प्राक्शास्त्री प्रथम वर्ष प्रथम सत्रार्द्ध (योग प्रायोगिक - चतुर्थ क्रेडिट)

सप्तविंशति पाठ

प्राणायाम अर्थ, परिभाषा एवं भेद

27.1 प्रस्तावना

27.2 उद्देश्य

27.3 प्राणायाम का अर्थ

27.4 प्राणायाम की परिभाषा

बोध प्रश्न

27.5 ग्रन्थ का मूलपाठ

27.6 सारांश

27.7 शब्दावली

27.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

27.9 सहायक ग्रन्थ

27.10 बोध प्रश्नोत्तर

27.11 अभ्यास प्रश्न

27.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत पाठ में आप प्राणायाम का अर्थ, प्राण के भेद तथा परिभाषाओं को जानेंगे । प्राणायाम की महिमा तो सर्वविदित ही है जैसे – **प्राणो वै सुशर्मा सुप्रतिष्ठान: ।** (श 4/4/1/14)

तथा – **प्राण एष स पुरि शेते** । (गोपथ पू. 1/39)

अर्थात् 'प्राण ही शरीर रूपी पुरी में बसने के कारण पुरुष कहा जाता है' ।

वेदों मे एक उपाख्यान आता है जिसमें जिज्ञासु ऋषि से पूछता हैं – **'कस्मिन्तु भगवो विज्ञाने सर्वमिदं विज्ञतो भवति'** ? ऐसी कौनसी वस्तु है जिसका ज्ञान होने पर सब कुछ ज्ञात हो जाता है । ऋषि उत्तर देते हुए कहते है कि 'यह प्राण तत्व ही है जिसे जान लेने के बाद कुछ जानना अवशेष नहीं रहता ।'

प्रस्तुत पाठ में आप प्राणायाम के विषय में विस्तार से जानेंगे -

27.2 उद्देश्य – प्रस्तुत पाठ में आप जानेंगे -

- प्राण शब्द का अर्थ ।
- प्राण के भेद ।
- प्राणायाम की विभिन्न परिभाषा ।

27.3 प्राणायाम का अर्थ

प्राणायाम के बारे जानने से पूर्व प्राण क्या है ? इसका अर्थ क्या है ? इसका स्वरूप क्या है ? यह जानना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

प्राणायाम 'प्राणस्य आयाम:' प्राण और आयाम इन दो पदों से बना है। प्राण शब्द की व्युत्पत्ति 'प्र' उपसर्ग पूर्वक अन् (प्राणेन्) धातु से होती है। 'अन्' धातु का अर्थ जीवन शक्ति चेतना वाचक है। चेतना की जीवनी शक्ति को संकल्प बल के रूप में मापा गया है अत: प्राण शब्द का अर्थ चेतना शक्ति है।

प्राणायाम : - प्राणायाम एक यौगिक अभ्यास है और हठयोग एवं अष्टांग योग का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। प्राण+आयाम = प्राणायाम। इन दोनों शब्दों से मिलकर बना है।

'प्राण' का अर्थ है – जीवनी शक्ति और आयाम का तात्पर्य है – नियमन। इस प्रकार प्राणायाम का अर्थ हुआ – जीवनी शक्ति का नियमन। जीवनी शक्ति (वाइटल फोर्स या लाइफ फोर्स) वह है, जिसके कारण मन से लेकर सभी इन्द्रियों को कार्य करने की शक्ति मिलती है। रक्त संचार, श्वसन कार्य इसी प्राण शक्ति के कारण चलते हैं। नियमन करना प्राण शक्ति पर ऐच्छिक नियन्त्रण लाना और उसका विस्तार करना होता है। श्वसन का एक ओर प्राण से तथा दूसरी ओर मन के साथ सम्बन्ध है।

प्रश्नोपनिषद् के अनुसार – 'प्राण की व्याख्या संकल्प के रूप में की गई है।" सूक्ष्म दृष्टि से प्राण का अर्थ ब्रह्माण्ड में व्याप्त एक ऐसी ऊर्जा है जो जड़ और चेतन दोनों का समन्वित रूप है। जीवधारियों की दो हलचलें – एक 'ज्ञानपरक' तथा दूसरी 'क्रियापरक' दोनों को ही गतिशील रखने के लिए संव्याप्त प्राण ऊर्जा से पोषण मिलता है। प्राण संपूर्ण सृष्टि का मूल संरक्षक तत्त्व हैं।

अथर्ववेद में कहा भी हैं – प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे। यो भूत: सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥
(यस्य वशे) जिसके अधीन (इदम् सर्वम्) यह सब जगत् है, उस (प्राणाय नम:) प्राण के लिए मेरा नमस्कार है। (य: सर्वस्य ईश्वर:) जो प्राण सबका ईश्वर (भूत:) है और (यस्मिन् सर्वम् प्रतिष्ठितम्) जिसमें सब कुछ रहा है। 11/4/1
प्राण: प्रजा अनु वस्ते पिता पुत्रमिव प्रियम्। प्राणो ह सर्वस्येश्वरो यच्च प्राणाति यच्च न ॥
(पिता प्रियम् पुत्रम् इव) जिस प्रकार पिता प्रिय पुत्र के साथ रहता है, उस प्रकार (प्राण: प्रजा: अनु वस्ते) प्राण सब प्रजाओं के साथ रहता है। (यत् प्राणति) जो प्राण धारण करते हैं अरु (यत् च न) जो प्राण नहीं धारण करते, (प्राण: सर्वस्व ईश्वर:) प्राण ही उन सबका ईश्वर है।

इस प्रकार से प्राण एक ऐसी शक्ति है जिसके सहारे इस सृष्टि या ब्रह्माण्ड के जड़ और चेतन अपने स्वरूपों में अच्छी तरह दिखाई देते हैं। प्राण की व्याख्या करना उतना ही कठिन है जितना कि ईश्वर की करना। प्राण एक ऐसी ऊर्जा है जो सभी स्तरों पर ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। यह शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, आध्यात्मिक एवं ब्रह्माण्डीय ऊर्जा है। यह एक ऐसी ऊर्जा है जो जन्म देती है, सुरक्षा देती है और नष्ट भी करती है।

27.4 प्राण के भेद

हठयोग ग्रन्थों में शरीर की विभिन्न क्रियाओं को संचालित करने वाले प्राण तत्त्व को विभिन्न नामों से सम्बोधित किया गया हैं।

प्राण को दो भागों में बांटा गया हैं – 1) महाप्राण और 2) उपप्राण। विद्वानों ने महाप्राण को स्थूल प्राण और उपप्राण को सूक्ष्म प्राण से सम्बोधित किया हैं। इन प्राणों को पांच-पांच भागों में विभाजित किया है।

महाप्राण – प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान ।

उपप्राण – नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त, धनञ्जय ।

इसका वर्णन गोरक्ष-संहिता 1/32-36 के अनुसार शरीर में उपस्थित स्थूल-सूक्ष्म प्राणों का स्थान -

	शरीरस्थ प्राण	शरीरस्थ स्थान
1.	प्राण	कण्ठ से हृदय पर्यन्त ।
2.	अपान	नाभि से नीचे मूलाधार तक ।
3.	समान	हृदय के नीचे से नाभि तक ।
4.	व्यान	समस्त शरीर में व्याप्त ।
5.	उदान	कण्ठ के ऊपर से सिर तक ।

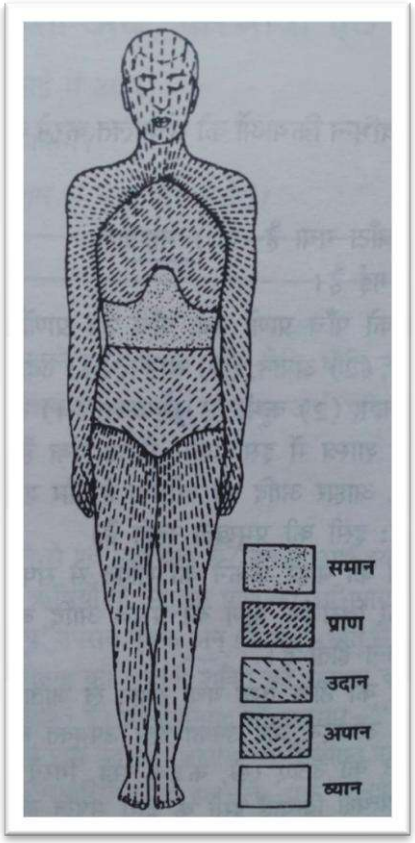

सूक्ष्मप्राणों के स्थान :

	शरीरस्थ प्राण	शरीरस्थ स्थान
1.	नाग	डकार लेना ।
2.	कूर्म	आँख की पलकों को झपकाना ।
3.	कृकर	छींक आना । अन्य स्थानों पर भूख लगना भी है । (त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद)
4.	देवदत्त	जभाई आना । अन्य स्थानों पर निद्रा आना भी है ।
5.	धनञ्जय	सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त तथा मृत्यु के बाद चार घड़ी तक जो शरीर में तेज रहता है, वह उसी के कारण है ।

शिवसंहिता के अनुसार महाप्राण – **हृदि प्राणो गुदेऽपान: समानो नाभिमण्डले । उदान: कण्ठदेशस्थो व्यान: सर्वशरीरग: ॥** (3/7) भावार्थ – प्राण का निवास हृदय में है, अपान का गुदा में । समान नाभि के ऊपरी क्षेत्र में रहता है, उदान कण्ठ में और व्यान सारे शरीर में गतिशील रहता है ।

27.5 प्राणायाम की परिभाषा

प्राणायाम के स्वरूप के बारे में विभिन्न ग्रन्थों मे विभिन्न परिभाषाओं के माध्यम से वर्णन किया गया है । कुछ परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं –

महर्षि पतञ्जलि के अनुसार – **'तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेद: प्राणायाम: ।** (पा.यो.सू. 2/49) भावार्थ – उस आसन की सिद्धि होने के बाद श्वास और प्रश्वास की गति का रुक जाना प्राणायाम है ।

प्राण वायु का शरीर में प्रविष्ट होना श्वास है और बाहर निकलना प्रश्वास है । इन दोनों की गति का रुक जाना अर्थात् प्राण वायु की गमनागमन रूप क्रिया का बंद होन जाना ही प्राणायाम का सामान्य लक्षण है ।

महर्षि घेरण्ड के अनुसार – **'नाडी शुद्धि च तत: पश्चात्प्राणायामं या साधयेत् ।** (5/2) भावार्थ – नाड़ियों की शुद्धि के लिए प्राणायाम करना चाहिए ।

गोरक्षनाथ के अनुसार – 'अपनी देह के जीवन की अवस्था का नाम प्राण है और उस अवस्था के अवरोध को आयाम कहते हैं। इसका अभिप्राय यह हुआ कि जीवन की अवस्था के अवरोध का नाम प्राणायाम है।

त्रिशिखिब्रह्मणोपनिषद् के अनुसार – **'निरोध: सर्ववृत्तीनां प्राणायाम: ।'** भावार्थ – सभी प्रकार की वृत्तियों के निरोध को प्राणायाम कहा गया है।

बोधसागर के अनुसार – **'हठीनधिक स्त्वेक: प्राणायाम परिश्रम: ।'** भावार्थ – हठयोगियों का मुख्य साधन श्रम साध्य प्राणायाम है।

जाबालनोपनिषद् के अनुसार – **'प्राणायाम इति प्रोक्तां रेचक,पूरक,कुम्भक: ।'** भावार्थ – पूरक, रेचक तथा कुम्भक क्रियाओं के द्वारा जो प्राण को संयमित किया जाता है, वह प्राणायाम है।

श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार – **'प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणा: ।'** (4/29) भावार्थ – प्राण और अपान का मिलन ही प्राणायाम है।

हठप्रदीपिका के अनुसार – **यावद्वायु: स्थितो देहे तावज्जीवनमुच्यते । मरणं तस्य निक्रान्तिस्ततो वायुं निरोधयेत् ॥** (2/3) भावार्थ – जब तक शरीर में वायु विद्यमान है तब तक ही जीवन कहलाता है। उसका शरीर से निकल जाना ही मरण है। अत: प्राणायाम का अभ्यास करें।

योगी याज्ञवल्क्य 6/2 के अनुसार प्राणायाम - **"प्राणापानसमायोग: प्राणायाम इतीरित: । प्राणायाम इति प्रोक्तो रेचकपूरककुम्भकै: ॥"** अर्थात् 'प्राण' और अपान वायु के मिलाने को प्राणायाम कहते हैं। प्राणायाम कहने से रेचक, पूरक और कुम्भक की क्रिया समझी जाती है।'

दक्षिनमूर्तिस्तोत्र में प्राणायाम को प्राणसंयम की संज्ञा दी गयी है : **रेचक: पूरकश्चैव कुम्भक: प्राणसंयम: ॥** (9/27)

स्वामी विवेकानन्द जी के अनुसार – 'शरीरस्थ जीवनी शक्ति को वश में लाना ही प्राणायाम है।'

स्वामी शिवानन्द जी ने अपनी पुस्तक 'प्राणायाम विज्ञान' में लिखा है – 'प्राणायाम वह माध्यम है जिसके द्वारा योगी अपने छोटे से शरीर में समस्त ब्रह्माण्ड के जीवन को अनुभव करने का प्रयास करता है तथा सृष्टि की समस्त शक्तियाँ प्राप्त कर पूर्णता का प्रयत्न करता है।'

आचार्य पं श्रीराम शर्मा जी के अनुसार – 'प्राणायाम का मतलब है प्राण शक्ति का परिशोधन व अभिवर्द्धन।'

बोध प्रश्न

१. प्राण शब्द में कौनसी धातु हैं ?
२. प्राणायाम शब्द का अर्थ क्या हैं ?
३. महाप्राण के कितने भेद हैं ?
४. अपान वायु का शरीर में स्थान कहाँ से कहाँ तक व्याप्त है ?
५. महर्षि पतञ्जलि अनुसार प्राणायाम का सूत्र क्या है ?
६. सम्पूर्ण सृष्टि को गति देने का कार्य किसका है ?

27.6 ग्रन्थ का मूलपाठ

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे। यो भूत: सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ (अथर्ववेद)

हृदि प्राणो गुदेऽपान: समानो नाभिमण्डले। उदान: कण्ठदेशस्थो व्यान: सर्वशरीरग: ॥ (शिवसंहिता 3/7)

'तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेद: प्राणायाम: । (पा.यो.सू. 2/49)

'नाडी शुद्धि च तत: पश्चात्प्राणायामं या साधयेत् । (घेरण्ड संहिता 5/2)

'निरोध: सर्ववृत्तीनां प्राणायाम: ।' (त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्)

'प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणा: ।' (गीता 4/29)

27.7 सारांश

प्रस्तुत पाठ में आपने प्राणायाम के बारे में विभिन्न ग्रन्थों में परिभाषित परिभाषाओं को जाना और समझा । आज के समय मे प्राणायाम की नितान्त आवश्यकता है । जिसे जानकर हम सामाज में योग-प्राणायाम के प्रति गलत धारणाओं को समाप्त कर उसके प्रति जागरुकता व सजगता बढा सकते है । यौगिक चिकित्सा के अन्तर्गत प्राणायाम एक अंग है । इसके द्वारा अनेकों शारीरिक एवं मानसिक रोगों का उपचार किया जाता है । जिससे व्यक्ति स्वस्थ जीवन यापन कर सकें ।

27.8 शब्दावली

१. प्राण	:	चेतना शक्ति ।
२. कूर्म	:	शरीर की दस वायुओं में से एक वायु । यह वायु पलकें खोलता और बन्द करता है ।
३. कृकर	:	यह वायु खाँसी और छींक लाता है ।
४. उदान	:	यह प्राणवायु कण्ठ मे रहता है और सिर तक आता जाता है ।
५. हृदि	:	हृदय मे ।

27.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. जगदीशचन्द्र मिश्र 2012, भारतीय दर्शन । चौखम्भा सुर भारती प्रकाशन, वाराणसी।
2. प्राणायाम रहस्य (2009), स्वामी रामदेव । दिव्य प्रकाशन – पतञ्जलि योगपीठ, हरिद्वार-249408
3. प्राणायाम (2010), डा. एच.आर. नागेन्द्र । विवेकानन्द केन्द्र योग प्रकाशन, बेंगलोर-560018

27.10 सहायक ग्रन्थ

1. योग सूत्र - प्रकाश गीता प्रेस गोरखपुर
2. भारतीय योगदर्शन - हरेन्द्र प्रसाद सिनदा
3. नन्दलाल दशोरा (2006), पातंजल योगसूत्र । रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार ।
4. डा. अमृत लाल गुर्वेन्द्र, डा. गायत्री गुर्वेन्द्र (2020), योगाऽमृत । किताब महल, दरियागंज, नई दिल्ली

5. योग विज्ञान, हठयोग परिचय (2002), मानव चेतना एवं योग विज्ञान संकाय, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, गायत्रीकुंज-शान्तिकुंज विस्तार, हरिद्वार।

6. योगदीपिका (2005), बी.के.एस. आयंगार। ओरियंट लाँग्मैन प्राइवेट लिमिटेड, हैदराबाद-500029 (आन्ध्रा प्रदेश), भारत।

7. योग-शब्दकोश , डा. सुभाष विद्यालंकार। प्रतिभा प्रकाशन, शक्तिनगर, दिल्ली-110007

27.11 बोध प्रश्नोत्तर

१. अन् प्राणेन्

२. जीवनी शक्ति का नियमन

३. पाँच

४. नाभि से नीचे मूलाधार तक

५. तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेद: प्राणायाम:

६. प्राण

27.12 अभ्यास प्रश्न

१. प्राण शब्द की व्युत्पत्ति लिखिए।

२. प्राणायाम का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

३. महर्षि पतञ्जलि के अनुसार प्राणायाम के सूत्र की व्याख्या कीजिए।

४. विभिन्न योग ग्रन्थों में परिभाषित प्राणायाम की परिभाषाओं को स्पष्ट कीजिए।

अष्टाविंशति पाठ
नाडीशोधन प्राणायाम व अन्य भेद

28.1 प्रस्तावना

28.3 उद्देश्य

28.3 प्राणायाम सम्बन्धित नियम एवं सावधानियाँ

28.4 नाडीशोधन प्राणायाम

28.4.1 नाडी के प्रकार

28.4.2 नाडी शोधन के प्रकार

28.4.3 नाडी शोधन विधि

28.4.4 नाडी शुद्धि के लक्षण, प्रभाव एवं सावधानियाँ

28.5 अनुलोम विलोम प्राणायाम

28.5.1 दोनों नासाछिद्र (सुख प्राणायाम)

28.5.2 एक नासाछिद्र

28.5.2.1 चन्द्र अनुलोम-विलोम प्राणायाम

28.5.2.1 सूर्य अनुलोम-विलोम प्राणायाम

28.5.3 एकान्तर नासाछिद्र

28.5.3.1 चन्द्रभेदन प्राणायाम

28.5.3.2 सूर्यभेदन प्राणायाम

28.5.3.3 नाडीशोधन प्राणायाम

28.6 शीतली प्राणायाम विधि, लाभ एवं सावधानियाँ

28.7 सीतकारी प्राणायाम विधि, लाभ एवं सावधानियाँ

28.8 भ्रामरी प्राणायाम विधि, लाभ एवं सावधानियाँ

28.9 प्राणाय से चिकित्सकीय लाभ

बोध प्रश्न

28.10 ग्रन्थ का मूलपाठ

28.11 सारांश

28.12 शब्दावली

28.13 सन्दर्भ ग्रन्थ

28.14 सहायक ग्रन्थ

28.15 बोध प्रश्नोत्तर

28.16 अभ्यास प्रश्न

28.1 प्रस्तावना

प्राणायाम का योग में बहुत महत्व है। **आदि शंकराचार्य श्वेताश्वतर उपनिषद** पर अपने भाष्य में कहते हैं, "प्राणायाम के द्वारा जिस मन का मैल धुल गया है वही मन ब्रह्म में स्थिर होता है। इसलिए शास्त्रों में प्राणायाम के विषय में उल्लेख है।" **स्वामी विवेकानंद** इस विषय में अपना मत व्यक्त करते हैं, "इस प्राणायाम में सिद्ध होने पर हमारे लिए मानो अनंत शक्ति का द्वार खुल जाता है। मान लो, किसी व्यक्ति की समझ में यह प्राण का विषय पूरी तरह आ गया और वह उस पर विजय प्राप्त करने में भी कृतकार्य हो गया , तो फिर संसार में ऐसी कौन-सी शक्ति है, जो उसके अधिकार में न आए? उसकी आज्ञा से चन्द्र-सूर्य अपनी जगह से हिलने लगते हैं, क्षुद्रतम परमाणु से वृहत्तम सूर्य तक सभी उसके वशीभूत हो जाते हैं, क्योंकि उसने प्राण को जीत लिया है। प्रकृति को वशीभूत करने की शक्ति प्राप्त करना ही प्राणायाम की साधना का लक्ष्य है।"

28.2 उद्देश्य – प्रस्तुत पाठ में आप प्राणायाम करने की विधि, लाभ एवं सावधानियों को जानेंगे -

- प्राणायाम सम्बन्धित नियम एवं सावधानियाँ
- नाडीशोधन प्राणायाम विधि
- अनुलोम विलोम प्राणायाम
- शीतली प्राणायाम विधि, लाभ एवं सावधानियाँ
- सीतकारी प्राणायाम विधि, लाभ एवं सावधानियाँ
- भ्रामरी प्राणायाम विधि, लाभ एवं सावधानियाँ
- प्राणायाम से चिकित्सकीय प्रभाव

28.3 प्राणायाम सम्बन्धित नियम एवं सावधानियाँ

प्राणायाम करते समय कुछ नियमों का पालन करना चाहिए जिनमें से कुछ प्रमुख इस प्रकार से हैं –

1. प्राणायाम शुद्ध सात्त्विक निर्मल स्थान पर करना चाहिए । यदि सम्भव हो तो जल के समीप बैठकर अभ्यास करें । गीता में कहा भी हैं – **शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मन: । नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिकुशोत्तरम् ॥** (6/11) भावार्थ – पवित्र स्थान में सबसे नीचे वस्त्र, उसके ऊपर मृगचर्म और कुशासन बिछाकर और यह आसन न ऊंचा हो

न नीचा। ऐसे आसन पर स्थिर आसन जमाना चाहिए। इसी में आगे ध्यान करते समय शरीर की स्थिति का वर्णन करते हुए कहा गया है –

2. **समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिर: । संपेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशाश्चानवयलोकयन् ॥** (6/13) भावार्थ – शरीर, सिर और गर्दन को एक सीध में रखते हुए अर्थात् शरीर न आगे झुका हुआ हो और न पीछे झुका हुआ हो। इस प्रकार निश्चल धारणा करता हुआ स्थिर होकर चारों दिशाओं को न देखता हुआ योग साधना करें।
3. प्राणायाम का अभ्यास वसन्त और शरद ऋतु में प्रारम्भ करना चाहिए। **'वसन्ते शरदि प्रोक्तं योगारम्भं समाचरेत्'** (घेरण्ड संहिता 5/9)
4. प्राणायाम स्वच्छ हवादार एवं एकान्त स्थान में करना चाहिए।
5. प्राणायाम का अभ्यास धीरे-धीरे बिना किसी उतावली के, धैर्य के साथ सावधानी से करना चाहिए। कहा भी हैं – **यथा सिंहो गजो व्याघ्रो भवेत् वश्य: शनै: शनै: । तथैव वश्यते वायुरन्यथा हन्ति साधकम् ॥** भावार्थ – जैसे सिंह, हाथी या बाघ जैसे हिंसक जंगली प्राणियों को बहुत धीरे-धीरे अति सावधानी से वश में किया जाता है। उतावलापन करने से ये प्राणी हमला कर हानि भी पहुंचा सकते हैं। इसी प्रकार प्राणायाम को धीरे-धीरे बढाते हुए प्राण पर नियन्त्रण करना चाहिए अन्यथा साधक को नुकसान हो सकता है।
6. प्राणायाम की संख्या एवं मात्रा अर्थात् पूरक, रेचक, कुम्भक की अवधि धीरे-धीरे बढाना चाहिए।
7. प्राणायाम करते समय मन शान्त एवं प्रसन्न होना चाहिए वैसे प्राणायाम से भी मन स्वत: शान्त, प्रसन्न तथा एकाग्र हो जाता है।
8. प्राणायाम का अभ्यास किसी भी ध्यानात्मक आसन अर्थात् सिद्धासन, पद्मासन या स्वस्तिकासन आदि में करना चाहिए।
9. प्राणायाम करते हुए थकान अनुभव हो तो बीच-बीच में थोड़ा सूक्ष्म व्यायाम या विश्राम कर लेना चाहिए।
10. प्राणायाम के दीर्घ अभ्यास के लिए संयम व सदाचार का पालन करें। **हठयोगप्रदीपिका** में कहा भी हैं - **सुस्निग्धमधुराहरश्चतुर्थांशविवर्जित: । भुज्यते शिवसम्प्रीत्यै मिताहार: स उच्यते ॥** (1/58) भावार्थ – हठयोगाभ्यासी साधक को प्रतिदिन स्निग्ध (घृत सहित), मधुर आहार मात्रा में लेना चाहिए। उसे उदर का चतुर्थांश खाली रखते हुए ; भगवत्प्रीत्यर्थ आहार ग्रहण करना चाहिए। यही मिताहार कहलाता है।
11. प्राणायाम में श्वास को हठपूर्वक नहीं रोकना चाहिए। प्राणायाम करने के लिए श्वास अन्दर लेना 'पूरक' , श्वास को अन्दर रोककर रखना 'कुम्भक' , श्वास को बाहर निकालना 'रेचक' और श्वास को बाहर ही रोककर रखना 'बाह्यकुम्भक' कहलाता है।
12. प्राणायाम से पूर्व कम से कम तीन बार ॐ का लम्बा उच्चारण करना, प्राणायाम का अभ्यास करने के लिए गायत्री, महामृत्युञ्जय या अन्य वैदिक मन्त्रों का विधिपूर्वक उच्चारण या जाप आध्यात्मिक दृष्टि से लाभप्रद है।
13. प्राणायाम का अभ्यास खाली पेट करना चाहिए। इससे साधक को ज्यादा लाभ मिलेगा।
14. सभी प्रकार के प्राणायामों के अभ्यास से पूर्ण लाभ उठाने के लिए **गीता** के निम्न श्लोक को व्यवहार में लायें – **युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु । युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दु:खहा ॥** (6/17) भावार्थ – जिस व्यक्ति का आहार-विहार ठीक है, जिस व्यक्ति की सांसारिक कार्यों के करने की निश्चित दिनचर्या है और जिस व्यक्ति के सोने-

जागने का समय निश्चित है, ऐसा व्यक्ति ही योग कर सकता है, तथा उसका योगानुष्ठान दु:खों का नाशक बनता है, अन्यों का नहीं।

15. प्राणायाम के समय कम से कम वस्त्र पहनें तथा वे ढीले होने चाहिए।
16. प्राणायाम के तुरन्त बाद चाय, काफी या अन्य मादक, उत्तेजक या नशीले पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिए।
17. प्राणायाम के बाद 15-20 मिनट बाद स्नान अथवा सात्त्विक आहार जैसे दूध, दही, छाछ, लस्सी, फलों का जूस, हरी सब्जियों का जूस, पपीता, सेब, अमरूद या चेरी आदि फलों का सेवन अथवा बादाम, कांजू, किशमिश अथवा अंकुरित अन्न आदि आरोग्यदायक माना गया है।
18. किसी भी ओप्रेशन के बाद कपालभाति क्रिया 4 से 6 माह बाद भी किसी योग्य योग प्रशिक्षक के सान्निध्य में करना चाहिए।
19. सभी प्राणायाम विधिपूर्वक समझकर ही करें अन्यथा लाभ के स्थान पर हानि हो सकती है।

28.4 नाडीशोधन प्राणायाम

नाडी शोधन प्राणायाम - नाडी शब्द 'नड्' या **'नाड्य गमने'** धातु से बनी है। जिसका अर्थ होता है। गतिशील या प्रवहनशील होना। जैसे नदियों में जल बहता है वैसे शरीर की नाडियों में रक्त का प्रवाह होता है। प्राणायाम के पूर्व नाडी शोधन को आवश्यक माना गया है। नाडी शोधन क्रिया का अभ्यास अपने शरीर के भीतर प्राण को चलाने की क्रिया है, प्राण को जाग्रत करने की क्रिया है लेकिन प्राण की जागृति और शरीर प्राणों का स्वतन्त्र प्रवाह तभी सम्भव है जब हमारे शरीर की सभी नाडियाँ अवरोध रहित बन जाये क्योंकि मनुष्य के रहन-सहन में अज्ञान अथवा प्रमादवश जो भूले हो जाती है उनके कारण उसके शरीर में मल वृद्धि होती जाती है। यह मल वृद्धि केवल भोजन पचाने वाली आँते और मलाशय में ही नहीं होती वरन् उस मल में से दूषित गैसें निकल कर रक्त-प्रवाह में मिल जाती है और शरीर के समस्त नाडी जाल को गन्दा और अवरूद्ध बनाया करता है। हमारे शरीर में 72 हजार नाडियाँ हैं इन नाडियों में किसी न किसी प्रकार अवरोध उत्पन्न होने से व्याधियाँ उत्पन्न होता है। नाडियों के शुद्ध होने से रक्त का प्रवाह अबाध गति से समस्त शरीर में बहने लगता है और उसकी चैतन्यता, स्फूर्ति, शक्ति पहले की अपेक्षा बहुत बढ जाता है। इसके लिए नाडी शोधन प्राणायाम विशेष रूप से प्रभावशाली सिद्ध होता है।

28.4.1 नाडी के प्रकार

हमारे शरीर में अनेक नाडियाँ हैं जिस प्रकार हार में फूल गुथे रहते हैं, उसी प्रकार ये नाड़ियाँ आपस में गुथी हुई हैं और उनकी उलझन से प्राण शक्ति के प्रवाह में बाधा पड़ती हैं अत: जब तक इन नाडियों का शुद्धिकरण न हो, तब तक व्यक्ति प्राणायाम का अभ्यास नहीं कर सकता।

महर्षि घेरण्ड के अनुसार – **आदौ स्थानं तथा कालं मिताहार तथापरम्। नाडीशुद्धिंश्च तत: पश्चात्प्राणायामं च साधयेत्** ॥ 5/2 भावार्थ – प्रथम, स्थान और काल का चुनाव तथा मिताहार और नाडी शुद्धि करें। इसके पश्चात् प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए।

हठप्रदीपिका (2/7-10) के अनुसार कुम्भक सहित लोम-विलोम का लगातार तीन महिने तक अभ्यास करने से नाडीशुद्धि हो जाती है। यद्यपि हठप्रदीपिका ग्रन्थ में नाडीशोधन का उल्लेख है, किन्तु इसका वर्णन प्राणायाम के फल के रूप में किया गया है – **'विधिवत्प्राणसंयमैर्नाडीचक्रे विशोधिते'** (ह.प्र 2/41)

शिव संहिता में नाडियों की संख्या एवं स्थान का वर्णन –

सार्थलक्षत्रयं नाड्य: सन्ति देहान्तरे नृणाम्। प्रधानभूता नाड्यस्तु तासु मुख्याश्चतुर्दश ॥

भावार्थ – मानव शरीर में साढे तीन लाख (3,50,000) नाडियाँ हैं। उनमें प्रधान रूप से चौदह नाडियाँ ही मुख्य हैं।

हठयोग ग्रन्थों व उपनिषदों में अधिकांश स्थानों पर बहत्तर हजार नाडियों का उल्लेख किया गया है, पर उनमें से चौदह ही मानी गई हैं तथा जिसमें तीन नाडियाँ प्रमुख हैं। वे निम्न हैं – इडा, पिंगला, सुषुम्ना।

सुषुम्नेडा पिंगला च गान्धारी हस्तिजिह्विका। कुहू: सरस्वतीपूषा शंखिनी च पयस्विनी ॥
वारुण्यलम्बुसा चैव विश्वोदरी यशस्विनी। एतासु तिस्रो मुख्या: स्यु पिंगलेडा सुषुम्निका ॥

भावार्थ – चौदह नाडियाँ इस प्रकार हैं – 1) सुषुम्ना, 2) इडा, 3) पिंगला, 4) गान्धारी, 5) हस्तिजिह्विका, 6) कुहू, 7) सरस्वती, 8) पूषा, 9) शंखिनी, 10) पयस्विनी, 11) वारुणी, 12) अलम्बुसा, 13) विश्वोदरी तथा 14) यशस्विनी। इन चौदह नाडियों में भी इडा, पिंगला और सुषुम्ना प्रमुख हैं। इन तीनों नाडियों में एकमात्र सुषुम्ना ही प्रमुख है। वही योगियों की प्रिय हैं क्योंकि शरीरधारियों की अन्य सभी नाडियाँ इसी सुषुम्ना नाडि के आश्रित हैं।

28.4.2 नाडी शोधन के प्रकार

घेरण्ड संहिता के 5/35 अनुसार नाडी शोधन – **नाडीशुद्धिर्द्विधा प्रोक्ता समनुर्निर्मनुस्तथा। बीजेन समनुं कुर्यान्निर्मनुं धौतिकर्मणा ॥** भावार्थ – समनु और निर्मनु के भेद से नाडी शोधन के दो प्रकार हैं –

1) **समनु –** बीज मन्त्र के साथ होने वाले नाडी शोधन की यह क्रिया मानसिक है। प्रारम्भ में साधक मानसिक रूप से श्वास का ख्याल रखते हुए श्वास के साथ अपनी चेतना को ऊपर-नीचे लाता ले जाता है। इसके बाद गहराई में जाने के लिए श्वास के साथ मन्त्र का अभ्यास करते हैं और उस बीच मन्त्र के साथ धारणा का अभ्यास होता जाता है।
2) **निर्मनु –** धौतिकर्म से होने वाले नाडी शोधन क्रिया शारीरिक है। धौति क्रिया से फेफड़े दोष रहित हो जाते हैं, आन्तरिक अंग विकार रहित हो जाते हैं, तब प्राण की जागृति अपने आप होने लगती है और उस समय प्राण को केवल नाडी क्षेत्र में भेजने का प्रयास किया जाता है।

28.4.3 नाडी शोधन विधि

कुशासने मृगाजिने व्याघ्राजिने च कम्बले। स्थूलासने समासीन: प्राङ्गमुखो वाप्युदङ्मुख: ॥ नाडीशुद्धिं समासाद्य प्रणायामं समभ्यसेत् ॥ (घेरण्ड संहिता 5/32) भावार्थ – कुश का मोटा आसन, मृगचर्म या सिंहचर्म अथवा कम्बल में से किसी प्रकार के आसन पर पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके नाडी शुद्धि होने पर प्राणायाम का साधन करना चाहिए।

हठयोगप्रदीपिका के अनुसार नाडीशोधन विधि –

बद्धपद्मासने योगी प्राणं चन्द्रेण पूरयेत्। धारयित्वा यथाशक्ति भूय: सूर्येण रेचयेत् ॥(2/7)
प्राणं सूर्येण चाकृष्य पूरयेदुदरं शनै:। विधिवत्कुम्भकं कृत्वा पुनश्चन्द्रेण रेचयेत् ॥ (2/8)

भावार्थ – योगाभ्यास करने वाले को पद्मासन में बैठकर बायें नासाछिद्र से श्वास लेनी चाहिए और तब सामर्थ्य के अनुसार उसे रोक कर, दायें नासाछिद्र से छोड़नी चाहिए। इसके बाद दायें नासाछिद्र से श्वास लेकर धीरे-धीरे उदर को वायु से भर लेना चाहिए और तब पूर्ववत् श्वास-रोध करके उसे बायें नासाछिद्र से छोड़नी चाहिए।

घेरण्ड संहिता अनुसार नाडीशोधन विधि –

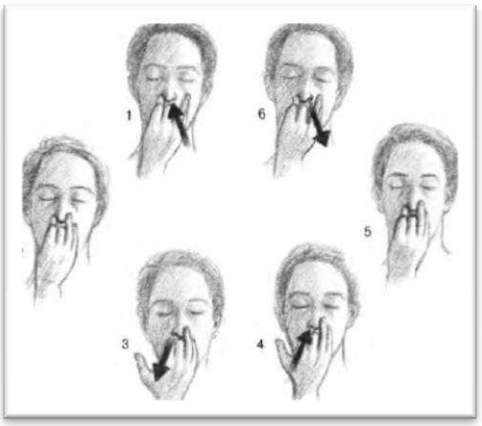

1) वज्रासन या पद्मासन में बैठकर नासिका मुद्रा लगायें।
2) फिर दाहिने नासिका छिद्र को बन्द रखे। बायें से श्वास खींचे और उसे धीरे-धीरे नाभि चक्र तक ले जाए। ध्यान करे कि नाभि स्थान में पूर्णिमा के पूर्ण चन्द्रमा के समान पीतवर्ण शीतल प्रकाश विद्यमान है। खीचा हुआ श्वास उसे स्पर्श कर रहा है।
3) जितने समय में श्वास लिया गया था, उतने ही समय तक अन्दर रोके और ध्यान करते रहे कि नाभिचक्र में स्थित पूर्ण चन्द्र के प्रकाश का खीचा हुआ, श्वास स्पर्श करके उसे शीतल और प्रकाशवान बना रहा है।
4) बायीं नासिका छिद्र से ही श्वास बाहर निकाले और ध्यान करे कि नाभिचक्र के चन्द्रमा को छुकर वापस लौटने वाली प्रकाशवान एवं शीतल वायु इडा नाडी की छिद्र नलिकाओं को शीतल एवं प्रकाशवान बनाती हुई वापिस लौट रहा है। श्वास छोड़ने की गति अत्यन्त धीमी होनी चाहिए। कुछ समय बिना श्वास लिए श्वास को बाहर रोकें।
5) केवल कुम्भक को बढायें और उसका आनन्द लें। यह प्रक्रिया नाडीशुद्धि का एक चक्र पूरा करती है अत: इस प्रकार न्यूनतम नौ बार चक्र करें।
6) ध्यान दें – योगवसिष्ठ में कहा गया हैं कि बिना गायत्री मन्त्र के नाडीशुद्धि का अभ्यास व्यर्थ है अत: नाडी शुद्धि के दौरान श्वास-प्रश्वास लेते समय गायत्री मन्त्र का मानसिक जप चलना चाहिए। जो विद्यार्थियों की एकाग्रता के लिए उपयोगी हैं।
7) नाडी-शोधन प्राणायाम में पूरक, अन्त:कुम्भक एवं रेचक का अनुपात प्रारम्भ में यथाशक्ति 1:2:2 का रखना चाहिए, अर्थात् जैसे कि 10 सैकण्ड में पूरक करें तो 20 सेकण्ड तक अन्त:कुम्भक करना चाहिए तथा 20 सेकण्ड में ही धीरे-धीरे रेचक करना चाहिए। बाद में इसका अनुपात 1:4:2 तक रखें। इतना होने पर इसके साथ बाह्यकुम्भक भी जोड़ सकते हैं, अर्थात् 1:4:2:2 के अनुपात में क्रमश: पूरक, अन्त:कुम्भक, रेचक एवं बाह्यकुम्भक करना चाहिए।

28.4.4 नाडी शुद्धि के लक्षण, प्रभाव एवं सावधानियाँ

हठयोग ग्रन्थों में वर्णन मिलता हैं कि नाडी शुद्धि के होने पर शरीर में विभिन्न प्रकार के लक्षण प्रकट होने लगते है तथा शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक प्रभाव भी दिखाई देता है। नाडीशोधन के अभ्यास से बाह्य स्वरूप में अचानक परिवर्तन नही आता बल्कि आन्तरिक शरीर के अवयवों में भारी परिवर्तन हो जाता है। आध्यात्मिक तत्त्वों में वृद्धि से प्राणमयकोश, मनोमयकोश और विज्ञानमयकोश में जो परिवर्तन होता है, उसकी छाया अन्नमयकोश में दृष्टिगोचर होती है। **हठप्रदीपिका** के द्वितीय उपदेश के 19-20 श्लोक में नाडी शुद्धि के लक्षणों का वर्णन करते हुए कहा गया है –

यदा तु नाडीशुद्धि: स्यात् तथा चिह्नानि बाह्यत:। कायस्य कृशता कान्तिस्तदा जायेत निश्चितम्॥ 2/19

भावार्थ – जब नाड़ी शुद्ध हो जाती है तब उसके बाह्य लक्षण प्रकट होते हैं, जैसे शरीर निश्चित रूप से पतला और कान्तिमान हो जाता है।

यथेष्टं धारणं वायोरनलस्य प्रदीपनम्। नादाभिव्यक्तिरारोग्यं जायते नाडिशोधनात्॥ 2/20

भावार्थ – नाडी के निर्मल हो जाने से साधक इच्छानुसार श्वास को रोक सकता है, शरीर की कान्ति का बढ जाना, जठरग्नि प्रदीप्त होना, सतत आरोग्य बना रहना, पर्याप्त वायु रोकने की क्षमता का बढना तथा अन्तर्नाद की अभिव्यक्ति की सम्भावना उत्पन्न करना इत्यादि है।

हठयोग प्रदीपिका 2/78 श्लोक के अनुसार हठसिद्धि लक्षण –

वपु: कृशत्वं वदने प्रसन्नता नादस्फुटत्वं नयने सुनिर्मले। आरोगता बिन्दुजयोऽग्निदीपनं नाडीविशुद्धिर्हठसिद्धिलक्षणम्॥

भावार्थ – शरीर में हल्कापन, मुख पर प्रसन्नता, स्वर में सौष्ठव (अन्तर्नाद का प्रादुर्भाव होता है, जिससे मन या चित्त एकाग्र होता है) नयन में तेजस्विता, रोग का अभाव (सदा स्वस्थ बना रहना), बिन्दु पर नियन्त्रण (अन्त:संवेदना पर विजय प्राप्त करना), जठराग्नि बढती है तथा शरीरस्थ सभी नाडियाँ अत्यन्त शुद्ध हो जाती है।

अन्य लाभ –

- माँसपेशियों में अकड़न-जकड़न में लाभकारी।
- एकाधिक स्क्लेरोसिस (एम.एस) केंद्रीय तंत्रिका तंत्र को प्रभावित करने वाली एक पुरानी बीमारी है, सिस्टमिक ल्यूपस एरिथेमेटोसस (एस.एल.ई), ल्यूपस का सबसे आम प्रकार है। एस.एल.ई एक ऑटोइम्यून बीमारी है जिसमें प्रतिरक्षा प्रणाली अपने स्वयं के ऊतकों पर हमला करती है, जिससे प्रभावित अंगों में व्यापक सूजन और ऊतक क्षति होती है। यह जोड़ों, त्वचा, मस्तिष्क, फेफड़े, गुर्दे और रक्त वाहिकाओं को प्रभावित कर सकता है।
- पोलियो, या पोलियोमाइलाइटिस, पोलियोवायरस के कारण होने वाली एक अक्षम करने वाली और जानलेवा बीमारी है। वायरस एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में फैलता है और किसी व्यक्ति की रीढ़ की हड्डी को संक्रमित कर सकता है, जिससे लकवा हो सकता है (शरीर के अंगों को हिला नहीं सकता)
- नाडीतन्त्र की विकृति में यह प्राणायाम विशेष प्रभावशाली है।

सावधानियाँ –

1. प्राणायाम का अभ्यास ब्रह्ममुहूर्त्त में ही करना चाहिए यानि प्रात: 4 से 6 बजे तक।
2. बन्द कमरे में प्राणायाम का अभ्यास न करें। यदि करना भी पड़े तो आप कक्ष की खिडकियाँ व द्वार को खोल दें तथा आधे घण्टे पूर्व घी का दीपक प्रज्ज्वलित करें।
3. हवा शान्त एवं मन्द होने पर अभ्यास श्रेष्ठ है अर्थात् तेज वायु के वेग में प्राणायाम अभ्यास न करें।
4. मोटी चट्टाई या कम्बल बिछाकर, पद्मासन या सिद्धासन में बैठकर, पूर्व अथवा उत्तर मुखी होकर प्राणायाम करें।
5. नाडीशोधन प्राणायाम से पूर्व मिताहार (सात्त्विक भोजन) का विशेष पालन करें, तभी हठसिद्धि हो पायेगी।
6. यह अभ्यास सभी आयु की अवस्थाओं में उपयोगी माना गया।
7. नूतन साधक व रुग्न व्यक्ति कुम्भक रहित अभ्यास करें अथवा योग प्रशिक्षक के सान्निध्य में करें।

28.5 अनुलोम विलोम प्राणायाम

प्राण या श्वास में सन्तुलन स्थापित करने के लिए योग ग्रन्थों ने प्राणायाम की अत्यन्त सरल प्रणालियाँ दी हैं, जिन्हें हम अनुलोम विलोम प्राणायाम के रूप में वर्गीकृत कर सकते है। अनुलोम का अर्थ श्वास लेना और विलोम का अर्थ श्वास छोड़ना। इन्हें एक नासाछिद्र से, दोनों नासाछिद्रों से बारी-वारी से तथा दोनों नासाछिद्रों से एक साथ मन्थर गति से श्वास लेने और छोड़ने का संयोजन या क्रम-परिवर्तन कहा जाता है।

इस प्राणायाम की छह सम्भावनाओं को नीचे की तालिका में प्रस्तुत किया गया है :

अनुलोम विलोम प्राणायाम

1. **दोनों नासाछिद्र :**
   - सुख प्राणायाम
2. **एक नासाछिद्र :**
   - चन्द्रानुलोम विलोम
   - सूर्यानुलोम विलोम
3. **एकान्तर नासाछिद्र :**
   - चन्द्रभेदन
   - सूर्यभेदन
   - नाडीशुद्धि

28.5.1 दोनों नासाछिद्र (सुख प्राणायाम)

अभी हम सर्वप्रथम दोनों नासाछिद्रों के द्वारा किए जाने वाले अनुलोम-विलोम प्राणायाम को समझेंगे। इसे **सुख प्राणायाम** भी कहा जाता है।

इस अनुलोम-विलोम प्राणायाम को करने के लिए सर्वप्रथम वज्रासन या पद्मासन की स्थिति में बैठें। यदि साधक को प्रारम्भ में इन आसनों में बैठना सम्भव न हो तो वह किसी भी सामान्य आसन अथवा कुर्सी पर बैठ सकता है। इस प्राणायाम को करने के लिए किसी विशेष स्थिति में ही बैठना आवश्यक नही होता बल्कि साधक का मेरूदण्ड सीधा होना चाहिए। यदि आप चाहे तो लेटकर या खड़े होकर अथवा कार्य स्थल पर भी किया जा सकता है।

विधि – सर्वप्रथम साधक किसी भी ध्यानात्मक आसन मे बैठ जाए।

- अभ्यास तनाव रहित व प्रसन्न चित्त भाव से ही करें।
- बहुत ही मन्द गति से यथासम्भव गहरी श्वास लें तथा इस समय ऐसा अनुभव करें जैसे सारा शरीर ऊर्जा से भरपूर और हल्का होता जा रहा है।
- जब श्वास पूर्ण भर लें, तब अन्त में गति शून्यता का आनन्द लें और केवल अनुभव को प्रोत्साहन दें।
- फिर अत्यन्त ही धीमी गति से श्वास को बाहर छोड़ें।
- श्वास को स्वयं रूक जाने दीजिए। केवल कुम्भक की स्थिति और अनुभव कीजिए कि पूरा शरीर शिथिल होकर विश्रान्ति को प्राप्त हो रहा है।

लाभ – इस प्राणायाम को करने से मस्तिष्क को बहुत लाभ मिलता है।

- शरीर में दबाव और तनाव दूर होता है।
- स्मृति और एकाग्रता में वृद्धि होती है।

- जीवन की प्रकृति और गुणवत्ता में सकारात्मक परिवर्तन आयेगा और स्वास्थ्य में रचनात्मक सुधार होगा।
- यह प्राणशक्ति को बढाता है; जिसके परिणाम स्वरूप प्रतिरक्षा तन्त्र सुदृढ होता है।
- इस प्राणायाम से कैंसर रोगी भी लाभान्वित होते है।
- मानसिक शान्ति के साथ-साथ यह काम, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष आदि विकारों से भी मुक्ति दिलाता है।

विशेष – यह प्राणायाम सभी आयु वर्ग के व्यक्ति कर सकते हैं।

- केवल कुम्भक का अभिप्राय – प्रयास रहित स्थिति, जिसमें न श्वास लेने की आवश्यकता होती है और न छोड़ने की।
- यदि साधक नियमित समय व दिन में चार बार श्रद्धापूर्वक अभ्यास करें तो निश्चित रूप से आश्चर्य जनक परिणाम सामने आते हैं।

28.5.2 एक नासाछिद्र

उपरोक्त प्राणायाम में दोनों नासाछिद्रों से श्वास लेनी और छोड़नी होती है, लेकिन एक नासाछिद्र प्राणायाम में श्वसन-प्रश्वसन बायें या दायें नासाछिद्र से किया जाता है।

बायें नासाछिद्र से किया जाने वाला श्वसन-प्रश्वसन **चन्द्रानुलोम-विलोम प्राणायाम** कहलाता है और दायें नासाछिद्र से किया जाने वाला **सूर्यानुलोम-विलोम प्राणायाम** कहलाता है।

28.5.2.1 चन्द्र अनुलोम-विलोम प्राणायाम

चन्द्रानुलोम विलोम प्राणायाम विधि

- सर्वप्रथम किसी भी ध्यानात्मक स्थिति में बैठ जाए।
- दायें हाथ से नासिका मुद्रा लगाए।
- चन्द्र अनुलोम-विलोम प्राणायाम में केवल श्वसन-प्रश्वसन बायीं नासिका से किया जाता है अत: दायीं नासिका को नासिका मुद्रा द्वारा दायें अँगूठे से अभ्यास काल पर्यन्त बन्द रखा जाता है।
- श्वास-प्रश्वास केवल बायीं नासिका से ही लिया जाता है।

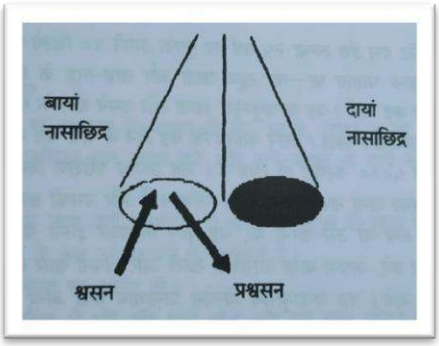

लाभ –

- इडा नाडी (चन्द्र नाडी) सुचारु रूप से कार्य करने लगती है।
- शरीर में शीतलता बढती है और गर्मी कम होती है अर्थात कफ दोष बढता है और पित्त दोष का शमन होत है।
- दायें मस्तिष्क की स्नायु तन्त्रिका को बल मिलता है।
- शरीर का वजन बढाने में विशेष उपयोगी अभ्यास है।
- क्रोध व उत्तेजना को शान्त करके चित्त एकाग्र बनाता है।
- यकृत व आँतों की गर्मी शान्त करता है तथा अल्सर व रक्तपित्त विकार जैसी समस्याओं का निवारण कर रोगी को स्वास्थ्य प्रदान कराता है।

सावधानियाँ –

- शरद ऋतु काल व कफ प्रकृति वाले व्यक्ति प्राणायाम न है।
- जिनकी जठराग्नि मन्द पड़ी हुई है वे भी अभ्यास न करें।

- निम्न रक्तचाप, जोड़ों में दर्द, शरीर में भारीपन, आलस्य आदि समस्याओं से परेशान व्यक्ति भी अभ्यास न करें।
- भोजन के पश्चात् अभ्यास न करें।

28.5.2.1 सूर्य अनुलोम-विलोम प्राणायाम

सूर्यानुलोम विलोम प्राणायाम विधि

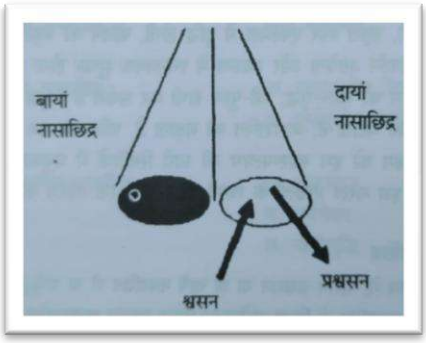

- सर्वप्रथम किसी भी ध्यानात्मक स्थिति में बैठ जाए।
- दायें हाथ से नासिका मुद्रा लगाए।
- सूर्य अनुलोम-विलोम प्राणायाम में केवल श्वसन-प्रश्वसन दायीं नासिका से किया जाता है अत: बायीं नासिका को नासिका मुद्रा द्वारा दायीं अनामिका से अभ्यास काल पर्यन्त बन्द रखा जाता है।
- श्वास-प्रश्वास केवल दायीं नासिका से ही लिया जाता है।

लाभ –

- पिंगला नाडी (सूर्य नाडी) सुचारु रूप से कार्य करने लगती है।
- शरीर मे उष्णता बढती है और शीतलता कम होती है अर्थात कफ दोष घटता है और पित्त दोष का बढता है।
- बायें मस्तिष्क की स्नायु तन्त्रिका को बल मिलता है।
- शरीर का वजन घटाने में विशेष उपयोगी अभ्यास है।
- आत्मबल को बढाता है और भय को समाप्त करता है।
- मन्दाग्नि को कम कर जठराग्नि को बढाता है तथा पाचन तन्त्र की क्रिया को सुचारु बनाता है।

सावधानियाँ –

- पित्त दोष से पीडित अर्थात् हृदय मे जलन, खट्टी डकारे आना, मुँह में छाले होना, त्वचा पर लाल-लाल छल्ले बनना, यकृत का बढना आदि रोगों में अभ्यास न करें।
- उच्च रक्तचाप में अभ्यस न करें।

विशेष –

- चन्द्र और सूर्य नाडियों का शुद्धिकरण दो नाडियों के बीच संतुलन लाने के लिए पहला कदम हैं।
- इन अभ्यासों से चेतना के आन्तरिक सूक्ष्म धरातल खुलते चले जाते हैं और मनुष्य का विकासक्रम गति पकड़ लेता है।

28.5.3 एकान्तर नासाछिद्र

अभ्यासों इस क्रम में श्वसन-प्रश्वसन के तीन संयोजनों को देखा जा सकता है – (अ) बायें नासाछिद्र से श्वास लीजिए और दायें नासाछिद्र से छोड़िए – चन्द्रभेदन, (ब) दायें नासाछिद्र से श्वास लीजिए और बायें से छोडिए – सूर्यभेदन, (स) बायें से श्वास लेकर दायें से छोड़िए और दायें से श्वास लेकर बायें से छोड़िए – नाडी शुद्धि।

28.5.3.1 चन्द्रभेदन प्राणायाम

चन्द्रभेदन प्राणायाम नामकरण एवं विधि

नामकरण – चन्द्र = इडा, भेदन = तोड़ना या आर-पार जाना। इस प्राणायाम में बार-बार इडा नाडी से श्वास लेते हैं और इडा नाडी से भेदन करते हैं पिंगला नाडी से छोड़ते है अत: इसे चन्द्र भेदन प्राणायाम कहा जाता है।

विधि : सर्वप्रथम किसी भी ध्यानात्मक आसन बैठ जाए तथा मेरुदण्ड को सीधा रखें।

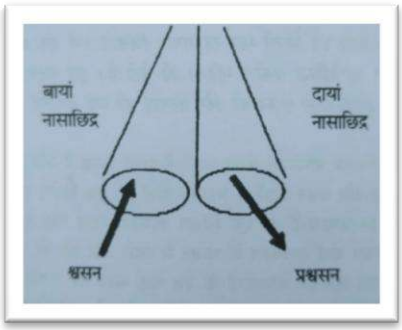

- फिर नासिका मुद्रा धारण करें और बायें हाथ को ज्ञान मुद्रा में रखें तथा दांये अंगूठे से दायीं नासिका को बन्द करके बायीं नासिका से श्वास पूरक करें तथा जालन्धर बन्ध लगाकर केवल कुम्भक का आनन्द लें।
- तत्पश्चात् जब श्वास लेने की इच्छा हो तब जालन्धर बन्ध को खोलें तथा दायीं नासिका को भी खोलें और बायीं नासिका को अनामिका से बन्द करें।
- फिर धीमी-धीमी गति से दायीं नासिका से श्वास को बाहर निकालें तथा केवल कुम्भक को देर तक बनाये रखें।
- यह चन्द्रभेदन प्राणायाम का एक चक्र पूर्ण हुआ। इसी तरह साधक को न्यूनतम नव चक्र दोहराने चाहिए।
- इसमें पूरक, कुम्भक, रेचक को 1:4:2 के अनुपात में रखते हुए अभ्यास करें।

लाभ –

- अधिकांश लाभ चन्दानुलोम-विलोम के सामान ही हैं।
- इडा नाडी (चन्द्र नाडी) सुचारु रूप से कार्य करने लगती है।
- पित्त दोष से पीडित अर्थात् हृदय मे जलन, खट्टी डकारे आना, मुँह में छाले होना, त्वचा पर लाल-लाल छल्ले बनना, यकृत का बढना आदि रोगों में विशेष लाभकारी हैं।
- कल्पना शक्ति, रचनात्मक शक्ति, अन्त:बोध और दृष्टि का विकास होता है।

सावधानियाँ –

- शरद ऋतु काल व कफ प्रकृति वाले व्यक्ति प्राणायाम न है।
- जिनकी जठराग्नि मन्द पड़ी हुई है वे भी अभ्यास न करें।
- निम्न रक्तचाप, जोड़ों में दर्द, शरीर में भारीपन, आलस्य आदि समस्याओं से परेशान व्यक्ति भी अभ्यास न करें।
- भोजन के पश्चात् अभ्यास न करें।
- नूतन साधक कुम्भक के बिना ही अभ्यास करें तथा हृदय रोगी भी कुम्भक न लगायें।

28.5.3.2 सूर्यभेदन प्राणायाम

सूर्यभेदन प्राणायाम नामकरण एवं विधि

नामकरण – सूर्य = इडा, भेदन = तोड़ना या आर-पार जाना। इस प्राणायाम में बार-बार पिंगला नाडी से श्वास लेते हैं और पिंगला नाडी से भेदन करते हैं इडा नाडी से छोड़ते है अत: इसे सूर्य भेदन प्राणायाम कहा जाता है।

हठयोगप्रदीपिका अनुसार सूर्यभेदन प्राणायाम विधि –

आसने सुखदे योगी बद्ध्वा चैवासनं तत: । दक्षनाड्या समाकृष्य बहिस्थं पवनं शनै: ॥

आकेशोदनखाग्राच्च निरोधावधि कुम्भयेत् । तत: शनै: सव्यनाड्या रेचयेत् पवनं शनै: ॥ (2/48-49)

घेरण्ड संहिता में भी –

पूरयेत् सूर्यनाड्या च ..... क्रमेण च पु: पुन: ॥ (5/58-68)

भावार्थ – योगाभ्यासी कोई सुखदायक आसन बिछाकर, उस पर आसन लगाकर, दाहिने नथुने से बाहरी वायु को धीरे-धीरे अन्दर खींचकर, उसे जब तक हो सके अधिकाधिक निरोध करें और फिर बायें नथुने से धीरे-धीरे श्वास को छोड़े ।

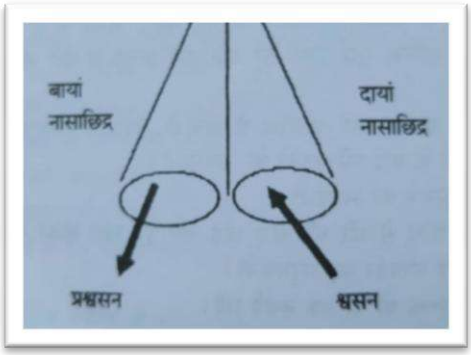

विधि –: सर्वप्रथम किसी भी ध्यानात्मक आसन अर्थात् सुखासन, पद्मासन व सिद्धासन बैठ जाए ।

- फिर नासिका मुद्रा धारण करें और बायाँ हाथ ज्ञानमुद्रा में रखें तथा दायीं अनामिका से बायीं नासिका को बन्द करके दायीं नासिका से नियन्त्रित गति से श्वास पूरक करें तथा फिर जालन्धर बन्ध लगाए व यथा शक्ति केवल कुम्भक का आनन्द लें ।
- तत्पश्चात् जालन्धर बन्ध हटाएँ, बायीं नासिका को खोलें और दायीं नासिका को अंगूठे से बन्द करें ।
- फिर धीमी-धीमी गति से बायीं नासिका से श्वास को बाहर निकालें तथा केवल कुम्भक को देर तक बनाये रखें ।
- यह सूर्यभेदन प्राणायाम का एक चक्र पूर्ण हुआ । इसी तरह साधक को न्यूनतम नव चक्र दोहराने चाहिए ।
- इसमें पूरक, कुम्भक, रेचक को 1:4:2 के अनुपात में रखते हुए अभ्यास करें ।

लाभ –

- अधिकांश लाभ सूर्यानुलोम-विलोम के सामान ही हैं ।
- पिंगला नाडी (सूर्यनाडी उत्तम रूप से कार्य करने लगती है ।
- निम्न रक्तचाप, जोड़ों में दर्द, शरीर में भारीपन, आलस्य आदि समस्याओं में विशेष लाभकारी हैं ।
- स्मृति, बुद्धि-लब्धि, स्पष्टता, तर्क-वितर्क करने की क्षमता का विकास होता है ।

कुम्भक: सूर्यभेदस्तु जरामृत्युविनाशक: ।
बोधयेत्कुण्डलीं शक्तिं देहानलविवर्धनम् ॥ (घेरण्ड संहिता 5/69)
कपालशोधनं वातदोषघ्नं कृमिदोषहृत् ॥ (हठयोगप्रदीपिका 2/50)

- बुढापा तथा मृत्यु को दूर करता है ।
- कुण्डलिनी का जागरण होता है और शरीरस्थ अग्नि प्रदीप्त होती है ।
- कपाल (मस्तिष्क) शोधन करता है ।
- वातजन्य विकारों का नाश करता है ।
- शरीर के समस्त विजातीय द्रव्य को बाहर निकालने में साहयक है अर्थात् कृमि नाशक है ।
- जो व्यक्ति अन्तर्मुखी है, उसे बहिर्मुखी बनाने में विशेष उपयोगी है ।
- श्वसनी दमा, नासा प्रत्यूर्जता, श्वसनी शोथ और श्वास सम्बन्धी अनेक दूसरी समस्याओं में इस अभ्यास से सहायता मिलती है ।
- पुराना जुकाम-खांसी व एलर्जी से परेशान रोगियों को सूर्यभेदन प्राणायाम करना चाहिए ।

सावधानियाँ –

- शरद ऋतु काल व कफ प्रकृति वाले व्यक्ति प्राणायाम न है।
- भोजन के पश्चात् अभ्यास न करें।
- नूतन साधक कुम्भक के बिना ही अभ्यास करें तथा हृदय रोगी भी कुम्भक न लगायें।
- सूर्यभेदी एक शक्तिशाली प्राणायाम है, इसका अभ्यास एक कुशल मार्गदर्शन में ही करना चाहिए।
- कुम्भक की संख्या धीरे-धीरे बढानी चाहिए।

28.5.3.3 नाडीशोधन प्राणायाम

नाडीशोधन प्राणायाम नामकरण एवं विधि

इस प्राणायाम का नामकरण, विधि, लाभ, सावधानियाँ एवं विशेष लक्षण इत्यादि का वर्णन पूर्व में किया जा चुका है अत: पूर्वोक्त व्याख्या का अवलोकन करें।

28.6 शीतली प्राणायाम विधि, लाभ एवं सावधानियाँ

नामकरण – इस प्राणायाम के द्वारा सम्पूर्ण शरीर में शीतलता का आह्लादजनक अनुभव होता है। इस कारण इसे शीतली प्राणायाम कहते हैं।

हठयोगप्रदीपिका के अनुसार विधि –

जिह्वया वायुमाकृष्य पूर्ववत् कुम्भसाधनम्। शनकैर्घ्राणरन्ध्राभ्यां रेचयेत् पवनं सुधी: ॥ 2/57

भावार्थ – जिह्वा को दोनों ओर से मोड़कर, नली की तरह विशेष स्थिति में लाकर, फिर उसके द्वारा वायु अन्दर खींचकर पहले की तरह कुम्भक का अभ्यास करना चाहिए। तत्पश्चात् बुद्धिमान (साधक) को धीरे-धीरे नासिका छिद्रों द्वारा वायु का रेचन करना चाहिए।

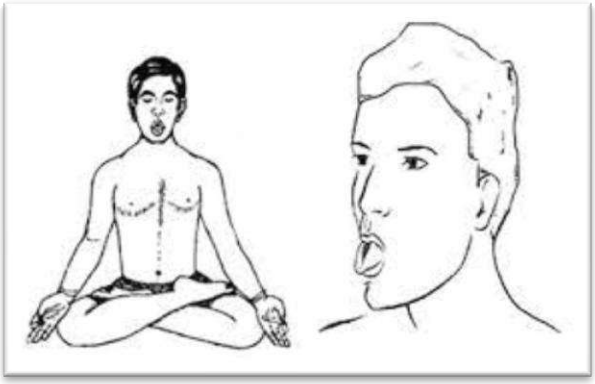

विधि – किसी भी ध्यानात्मक आसन में ज्ञानमुद्रा लगाकर कमर सीधी करके बैठें।

- फिर जिह्वा को थोड़ा बाहर निकालें तथा नाली के आकार से उसे मोड़ें तथा फिर जिह्वा के अग्र भाग से श्वास को खीचें।
- उसके बाद यथासम्भव कुम्भक करें।
- कहा गया है कि पूरक और रेचक के बीच बीच क्षणमात्र का अन्तराल होना चाहिए तो क्षणभर कुम्भक के दौरान जिह्वा को अन्दर खींचा जाता है।
- मुँह को बन्द करके फिर नासिका से श्वास बाहर निकाली जाती है।
- यह एक आवृत्ति होती है।

लाभ –

- **हठयोगप्रदीपिका** के अनुसार –
  गुल्मप्लीहादिकान् रोगान् ज्वरं पित्तं क्षुधां तृषाम्। विषाणि शीतली नाम कुम्भिकेयं निहन्ति हि ॥ 2/58

- यह कुम्भक वायु गोला, तिल्ली, ज्वर, पित्त, भूख, प्यास आदि सभी प्रकार के रोगों को तथा विष के प्रभाव को नष्ट करता है।
- **घेरण्ड संहिता** के अनुसार –

  अजीर्णं कफपित्तं च चैव तस्य प्रजायते ॥ 5/75
- इससे अजीर्ण, कफ-पित्त के विकार उत्पन्न नहीं होते हैं।
- यह मानसिक एवं भावनात्मक उत्तेजनाओं को शान्त करता है तथा सम्पूर्ण शरीर में प्राण के प्रवाह को निर्बाध बनाता है।
- इससे मांसपेशियों में शिथिलता आती है तथा मानसिक शान्ति प्राप्त होती है।
- रक्तचाप एवं पेट की अम्लीयता को कम करने में साहयक है।
- गरमी के दिनों में पसीना अधिक आना, प्यास अधिक लगना अथवा शरीर में बहुत गरमी या बेचैनी एवं चिड़चिड़ापन का अनुभव होना आदि में इसका अभ्यास श्रेष्ठ है।
- मुँह के स्वास्थ्य में सुधार आता है।

सावधानियाँ –

- इस प्राणायाम का अभ्यास निम्न रक्तचाप, पुरानी कब्ज़ एवं अधिक कफ के रोगी न करें।
- अभ्यास के तुरन्त बाद श्रम साध्य कार्य न करें।
- शरद ऋतु अथवा ठण्डे प्रदेश में अभ्यास योग प्रशिक्षक के निर्देश से ही करें।

28.7 सीतकारी प्राणायाम विधि, लाभ एवं सावधानियाँ

नामकरण – इस प्राणायाम को सी + त + कारी अर्थात् सीत की आवाज करते हुए करने के कारण इसे सीतकारी प्राणायाम कहते हैं। इस प्राणायाम में पूरक के समय 'सी' की तथा पूरक समाप्त होने पर 'त' की आवाज़ आती हैं।

हठयोगप्रदीपिका के अनुसार विधि –

सीत्कां कुर्यात् तथा वक्त्रे घ्राणेनैव विजृम्भिकाम्। एवमभ्यासयोगेन कामदेवो द्वितीयक: ॥ 2/54

भावार्थ – मुख से सीत्कार (सी-सी की आवाज़) करते हुए पूरक करना चाहिए और रेचक केवल नासिका से ही करना चाहिए। इस प्रकार से अभ्यास करते हुए साधक दूसरा कामदेव जैसा हो जाता है।

विधि – किसी भी ध्यानात्मक आसन में ज्ञानमुद्रा लगाकर कमर सीधी करके बैठें।

- दाँतों को एक दूसरे के ऊपर दबाकर रखें तथा होंठ खुले हुए रखें।
- फिर सी-सी की आवाज़ करते हुए मुँह से श्वास लें तथा 'त' के साथ कुम्भक करते हुए, यथासम्भव जालन्धर बन्ध में रोकें।
- फिर घबराहट होने से पहले ही धीरे-धीरे जालन्धर बन्ध को खोलें तथा नासिका से रेचक करें।
- यह एक क्रम पूर्ण हुआ अत: इसे कई बार दोहरायें।

लाभ –

- **हठयोगप्रदीपिका** के अनुसार –

  न क्षुधा न तृषा निद्रा नैवालस्यं प्रजायते। 2/55

  भवेत् सत्त्वं च देहस्य सर्वोपद्रववर्जित:। अनेन विधिना सत्यं योगीन्द्रो भूमिमण्डले ॥ 2/56

- यह प्राणायाम क्षुधा, तृष्णा, निद्रा, आलस्य आदि समस्याओं में विशेष लाभकारी होता है।
- इसका नियमित अभ्यास चित्त को तेजस्वी बनाता है।
- मानसिक शान्ति के लिए उत्तम अभ्यास है।
- रक्तपित्त विकार एवं पित्त दोष से जनित रोगों में विशेष उपयोगी है।
- सदन्त प्राणायाम मसूडों और दाँतों की अनेक समस्याओं को दूर करता है और दन्त क्षय, दांत दर्द, पायरिया आदि में लाभकारि है।
- इस प्राणायाम के अभ्यास से शरीर गौर वर्ण का हो जाता है।

सावधानियाँ –

- यदि दाँतों में दर्द हो तो अभ्यास निषिद्ध हैं।
- अन्य सावधानियाँ शीतली प्राणायाम के सामान ही है।

विशेष – यह एक मात्र ऐसा प्राणायाम है जिसमें श्वास मुख से लिया जाता है।

28.8 भ्रामरी प्राणायाम विधि, लाभ एवं सावधानियाँ

नामकरण – भ्रमर का अर्थ भौंरा। इस प्राणायाम में साधक भँवरे की गुँजन के समान आवाज करते हुए श्वास-प्रश्वास करते है। इस प्राणायाम में भ्रमर के जैसी गुँजन होने के कारण इसे भ्रामरी प्राणायाम कहते हैं।

हठयोगप्रदीपिका के अनुसार विधि –

वेगाद् घोषं पूरकं भृङ्गनादं भृङ्गीनादं रेचकं मन्दमन्दम्।
योगीन्द्राणामेवमभ्यासयोगाच्चित्ते जाता काचिदानन्दलीला॥ 2/68

भावार्थ – वेग से भ्रमर गुंजार के समान आवाज़ करते हुए पूरक करना चाहिए। तत्पश्चात् भ्रामरी के गुंजन के समान आवाज करते हुए धीरे-धीरे रेचक करना चाहिए। इस प्रकार अभ्यास करने से उत्तम साधकों के चित्त में एक अपूर्व आनन्द लीला की उत्पत्ति होती है।

विधि – सर्वप्रथम किसी भी ध्यानात्मक आसन में कमर सीधी करके बैठें।

- अपने दोनों हाथों की अंगुलियों से दोनों कानों को सहज रूप से बन्द करके रखें। जिससे बाहर की ध्वनि प्रवेश न करें।
- इसके बाद अपनी सम्पूर्ण सजगता को मस्तिष्क के केन्द्र पर एकाग्र करें, जहाँ आज्ञा चक्र स्थित है।
- फिर धीरे-धीरे पूरक करने के पश्चात् रेचक करते हुए भ्रमर गुँजन के समान आवाज करें।
- गुँजन की ध्वनि पूरे रेचक में स्थिर, गहरी, सम और अखण्ड होनी चाहिए।
- रेचक पूर्णरूप से नियन्त्रित हो तथा उसकी गति मन्द हो।
- यह एक आवृत्ति हुई। रेचक पूर्ण होने पर गहरी श्वास लें और अभ्यास की पुनरावृत्ति करें।

विशेष –

- आवाज़ कोमल एवं मृदु होनी चाहिए, जिससे खोपड़ी गुँजायमान हो जाए। ध्वनी का स्वर उच्च होना आवश्यक नहीं है, परन्तु महत्त्वपूर्ण यह है कि मस्तिष्क में ध्वनि तरंगों की अनुभूति होनी चाहिए।

- अभ्यास का सर्वोत्तम समय प्रात:काल या मध्य रात्रि है, क्योंकि उस समय आन्तरिक अनुभूति में बाधा डालने वाली वाह्य ध्वनियाँ बहुत कम होती है।

लाभ –

- यह अभ्यास चेतना को अन्तर्मुखी बनाने के लिए सर्वोत्तम माना गया है।
- इस प्राणायाम से क्रोध, चिन्ता एवं अनिद्रा का निवारण होता है।
- यह गले से सम्बन्धित रोगों को समाप्त कर आवाज को मधुर एवं मजबूत बनाता है।
- यह तनाव और दबाव को और उससे सम्बन्धित सभी प्रकार के असन्तुलनों को कम करता है।
- मानसिक तनाव को दूर करने में भ्रामरी का अभ्यास सर्वोत्तम माना गया है।
- मस्तिष्क की मालिश होती है जिससे स्मरण शक्ति व अन्त:स्रावी ग्रन्थियाँ सुचारु रूप से कार्य करती है।

सावधानियाँ –

- कानों में संक्रमण होने पर अभ्यास न करें।
- हृदय रोग से पीड़ित व्यक्तियों को बिना कुम्भक के यह अभ्यास करना चाहिए।
- कुछ योगाचार्यों के अनुसार भ्रामरी का अभ्यास लेटकर नही करना चाहिए।
- आसपास का वातावरण शान्त होना चाहिए।

28.9 प्राणायाम से चिकित्सकीय लाभ

यौगिक चिकित्सा के अन्तर्गत प्राणायाम एक अंग है। इसके द्वारा अनेकों शारीरिक एवं मानसिक रोगों का उपचार किया जाता है। **हठयोगप्रदीपिका** का यह श्लोक विशेष ध्यान देने योग्य है :

प्राणायामेन युक्तेन सर्वरोगक्षयो भवेत्।
अयुक्ताभ्यासयोगेन सर्वरोगसमुद्भव: ॥ (2/16)

भावार्थ – प्राणायाम का समुचित अभ्यास सब रोगों को नष्ट कर देता है पर उसके दोषपूर्ण होने से अनेक रोग उत्पन्न हो सकते हैं। प्राणायाम करने वालों के लिए यह एक चेतावनी है।

मन:संस्थान की विकृति को प्राणायाम से दूर किया जा सकता है। ज्यादातर देखा गया है कि जितने शारीरिक रोग उत्पन्न होते हैं उनका एक प्रमुख कारण है – मानसिक तनाव। इसलिए हठयोगियों ने मन पर नियन्त्रण करने के लिए प्राणायाम साधना पर बहुत बल दिया है। दोनों की परस्पर घनिष्ठता बताते हुए कहा है कि यदि प्राण पर नियन्त्रण स्थापित किया जा सके तो मनोनिग्रह जैसा कठिन कार्य सरल बन जायगा। **हठयोगप्रदीपिका** के अनुसार

– पवनो बध्यते येन मनस्तेनैव बध्यते। मनश्च बध्यते येन पवनस्तेन बध्यते ॥

हेतुद्वयं तु चित्तस्य वासना च समीरण:। तयोर्विनष्ट एकस्मिंस्तौ द्वावपि विनश्यत: ॥ (4/21)

भावार्थ – जिसने प्राण वायु को जीता उसने मन जीत लिया। जिसने मन जीता उसने प्राण जीत लिया। चित्त की चंचलता के दो ही कारण है – एक वासना का दूसरा प्राण वायु का चंचल होना। इनमें से एक के नष्ट हो जाने पर दोनों का नाश हो जाता है।

अपच और कुपोषण के कारण उत्पन्न होने वाले रोगों का जितना दौर है उससे कहीं अधिक तनावजन्य रोगों की संख्या है। प्राणायाम इन सभी रोगों का उपचार करता है। व्यक्ति व्यायाम करता है या परिश्रम करता है तो रासायनिक परिवर्तन होते हैं, फलस्वरूप शक्ति का ह्रास होता है। इस ह्रास की पूर्ति प्राणायाम अच्छी तरह से करता है। इसके नियमित अभ्यास से पिट्यूटरी एवं पीनियल ग्रन्थियों का भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों स्तरों

पर विकास होता है। आसन के समान ही प्राणायाम में भी रोगों को रोकने एवं उनका उपचार करने, दोनों तरह के गुण विद्यमान है।

प्राणायाम बाह्य कारकों से उत्पन्न रोगों का उपचार करता है, जैसे – प्रदूषण एवं बाह्य रोगाणुओं से उत्पन्न ओने वाली शारीरिक बीमारियाँ – हैजा, मलेरिया तथा कीटाणुओं से फैलने वाली अन्य बीमारियाँ आदि।

प्राणायाम के द्वारा विभिन्न प्रकार की शारीरिक एवं मानसिक बीमारियों का इलाज किया जा सकता है।

बोध प्रश्न

७. सूर्यभेदन प्राणायाम किस ऋतु में करना ज्यादा लाभकारी है ?

८. घेरण्ड संहितानुसार प्राणायाम से पूर्व किन बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए ?

९. शिव संहितानुसार नाडियों की संख्या कितनी मानी गई है ?

१०. चौदह नाडियों में से प्रमुख नाडियाँ .....हैं।

११. नाडीशोधन के ..... प्रकार है। .....और ..... ।

१२. प्राणायाम का अभ्यास करते समय साधक का मुख किस तरफ होना चाहिए ?

१३. शरीर में हल्कापन, मुख पर प्रसन्नता, स्वर में सौष्ठव, नयन में तेजस्विता आदि किसके लक्षण माने गए है ?

१४. बायें नासाछिद्र से किया जाने वाला श्वसन-प्रश्वसन .....कहलाता है।

१५. दायें नासाछिद्र से किया जाने वाला श्वसन-प्रश्वसन .....कहलाता है।

१६. भँवरे की गुँजन के समान आवाज़ किस प्राणायाम मे होती है ?

१७. भ्रामरी प्राणायाम का सबसे ज्यादा प्रभाव ..... पर पड़ता है।

28.10 ग्रन्थ का मूलपाठ

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मन: । नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिकुशोत्तरम् ॥ (गीता 6/11)

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिर: । संपेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशाश्चानवयलोकयन् ॥ (गीता 6/13)

सुस्निग्धमधुराहरश्चतुर्थांशविवर्जित: । भुज्यते शिवसम्प्रीत्यै मिताहार: स उच्यते ॥ (हठदीपिका 1/58)

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु । युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दु:खहा ॥ (गीता 6/17)

आदौ स्थानं तथा कालं मिताहार तथापरम् । नाडीशुद्धिंश्च तत: पश्चात्प्राणायामं च साधयेत् ॥ (घेरण्ड संहिता 5/2)

विधिवत्प्राणसंयमैर्नाडीचक्रे विशोधिते' (ह.प्र 2/41)

सार्थलक्षत्रयं नाड्य: सन्ति देहान्तरे नृणाम् । प्रधानभूता नाड्यस्तु तासु मुख्याश्चतुर्दश ॥ (शिव संहिता)
सुषुम्नेडा पिंगला च गान्धारी हस्तिजिह्विका । कुहू: सरस्वतीपूषा शंखिनी च पयस्विनी ॥
वारुण्यलम्बुसा चैव विश्वोदरी यशस्विनी । एतासु तिस्रो मुख्या: स्यु पिंगलेडा सुषुम्निका ॥ (शिव संहिता)
नाडीशुद्धिर्द्विधा प्रोक्ता समनुर्निर्मनुस्तथा । बीजेन समनुं कुर्यान्निर्मनुं धौतिकर्मणा ।। (घेरण्ड संहिता 5/35)

कुशासने मृगाजिने व्याघ्राजिने च कम्बले । स्थूलासने समासीन: प्राङ्गमुखो वाप्युदङ्मुख: ॥
नाडीशुद्धिं समासाद्य प्रणायामं समभ्यसेत् ॥ (घेरण्ड संहिता 5/32)
बद्धपद्मासने योगी प्राणं चन्द्रेण पूरयेत् । धारयित्वा यथाशक्ति भूय: सूर्येण रेचयेत् ॥(ह.प्र 2/7)
प्राणं सूर्येण चाकृष्य पूरयेदुदरं शनै: । विधिवत्कुम्भकं कृत्वा पुनश्चन्द्रेण रेचयेत् ॥ (ह.प्र 2/8)
वपु: कृशत्वं वदने प्रसन्नता नादस्फुटत्वं नयने सुनिर्मले ।
आरोगता बिन्दुजयोऽग्निदीपनं नाडीविशुद्धिर्हठसिद्धिलक्षणम् ॥ (ह.प्र 78/2)
कुम्भक: सूर्यभेदस्तु जरामृत्युविनाशक: ।
बोधयेत्कुण्डलीं शक्तिं देहानलविवर्धनम् ॥ (घेरण्ड संहिता 5/69)
कपालशोधनं वातदोषघ्नं कृमिदोषहृत् ॥ (हठयोगप्रदीपिका 2/50)
जिह्वया वायुमाकृष्य पूर्ववत् कुम्भसाधनम् । शनकैर्घ्राणरन्ध्राभ्यां रेचयेत् पवनं सुधी: ॥ (ह.प्र 57/2)
न क्षुधा न तृषा निद्रा नैवालस्यं प्रजायते । (ह.प्र 2/55)
भवेत् सत्त्वं च देहस्य सर्वोपद्रववर्जित: । अनेन विधिना सत्यं योगीन्द्रो भूमिमण्डले ॥ (ह.प्र 2/56)
वेगाद् घोषं पूरकं भृङ्गनादं भृङ्गीनादं रेचकं मन्दमन्दम् ।
योगीन्द्राणामेवमभ्यासयोगाच्चित्ते जाता काचिदानन्दलीला ॥ (ह.प्र 2/68)
प्राणायामेन युक्तेन सर्वरोगक्षयो भवेत् । अयुक्ताभ्यासयोगेन सर्वरोगसमुद्भव: ॥ (ह.प्र 2/16)
पवनो बध्यते येन मनस्तेनैव बध्यते । मनश्च बध्यते येन पवनस्तेन बध्यते ॥
हेतुद्वयं तु चित्तस्य वासना च समीरण: । तयोर्विनष्ट एकस्मिंस्तौ द्वावपि विनश्यत: ॥ (ह.प्र 4/21)

28.11 सारांश

प्रस्तुत पाठ में आपने प्राणायाम के सिद्धान्त एवं उपयोगिताओं का अध्ययन किया। आपने जाना कि प्राणायाम को करते समय सामान्यतः कितने नियम व सिद्धान्त होते है जिनका पालन करना अत्यन्त आवश्यक होता है। उक्त प्राणायामों में दो प्राणायाम (शीतली एवं सीत्कारी) ऐसे भी है, जिनमें श्वसन में पूरक की किया प्रक्रिया मुँह के द्वारा बतायी गयी है जबकि अन्य प्राणायामों में पूरक की प्रकिया नासिका के द्वारा ही बतायी गयी है। नासिका द्वारा श्वसन करने पर श्वास छन कर हमारे फेफड़ों पर पहुँचती है, तथा मुह द्वारा पूरक करने पर सीधे ही फेफड़ों तक पहुँचती है। इसलिए शीतली एवं सीत्कारी प्राणायाम में वातावरण का अवश्य ध्यान रखें।

प्राणायाम वह प्रक्रिया है, जिसमें शरीर में ऊर्जा का विकास होता है, तथा (वात, पित्त, कफ) त्रिदोष साम्यावस्था में रहते है। किन्तु विशेष निर्देश के साथ ही अभ्यास करे। आज वर्तमान समय में प्राणायाम नितान्त आवश्यक हो गया है। यदि योग विद्या को आज भी नहीं अपनाया गया तो स्वयं को स्वस्थ रख पाना बहुत ही कठिन हो जायेगा। इसलिए नियमित प्राणायाम का अभ्यास कर औरों को भी स्वास्थ्य के प्रति जागरूक करे।

28.12 शब्दावली

१. मिताहार : सन्तुलित भोजन, सात्त्विक भोजन ।

२. स्निग्ध : चिकनाई से युक्त ।

३. बाह्यकुम्भक : श्वास को बाहर ही रोककर रखना ।

४. समनु : बीज मन्त्र के साथ होने वाला नाडीशोधन।

५. निर्मनु : षट्कर्मादि से होने वाला नाडीशोधन।

६. तृषा : तृष्णा (आसक्ति)।

७. भ्रमर : भँवरा।

८. अन्तर्नाद : अन्दर की ध्वनी।

28.13 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. स्वामी सत्यानन्द सरस्वतीद। आसन-प्राणायाम-मुद्रा-बन्ध। बिहार योग विद्यालय, मूंगेर, बिहार।

2. प्राणायाम रहस्य (2009), स्वामी रामदेव। दिव्य प्रकाशन – पतञ्जलि योगपीठ, हरिद्वार-249408

3. प्राणायाम (2010), डा. एच.आर. नागेन्द्र। विवेकानन्द केन्द्र योग प्रकाशन, बेंगलोर-560018

28.14 सहायक ग्रन्थ

1. योग सूत्र - प्रकाश गीता प्रेस गोरखपुर

2. भारतीय योगदर्शन - हरेन्द्र प्रसाद सिनदा

3. नन्दलाल दशोरा (2006), पातंजल योगसूत्र। रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार।

4. डा. अमृत लाल गुर्वेन्द्र, डा. गायत्री गुर्वेन्द्र (2020), योगाऽमृत। किताब महल, दरियागंज, नई दिल्ली

5. योग विज्ञान, हठयोग परिचय (2002), मानव चेतना एवं योग विज्ञान संकाय, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, गायत्रीकुंज-शान्तिकुंज विस्तार, हरिद्वार।

6. योगदीपिका (2005), बी.के.एस. आयंगार। ओरियंट लाँग्मैन प्राइवेट लिमिटेड, हैदराबाद-500029 (आन्ध्रा प्रदेश), भारत।

7. योग-शब्दकोश , डा. सुभाष विद्यालंकार। प्रतिभा प्रकाशन, शक्तिनगर, दिल्ली-110007

28.15 बोध प्रश्नोत्तर

१. शीत ऋतु।

२. स्थान, काल, मिताहार और नाडीशुद्धि।

३. 350000।

४. तीन।

५. दो। समनु, निर्मनु।

६. पूर्व या उत्तर।

७. नाडीशोधन प्राणायाम।

८. चन्द्रानुलोम विलोम प्राणायाम।

९. सूर्यानुलोम विलोम प्राणायाम।

१०. भ्रामरी प्राणायाम।

११. मस्तिष्क ।

28.16 अभ्यास प्रश्न

१. नाडीशोधन प्राणायाम की विधि लिखिए।

२. प्राणायाम का चिकित्सकीय प्रभाव पर प्रकाश डालिए।

३. भ्रामरी प्राणायाम की विधि, लाभ एवं सावधानियाँ को विस्तार से परिभाषित कीजिए।

४. चन्द्रानुलोम-विलोम प्राणायाम की सावधानियाँ क्या-क्या हैं।

५. सूर्यानुलोम-विलोम की विधि लिखिए।

नवविंशति पाठ
हस्त-मुद्रा-विज्ञान

29.1 प्रस्तावना

29.2 उद्देश्य

29.3 मुद्रा का अर्थ एवं परिभाषा

29.4 मुद्रा के प्रकार

29.4.1 हस्त मुद्रा

29.4.1.1 नासिका मुद्रा

29.4.1.2 ज्ञान मुद्रा

29.4.1.3 आकाश मुद्रा

29.4.1.4 वायु मुद्रा

29.4.1.5 सूर्य मुद्रा

29.4.1.6 वरुण मुद्रा

29.4.1.7 पृथिवी मुद्रा

29.4.1.8 प्राण मुद्रा

29.4.1.9 अपान मुद्रा

29.4.1.10 अपानवायु मुद्रा

बोध प्रश्न

29.5 ग्रन्थ का मूलपाठ

29.6 सारांश

29.7 शब्दावली

29.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

29.9 सहायक ग्रन्थ

29.10 बोध प्रश्नोत्तर

29.11 अभ्यास प्रश्न

29.1 प्रस्तावना

इस पाठ में आप हठयोग के प्रमुख अंग मुद्रा के बारे में संक्षेप में अध्ययन करेंगे। हठयोग में मुद्रा एवं बंध का स्थान आसन एवं प्राणायाम से भी बढ़कर है क्योंकि मुद्रा के अभ्यास हमारे प्राणमय एवं मनोमय कोश को प्रभावित करते हैं । मुद्रा हमारे शरीर के भिन्न अंगों द्वारा भाव विशेष को प्रकट करती है। सामान्यतः नृत्य में हमें कई तरह की मुद्राएँ देखने को मिलती हैं। भारतीय योग-साधना विश्व की श्रेष्ठतम एवं अन्यतम साधना है। मोक्ष का साधन 'ज्ञान' है। ज्ञान का साधन 'योग' है। कोई भी साधक ज्ञाननिष्ठ, विरक्त, धर्मज्ञ एवं जितेन्द्रिय भी क्यों न हो; किन्तु यदि वह देवता भी हो तो भी विना 'योग' के मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकता -

ज्ञाननिष्ठो विरक्तोऽपि धर्मज्ञो विजितेन्द्रियः। विना योगेन देवोऽपि न मोक्षं लभते प्रिये॥

योगशास्त्र में वर्णित मुद्रा एवं बंध तंत्रिका तंत्र की संवेदनाओं और उत्तेजनाओं को शांत एवं संयम करने में सहायक सिद्ध होती हैं ।

29.2 उद्देश्य - प्रस्तुत पाठ को पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे -

- ❖ योगशास्त्र में मुद्रा का अर्थ एवं परिभाषा ।
- ❖ मुद्रा के विभिन्न पक्षों की जानकारी ।
- ❖ हस्त मुद्रा का परिचय एवं लाभ ।
- ❖ मुद्रा के शारीरिक एवं मानसिक लाभ ।

29.3 मुद्रा का अर्थ एवं परिभाषा

हठयोग में मुद्रा और बंध का स्थान तीसरा है। मुद्रा शब्द की निष्पत्ति **'मुदहर्षे'** धातु में 'रक्' प्रत्यय लगाने से हुई है। जिसका अर्थ है-'प्रसन्नदायिनी स्थिति'। यौगिक ग्रंथों में मुद्रा का अर्थ प्राय: अंगों के द्वारा विशिष्ट भावाभिव्यक्ति के रूप में लिया गया है।

योग के अभ्यासियों, साधकों का प्रमुख लक्ष्य सुप्त क्षमताओं या अतींद्रिय क्षमताओं का जागरण करना अर्थात प्रसुप्त कुंडलिनी शक्ति का जागरण करना है। कुंडलिनी शक्ति का जागरण करने की विद्या अत्यंत गोपनीय रखी गई है। हठयोग में प्रचलित सभी मुद्राओं, आसन, प्राणायाम के साथ बंधों का प्रयोग कर शरीरांगों के द्वारा विशिष्ट अभिव्यक्त किया जाता है।

इसलिए '**सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषद्**' में कहा भी गया है-

योगेन योगो ज्ञातव्यो योगो योगात् प्रवर्धते। योगग्रस्तस्तु योगेन स योगी रमते चिरम्॥

योगेन योगं संरोध्य भावं भावेन चाञ्जसा। निर्विकल्पं परं तत्वं सदा भूत्वा परं भवेत्॥

इसी योग साधना एक मुख्य अंग **'मुद्रा'** है। यह आसनों से भी उत्कृष्टतर है और प्राणायामों से भी; क्योंकि इसका तात्त्विक स्वरुप सर्वातिशायी एवं अत्यन्त रहस्यान्वित है। 'मुद्रा' क्या है? 'मुद्रा' है—आनन्दश्री की प्राप्ती। समस्त योगों में

प्रचलित अष्ट महासिद्धियों के सौभाग्य को तिरस्कृत करने वाली एवं ऐश्वर्यरुपिणी विमर्श शक्ति के आनन्दोत्कर्ष की परमाह्लादिनी शक्ति (श्री) की स्वात्मानुभूतिमयी अभि-व्यक्ति ही 'मुद्रा' है और वही भगवान् की तात्विक पूजा भी है-

आनन्दोल्लासश्री: क्षुल्लकिताष्टमहासिद्धिसौभाग्या। दृश्यते यत्र दशायां सैव देवस्य सर्वमुद्रा:॥ (महार्थमञ्जरी)

योग का वह अंग, जो समस्त नाड़ी-जाल को शोधित कर दे, चन्द्रमा एवं सूर्य को चालित कर दे, शरीर के रसों को शोधित एवं बिन्दु को ऊर्ध्वोन्मुख कर दे, उसे ही **'महामुद्रा'** कहते हैं-

शोधनं नाडिजालस्य चालनं चन्द्रसूर्ययो:। रसानां शोषणं चैव महामुद्रा विधीयते॥ (गोरक्षशतक)

उपरोक्त अर्थ के संदर्भ में मुद्रा की परिभाषा निम्न प्रकार दी जा सकती है – "आसन, प्राणायाम एवं बंध की सम्मिलित वह विशिष्ट स्थिति जिसके द्वारा उच्च आध्यात्मिक शक्ति का जागरण संभव हो, मुद्रा कहलाती है।"

29.4मुद्रा के प्रकार

मुख्यतया मुद्राओं को दो भागों में बांटा गया हैं (1 –हस्त मुद्रा और (2शारीरिक मुद्रा । यहाँ केवल हस्त मुद्राओं का वर्णन किया जा रहा हैं ।

मुद्राओं का प्रयोग मुख्यतया तीन क्षेत्रों में किया गया हैं –

1. **नृत्य** (शारीरिक भंगिमाओं के माध्यम से भावों का प्रकट करना) ।
2. **अनुष्ठान** (विशेष प्रकार की पूजा करते समय) ।
3. **हठयोग** (चित्त को नियन्त्रित करने हेतु) ।

29.4.1 हस्त मुद्रा : - यह शरीर पञ्चतत्वों के योग से बना है। पाँच तत्व ये हैं- पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश। शरीर में जब भी इन तत्वों का असंतुलन होता है, रोग पैदा हो जाते हैं। यदि हम इनका संतुलन करना सीख जायें तो बीमार हो ही नहीं सकते एवं यदि हो भी जायें तो इन तत्वों को संतुलित करके आरोग्यता वापस ला सकते हैं। हस्त-मुद्रा-चिकित्सा के अनुसार हाथ तथा हाथों की अँगुलियों और अँगुलियों से बनने वाली मुद्राओं में आरोग्य का राज छिपा हुआ है। हाथ की अँगुलियों में पञ्चतत्व प्रतिष्ठित हैं ।

ऋषि-मुनियों ने हजारों साल पहले इसकी खोज कर ली थी एवं इसे उपयोग में बराबर प्रतिदिन लाते रहे, इसलिए वे लोग स्वस्थ रहते थे। ये शरीर में चैतन्य को अभिव्यक्ति देनेवाली कुञ्जियाँ हैं। नृत्य करते समय भी मुद्राएँ बनायी जाती हैं, हस्त-मुद्राएँ तत्काल ही असर करना शुरू कर देती हैं। इन मुद्राओं को प्रतिदिन तीस से पैंतालीस मिनट तक करने से पूर्ण लाभ होता है। एक बार में न कर सकें तो दो-तीन बार में भी किया जा सकता हैं। किसी भी मुद्रा को करते समय जिन अँगुलियों का कोई काम न हो उन्हें सीधी रखें। वैसे तो मुद्राएँ बहुत हैं पर कुछ मुख्य मुद्राओं का वर्णन यहाँ किया जा रहा है।

सर्वोत्तम हस्त मुद्राएँ- 1) नासिका मुद्रा, 2) ज्ञान मुद्रा, 3) आकाश मुद्रा, 4) वायु मुद्रा, 5) सूर्य मुद्रा, 6) वरुण मुद्रा, 7) पृथ्वी मुद्रा, 8) प्राण मुद्रा, 9) अपान मुद्रा और 10) अपानवायु या हृदयरोग मुद्रा ।

29.4.1.1 नासिका मुद्रा

विधि- प्राणायाम करते समय नासिका मुद्रा लगाकर अभ्यास करना चाहिए, इसमे अंगूठे के पास वाली दोनों अंगुलियों को दबाकर रखें तथा शेष दोनों अंगुलियां सीधी ही रखें । प्राणायाम के अभ्यास में दाहिनी ओर अंगूठे से नाक को बन्द करेंगे तथा बायीं ओर सीधी रखी दोनों अंगुलियों से बन्द करेंगे ।

लाभ- इडा व पिंगला नाडी उचित प्रकार से कार्य करने लगती है तथा सुषुम्ना नाडी का जागरण होता है । इसमें अंगुलियों को भूमध्य में दोनों भौहों के बीच में नहीं रखना हैं । क्योंकि इससे प्राण को मस्तिष्क में जाने में बाधा होतीं है। क्योंकि यही वह जगह है जहां पर हमारे शरीर की तीनों प्रमुख नाड़ियां आपस में मिलती हैं। यह Sympathatic-para sympathatic और Central Nerves System का केन्द्र है।

29.4.1.2 ज्ञान मुद्रा

विधि- अंगूठे एवं तर्जनी अंगुली के अग्रभागों के परस्पर मिलाकर शेष तीनों अंगुलियों को सीधा रखना होता हैं ।

लाभ – धारणा एवं ध्यानात्मक स्थिति का विकास होता है, एकाग्रता बढती है एवं नकारात्मक विचार कम होते है । इस मुद्रा से स्मरण शक्ति बढती है इसलिए इसके निरन्तर अभ्यास से बच्चे मेधावी व ओजस्वी बनते है । रचनात्मक, स्मृति और ज्ञान में सुधार करता है, यह विचारों में स्पष्टता लाता है और अनिद्रा को रोकता है ।

विशेष – आप आसन पर बैठे, खड़े या लेटे हुए किसी भी समय कर सकते हैं ।

29.4.1.3 आकाश मुद्रा

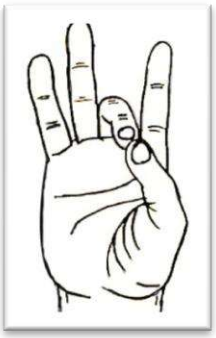

विधि - मध्यमा अंगुली को अंगूठे के अग्रभाग से मिलायें। शेष तीनों अंगुलियां सीधी रखें।

लाभ- कान के सब प्रकार के रोग जैसे बहरापन आदि, हड्डियों की कमजोरी तथा हृदय रोग में अप्रत्याशित लाभ होता है।

सावधानी - भोजन करते समय एवं चलते-फिरते यह मुद्रा न करें । हाथों को सीधा रखें । लाभ हो जाने तक ही करें।

29.4.1.4 वायु मुद्रा

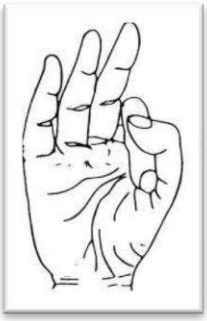

विधि- तर्जनी को अँगुष्ठ के मूल में लगाकर अँगुठे को हल्का दबाने से यह मुद्रा बनती है।

लाभ- वायु सम्बन्धी समस्त विकार, गैस्ट्रिक, गठिया, संधिवात, आर्थराइटिस, पक्षाघात, कम्पवात, सयाटिका, घुटने के दर्द जैसे रोगों को दूर करने में यह सहायक होती है। गर्दन व रीढ के दर्द, मुँह के टेढा पड जाने एवं रक्त परिभ्रमण के दोषों को समाप्त करती है।

सावधानी - इस मुद्रा का प्रयोग पीड़ित व्यक्ति के स्वस्थ होने तक ही करें, साथ में प्राण मुद्रा का प्रयोग अधिक हितकर होता है।

29.4.1.5 सूर्य मुद्रा

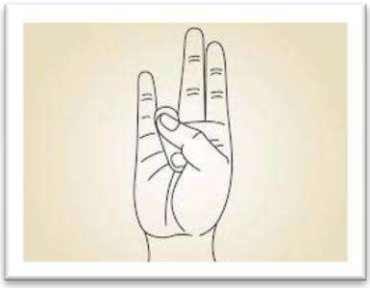

विधि- अनामिका अँगुली को अँगुठे के मूल पर लगाकर अँगुठे से दबाये।

लाभ- शरीर सन्तुलित होता है, वजन घटता है, मोटापा कम होता है। शरीर में उष्णता की वृद्धि, तनाव में कमी, शक्ति का विकास, खून कोलस्ट्राल कम होता है। यह मुद्रा मधुमेह, यकृत के दोषों को दूर करती है।

सावधानी- दुर्बल व्यक्ति इसे न करें। गर्मी में ज्यादा समय तक न करें। उच्च रक्त चाप वाले भी परामर्श लेकर करें ।

29.4.1.6 वरुण मुद्रा

विधि- कनिष्ठा अँगुली को अँगुठे से मिलाने पर यह मुद्रा तैयार होती है।

लाभ- शरीर का रूखापन नष्ट करके यह चमड़ी के समस्त रोग दूर करने में सहायक है। रक्त विकार, मुहांसे व जल की कमी वाले रोगों के लिए यह वरदान है। दस्त, अपच, खट्टी डकारे आना आदि रोगों में प्राथमिक उपचार के रूप में लाभ लिया जा सकता है।

सावधानी- स्थूल शरीर व सर्दी-जुकाम वाले व्यक्ति यह अभ्यास न करें ।

29.4.1.7 पृथिवी मुद्रा

विधि- अनामिका अँगुली अँगुठे से लगाकर रखे ।

लाभ- शरीर में स्फूर्ति, कान्ति एवं तेजस्विता आती है। दुर्बल व्यक्ति मोटा बन सकता है, वजन बढता है, जीवनी शक्ति का विकास होता है। यह मुद्रा पाचन-क्रिया ठीक करती है, सात्विक गुणों का विकास करती है, दिमाग में शान्ति लाती है तथा विटामिन की कमी को दूर करती है।

सावधानी - स्थूल शरीर वाले व्यक्ति यह अभ्यास परामर्श से करें ।

29.4.1.8 प्राण मुद्रा

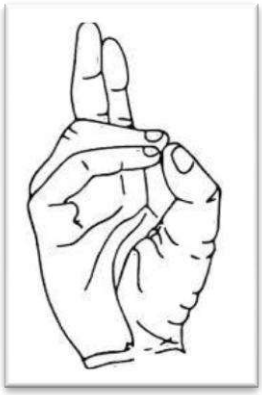

विधि- अनामिका और कनिष्ठा उंगलियों का उपयोग करें । अंगूठे से मिलने के लिए उन दोनों को मोड़ें । अपनी तर्जनी और मध्यमा को सीधा रखना ।

लाभ- शरीर से आलस को दूर करने में सहायक है । प्राण शक्ति का पूरे शरीर में संचार होता हैं, दुर्बल अथवा कमजोर व्यक्ति मानसिक और शारीरिक रूप से शक्तिशाली बनता हैं । शरीर में विटामिनो की कमी को दूर कर यह मुद्रा शरीर में नव- स्फूर्ति और उत्साह का निर्माण कराती हैं। आँखों से सम्बन्धी सभी प्रकार की बीमारियाँ दूर होती हैं, नियमित अभ्यास से चश्मा भी उतर सकता हैं। शरीर का कोई अंग सुन्न होना, लकवा अथवा वाक् (क्रेम्प) में भी सहायक हैं।

29.4.1.9 अपान मुद्रा

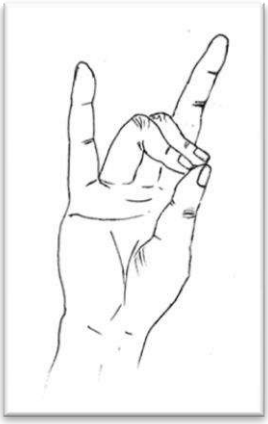

विधि- मध्यमा तथा अनामिका अँगुलियों को अँगुठे के अग्रभाग से लगा दे।

लाभ- शरीर और नाडी की शुद्धि तथा कब्ज दूर होता है। मल-दोष नष्ट होते हैं, बवासीर दूर होता है। वायु-विकार, मधुमेह, मूत्रावरोध, गुर्दों के दोष, दाँतों के दोष दूर होते हैं। पेट के लिए उपयोगी है, ह्रदय-रोग में फायदा होता है तथा यह पसीना लाती है।

सावधानी- इस मुद्रा से मूत्र अधिक होगा अत: चिन्ता की आवश्यकता नही ।

29.4.1.10 अपानवायु मुद्रा

विधि- तर्जनी अंगुली को अंगूठे के मूल में लगाए तथा मध्यमा और अनामिका अंगुलियों को अंगूठे के आगे वाले हिस्से से लगा दें।

लाभ - जिनका दिल कमजोर हैं, उन्हें इसे प्रतिदिन करना चाहिये। दिल का दौरा पड़ते ही यह कराने पर आराम होता है। पेट में गैस होने पर यह उसे निकाल देती है। सिरदर्द होने तथा दमे की शिकायत होने पर लाभ होता है।

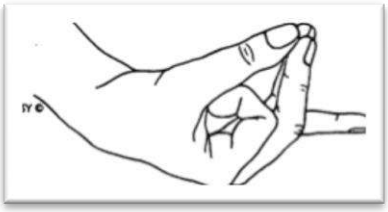

सावधानी- आन्त्ररोग अथवा दस्त में परामर्श लेकर करें ।

मुद्राओं के अभ्यास से पूर्व निर्देश -

१. मुद्रा के अभ्यास से पूर्व उपयुक्त आसनप्राणायाम एवं बंधों का अभ्यास भली प्रकार- करना आवश्यक है ।
२. प्राणायाम में पूरक, रेचक एवं कुंभक का सही अनुपात का अभ्यास जरूरी है ।
३. नाड़ी शोधन प्राणायाम का अभ्यास तीन से चार माह तक करना आवश्यक है ।
४. अभ्यास का स्थान स्वच्छ, शांत, हवादार एवं साधनोपयोगी होना चाहिए।
५. पहले सरल मुद्राओं का अभ्यास करें फिर धीरेधीरे- जटिल की ओर बढ़ें।
६. अभ्यास आरंभ हेतु उपयुक्त ऋतु वसंत बताया गया है।
७. सूर्योदय से पूर्व एवं सूर्यास्त के समय अभ्यास का उपयुक्त काल बताया गया है।
८. अभ्यास किसी मागदर्शक के निर्देशन में ही शुरू करें।

योग प्रशिक्षिक के नाते से कहना चाहूँगा कि हमनें विभिन्न योगशिविरों में साधकों को हस्त-मुद्रा-विज्ञान का महत्व समझाया और उनको दैनिक जीवन में अपनाने के लिए विशेष आग्रह किया और परिणामस्वरूप हमें साधकों की प्रतिक्रियाएँ प्राप्त हुई। उन्होंने स्वीकार किया कि यदि हम नियमित रूप से समय दें तो निश्चित रुप से रोगों को निर्मूल किया जा सकता है।

बोध प्रश्न

१. मुद्रा शब्द का क्या अर्थ है ?
२. हठयोग में मुद्रा का प्रयोजन क्या है ?
३. तर्जनी अंगुली .....तत्त्व का प्रतीक मानी गयी है ।
४. .....मुद्रा से कान के सब प्रकार के रोगों का निवारण होता है ।
५. वायु सम्बन्धित विकार – गठिया, संधिवात, कम्पवात आदि में उपयोगी .....मुद्रा है ।
६. किस मुद्रा के अभ्यास से मोटापा कम होता है ?
७. किस मुद्रा का अभ्यास सर्दी, जुकाम-खांसी में नही करना चाहिए ?
८. शरीर का वजन बढाने वाली मुद्रा है ।
९. मल-दोष, कब्ज़ तथा मूत्रावरोध को दूर करने में .....मुद्रा सहायक है ।

29.5 ग्रन्थ का मूलपाठ

ज्ञाननिष्ठो विरक्तोऽपि धर्मज्ञो विजितेन्द्रियः। विना योगेन देवोऽपि न मोक्षं लभते प्रिये॥

योगेन योगो ज्ञातव्यो योगो योगात् प्रवर्धते। योगग्रस्तस्तु योगेन स योगी रमते चिरम्॥

योगेन योगं संरोध्य भावं भावेन चाञ्जसा। निर्विकल्पं परं तत्वं सदा भूत्वा परं भवेत्॥ (सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषद्)

आनन्दोल्लासश्री: क्षुल्लकिताष्टमहासिद्धिसौभाग्या। दृश्यते यत्र दशायां सैव देवस्य सर्वमुद्रा:॥ (महार्थमञ्जरी)

शोधनं नाडिजालस्य चालनं चन्द्रसूर्ययो:। रसानां शोषणं चैव महामुद्रा विधीयते॥ (गोरक्षशतक)

29.6 सारांश

प्रस्तुत पाठ में आपने मुद्राओं के महत्त्व को जाना । आध्यात्मिक साधना की दृष्टि से मुद्रा एवं बंध का मुख्य उद्देश्य कुंडलिनी शक्ति का जागरण बताया गया है। हठयोग साधना का मुख्य उद्देश्य भी यही माना गया है। इसके अतिरिक्त आंतरिक अवयवों को नियंत्रित कर अभ्यासी साधक अपने शरीर की अंत:स्रावी ग्रंथियों को प्रभावित करता है। जिनके स्राव से साधक की शारीरिक एवं मानसिक स्थिति और सुदृढ़ होती है। मुद्रा के अभ्यास में 'स्थिरता' की बात घेरण्ड संहिता में की गई है-'मुद्रया स्थिरता चैव'-मुद्रा के अभ्यास से स्नायु संस्थान को वश में करके इच्छित ऊर्जा का उत्पादन एवं प्रयोग करके स्थिरता का भाव प्राप्त किया जा सकता है। मुद्रा का भाव साधक को अपने गुणों के अनुकूल ही ढाल लेता है और साधक मुद्रा के प्रभाव से प्रभावित होकर साधना के पथ पर अग्रसर होने लगता है। मुद्राओं के अभ्यास से तंत्रिका तंत्र के द्वारा मस्तिष्क को भेजे जाने वाले संदेश चेतना को जाग्रत करने में सफल होता है।

29.7 शब्दावली

१. अतीन्द्रिय : यों का विषय न हो ।जो बाह्य इन्द्रि
२. पञ्चतत्त्व : आकाशपृथिवी ।,जल,अग्नि,वायु,
३. पिंगला नाडी : दायीं नाक मे बहती है ।
४. पक्षाघात : शरीर के किसी भाग में निष्क्रियता होना । ,लकवा
५. ज्ञाननिष्ठा : ज्ञानीजन ।
६. मूत्रावरोध : मूत्र मार्ग में रुकावट होना ।

29.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. मुद्रा विज्ञान एवं साधना (2011), श्यामाकान्त द्विवेदी 'आनन्द' । चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी-221001

2. योग (2019), प्रकाशक - विवेकानन्द केन्द्र प्रकाशन ट्रस्ट, चैन्नै (पश्चिम बंगाल), भारत ।

3. प्राणायाम ,(2010)डा. एच.आर. नागेन्द्र । विवेकानन्द केन्द्र योग प्रकाशन560018-बेंगलोर ,

29.9 सहायक ग्रन्थ

1. योग विज्ञान, हठयोग परिचय (2002), मानव चेतना एवं योग विज्ञान संकाय, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, गायत्रीकुंज-शान्तिकुंज विस्तार, हरिद्वार ।

2. योग-शब्दकोश , डा. सुभाष विद्यालंकार । प्रतिभा प्रकाशन, शक्तिनगर, दिल्ली-110007

29.10 बोध प्रश्नोत्तर

१. प्रसन्न दायिनी स्थिति।

२. चित्त को नियन्त्रित करने हेतु।

३. वायु।

४. आकाश।

५. वायु।

६. सूर्य मुद्रा।

७. वरुण मुद्रा।

८. पृथिवी मुद्रा।

९. अपान।

29.11 अभ्यास प्रश्न

१. मुद्रा का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

२. मुद्रा के प्रमुख लाभ बताएँ।

३. आकाश मुद्रा के लाभ क्या हैं।

४. आपान मुद्रा का चित्र बनायें।

त्रिंशत् पाठ
ॐ ध्यान का स्वरूप

30.1 प्रस्तावना

30.2 उद्देश्य

30.3 ॐ का स्वरूप

30.4 ॐ की ध्यान स्थिति

30.4.1 प्रथम स्थिति

30.4.2 द्वितीय स्थिति

30.4.3 तृतीय स्थिति

30.5 संकल्प

30.6 शान्ति पाठ

बोध प्रश्न

30.7 ग्रन्थ का मूलपाठ

30.8 सारांश

30.9 शब्दावली

30.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

30.11 सहायक ग्रन्थ

30.12 बोध प्रश्नोत्तर

30.13 अभ्यास प्रश्न

30.1 प्रस्तावना

ॐ साधना कैसे करें? ॐ साधना का महत्व - ओंकार ध्यान का वर्णन 'छान्दोग्य उपनिषद्'में किया गया है। यह एक विशाल उपनिषद् है। 'छान्दोग्य उपनिषद्'को 8 भागों में बांटा गया है। पहले भाग में ´ओंकार´ का ध्यानोपासना के भिन्न-भिन्न रूप में वर्णन किया गया है। वैदिक साहित्य में ´ओंकार´ का वर्णन इस प्रकार किया है कि ´ओंकार´ के ध्यान को ही जीवन का अंतिम लक्ष्य माना गया है। इसके अनुसार मानव जीवन में ´ओंकार´ ध्यान के अतिरिक्त कोई अन्य कार्य होना चाहिए।

30.2 उद्देश्य - प्रस्तुत पाठ आप ॐ का स्वरूप का ध्यान करना जानेंगे ।

- ❖ प्रणव का स्वरूप
- ❖ ॐ शब्द की महिमा
- ❖ ॐ का विभिन्न स्थितियों में ध्यान प्रक्रिया
- ❖ संकल्प

30.3 ॐ का स्वरूप

महर्षि पतञ्जलि के अनुसार प्रणव (ॐ) व्याख्या -

तस्य वाचकः प्रणवः (पा.यो.सू.१/२७) (उसका वाचक नाम प्रणव है ।)

प्रणव की शब्द व्युत्पत्ति इस प्रकार की जाती है -

प्रकर्षेण नूयते स्तूयते अनेन इति प्रणवः - जिसके द्वारा प्रकर्ष के साथ स्तुति की जाये, वह प्रणव है। कहने का अभिप्राय यह है कि प्रणव के द्वारा ईश्वर की स्तुति विशेष रूप से की जाती है। ओंकार को प्रणव कहते हैं।

वेद के अनुसार -

सर्वे वेदा यत्पदमाम नन्ति, तपांसि सर्वाणि च यद् वदन्ति ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति, तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीमि । ओमित्येतत् ॥

सब वेद जिस पद का उच्चारण करते हैं, सब तपस्वी जिसका वर्णन करते हैं, जिसकी इच्छा से ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, वह पद तुमसे संक्षेप में कहता हूं : वह यही ओ३म् है ।

माण्डूक्योपनिषद् के अनुसार -

श्रोमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद् भविष्यदिति
सर्वमोंकार एव । यच्चान्यत् विकालातीतं तदोंकार एव ।

यह सब कुछ "ओ३म्" अक्षर है। उसकी महिमा यह है कि भूत, वर्तमान और भविष्यत् सब ओंकार है और त्रिकाल से परे जो कुछ भी है वह भी प्रकार ही है ।

श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार -

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन् । यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम् ॥

मरते समय ओंकार रूपी एकाक्षर ब्रह्म का उच्चारण करता हुआ और मेरा स्मरण करता हुआ जो मनुष्य प्राण छोड़ता है वह परम गति को प्राप्त होता है ।

30.4 ॐ की ध्यान स्थिति

ॐकार का महत्व का वर्णन उपनिषद् में मिलता है। इस का वर्णन करते हुए कहा गया है कि 'ऊँ' का जप तथा 'ॐ' ओंकार ध्यान के अभ्यास की विभिन्न स्थितियां-

30.4.1 प्रथम स्थिति

इसके अभ्यास के लिए सिद्धासन या पद्मासन या सुखासन में बैठ जाएं। कमर, गर्दन और पीठ को सीधा करके रखें। आंखों को बन्द कर ले और दोनों हाथों से अंजुली मुद्रा बनाकर नाभि के पास रखें। इसके बाद 'ॐ' मंत्र का मधुर स्वर में बिना रुके जप करें। ओंकार ध्यान में 'ॐ' का जप करते समय मन के साथ शरीर का अधिक प्रयोग करने से शरीर पूर्णरूप से ओंकार ध्वनि में लीन हो जाता है।

ध्यान रखें कि 'ॐ' का जप करते समय अपनी पूर्ण शक्ति को ओंकार के जप में ही लगाना चाहिए। 'ॐ' को पढ़ने की क्रिया लयबद्ध एवं शांत भाव से करना चाहिए।

इस तरह ओंकार का जप करने से शरीर और मन में अदृश्य रूप से एक अनुपम कम्पन होने लगता है, शरीर में उत्पन्न होने वाली यह कम्पन ही ओंकार ध्वनि की लहरें होती हैं। 'ॐ' से उत्पन्न होने वाली ध्वनि तरंग ही शरीर के चारों तरफ फैलने लगती है, जो शून्यता के भाव से अद्‌भुत रूप से ध्वनित होते हुए बाहरी वातावरण से टकराकर वापस आती है। इससे आस-पास का वातावरण शांत होता है तथा शरीर आनन्द का अनुभव करता है।

'ॐ' का जप लयबद्ध रूप से बिना रुकावट के करना चाहिए। ओंकार जप लगातार करना चाहिए जैसे- ॐॐॐॐॐॐ.....। 'ॐ' जप के बीच में कोई भी खाली जगह नहीं बननी चाहिए। इससे मन में अन्य भावनाएं उत्पन्न हो सकती है। इस तरह ओंकार ध्यान करने से उत्पन्न ध्वनि के कारण ध्यान वाले स्थान 'ॐ' मय हो जाता है और पुन: वही ध्वनि चारों तरफ से टकराकर वापस आकर सुनाई देने लगती है। इस ध्वनि तरंग को सुनकर रोम-रोम प्रसन्न और पुलकित होने लगता है, जिससे शरीर स्वस्थ एवं शांत होता है। इससे बहुत-सी शारीरिक विषमताएँ अपने आप समाप्त हो जाती है, क्योंकि इस प्रक्रिया से अन्नमयकोश एवं प्राणमयकोश दोनों प्रभावित होते हैं। इनकी शुद्धता पर ही शरीर का बाहरी तथा भीतरी स्वास्थ्य निर्भर है। इस 'ॐ' कार ध्यान के अभ्यास से ही सूक्ष्म शरीर का पूर्ण ज्ञान सम्भव है। 'ॐ' कार के जप से शरीर 'ॐ' रूपी जल स्नान में मग्न (लीन) होकर एक अलौकिक शांति, पवित्रता एवं शीतलता का अनुभव करता है।

उपनिषदों के अनुसार तत्व और प्राण (जीवन) द्वारा शरीर की उत्पत्ति हुई है। अत: शरीर ध्वनि का ही अंश है। इस तरह 'ॐ' का जप प्रतिदिन 15 मिनट तक जोर-जोर से करना चाहिए। इससे पूरा शरीर, मन और वातावरण 'ॐ' मय हो जाता है।

30.4.2 द्वितीय स्थिति

पहली स्थिति में 'ॐ' का जप करने के बाद दूसरी स्थिति में 'ॐ' का जप करें। इसमें 'ॐ' का जप मन में किया जाता है। इसके लिए आसन में रहते हुए होंठों को बन्द कर लें और जीभ को तालू से लगाकर रखें। इस स्थिति में मुख, कण्ठ एवं जीभ का उपयोग नहीं किया जाता। इस तरह की शारीरिक स्थिति बनाने के बाद 'ॐ' का जप मन ही मन जोर-जोर से करें। मन में बोलने व सुनने की गति पहली वाले स्थिति के समान ही लयबद्ध रखनी चाहिए। इस तरह 'ॐ' का जप करते समय ढीलापन या रुकावट नहीं आनी चाहिए। इस ध्यान क्रिया में ओंकार जप से उत्पन्न ध्वनि शरीर के अन्दर ही गूंजती रहती है तथा इसमें सांस लेकर रुकने की भी कोई आवश्यकता नहीं पड़ती। इस क्रिया को बिना रुके लगातार करते रहें

'ऊँ' मंत्र से उत्पन्न ध्वनि को जप के द्वारा शरीर के अन्दर इस तरह भर दें कि सिर से पैर तक 'ऊँ' ध्वनि से उत्पन्न कम्पन अपने-आप 'ऊँ' मंत्र को दोहराने लगें। इस तरह मन ही मन 'ऊँ' मंत्र का जप एकांत में बैठ कर जितनी देर तक सम्भव हो उतनी देर तक अभ्यास करें। 'ऊँ' जप के बीच में कोई खाली स्थान न छोड़े, क्योंकि इससे मन में अन्य विचार उत्पन्न हो सकता है। इसलिए 'ऊँ' मंत्र का जप लगातार करना चाहिए। इस तरह ओंकार ध्वनि का ध्यान करने से धारणा शक्ति बढ़ती है और समाधि के लिए अत्यन्त लाभकारी होती है।

मन ही मन में 'ऊँ' का जप करते समय जीभ का उपयोग नहीं करना चाहिए। इस क्रिया में शरीर को स्थिर व मन को शांत रखना चाहिए तथा 'ऊँ' ध्वनि से निकलने वाली तरंगों का अनुभव करना चाहिए। इसमे ध्वनि तरंग आंतरिक शरीर व मन से टकराकर अन्दर ही अन्दर गूंजती रहती है। पहली स्थिति में 'ऊँ' जप से शरीर शुद्ध होकर मन ही मन जप के योग्य बनता है और मन ही मन 'ऊँ' जप करके मन शुद्ध व निर्मल बनता है, जिससे बुरे मानसिक विचार दूर होते हैं। इस ध्यान से शरीर और मन दोनों ही 'ऊँ' मय हो जाते हैं। इससे मन शांत होकर ईश्वर शक्ति का ज्ञान प्राप्त करता है और व्यक्ति समाधि की प्राप्ति करता है।

इस क्रिया का अभ्यास प्रतिदिन 15 मिनट तक करना चाहिए। इससे मनोमयकोश एवं विज्ञानमयकोश शुद्ध होता है। उत्तरोत्तर कोश के शुद्ध हो जाने पर आनन्दमयकोश द्वारा परमानन्द की प्राप्ति होने लगती है। अन्नमयकोश एवं प्राणमयकोश रोगों को शरीर में प्रवेश नहीं करने देते जिससे स्थूल शरीर स्वस्थ और सजग बना रहता है। मनोमयकोश एवं विज्ञानमयकोश की शुद्धता के फल स्वरूप सूक्ष्म शरीर का बोध होता है। इस से सूक्ष्म शरीर में किसी भी प्रकार का दोष प्रवेश नहीं कर पाता। उपनिषदों के अनुसार दोष सूक्ष्म रूप ही रोग का कारण है। 'ऊँ' मंत्र का मानसिक जप व ध्यान करने से शरीर के 5 कोशों का ज्ञान होता है जिससे तुरीय अवस्था में चेतना तत्व का ज्ञान होता है। यह चेतना तत्व शरीर का मूल स्रोत है। जब 'ऊँ' कार ध्यान का अभ्यास करते हुए व्यक्ति को कारण, स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर का ज्ञान प्राप्त होने के बाद व्यक्ति ज्योति में लीन हो जाता है तो इसी अवस्था विशेष को निर्बीज समाधि कहते हैं।

30.4.3 तृतीय स्थिति

इस क्रिया के अभ्यास में मन के द्वारा 'ऊँ' का जप करना बन्द कर दिया जाता है और केवल आंतरिक भाव से 'ऊँ' के जप से उत्पन्न ध्वनि का अनुभव किया जाता है। इस क्रिया में ऐसा अनुभव करें कि 'ऊँ' ध्वनि का उच्चारण आंतरिक शरीर में अपने आप हो रहा है। इस तरह मन में विचार करते हुए ध्यान से आपको अनुभव होने लगेगा की शरीर के अन्दर 'ऊँ' की सूक्ष्म ध्वनि गूंज रही है। इस तरह का अनुभव होने लगेगा की सभी जगह 'ऊँ ऊँ' का जप हो रहा है। 'ऊँ' ही 'ऊँ' की ध्वनि सुनाई दे रही है। उसी ध्वनि पर अपने ध्यान को लगाएं।

'ओंकार ध्वनि तरंग ध्यान का जप में पहले ध्याता, ध्यान और ध्येत तीनों मौजूद होते हैं। परन्तु पहली स्थिति में 'ओंकार जप के द्वारा ध्याता शरीर से हट जाता है। फिर दूसरी स्थिति में ध्याता को मानसिक जप द्वारा मन से भी हटाया जाता है। इन दोनों प्रक्रिया में ध्याता पूर्ण रूप से गायब (लोप) हो जाता है। केवल ध्यान और ध्येय बचा रह जाता है। तीसरी स्थिति में 'ऊँ' का जप करने से केवल ध्येय ही बचा रह जाता है जो 'ऊँ' कार ध्यान साधना विधि का फल है। इसलिए ध्यान के लिए 'ऊँ' से अदभुत कोई मंत्र नहीं है।

इस 'ऊँ' ध्वनि तरंग ध्यान की विधि में पहली 2 अवस्थाओं में 'ऊँ' को बोलकर और मन के द्वारा जप किया जाता है। परन्तु तीसरी स्थिति में आंतरिक भाव से 'ऊँ' मंत्र का केवल अपने अन्दर अनुभव किया जाता है। पहली 2 स्थितियों तक कर्ताभाव से हम ध्यान करते हैं क्योंकि शरीर और मन कर्तव्य का हिस्सा है। परन्तु तीसरी स्थिति में आंतरिक भाव से मंत्र को सुनते हैं। इससे सिर्फ शुद्ध चेतन्य बचती है। वही सर्वस्थित ´ओंकार ब्रह्म है। यही ´ओंकार ध्यान साधना विधि है।

इस तरह प्रतिदिन ´ओंकार ध्यान साधना का अभ्यास करें। ध्यानात्मक आसन में बैठकर पहले 'ऊँ' मंत्र को पढ़कर अभ्यास करें, दूसरे में मन ही मन 'ऊँ' को पढ़ें और तीसरी अवस्था में केवल अपने भाव के द्वारा उस ध्वनि तरंग को अनुभव करें। अभ्यास के बाद अपने आप को ध्यानावस्था से मुक्त करके बाहरी संसार का अनुभव करें, शरीर तथा स्थान का ध्यान करें। अपने कामों का ध्यान करें। इसके बाद ईश्वरकृत प्राकृतिक दृश्यों की कल्पना करें- ´´मेरे चारों ओर हरे-भरे पेड़-पौधे और फूलों-फलों के पेड़ है। मैं जिस स्थान पर ध्यान का अभ्यास कर रहा हूं वहां के स्वच्छ व शांत वातारण में स्वच्छ पानी के बहाव वाली नदी बह रही है तथा एक सुन्दर पर्वत है जिसके बीच बैठकर मैं यह ध्यान का अभ्यास कर रहा हूं।

इस तरह के प्राकृतिक दृश्य का अनुभव करने से शरीर स्वस्थ और मन प्रसन्न होता है। ऐसा अनुभव करने के बाद दोनों हथेलियों को आपस में रगड़कर चेहरे पर तथा आंखों पर लगाएं। इसके बाद आंखों को हथेलियों से ढक दें और फिर खोलें। आसन त्याग करने के बाद 5 से 10 मिनट तक पीठ के बल लेटकर श्वास क्रिया करें। श्वसन क्रिया के बाद कुछ क्षण तक मौन रहना चाहिए और फिर अपने दैनिक कार्यों पर लौट जाना चाहिए।

इस प्रकार ओंकार ध्यान साधना का अभ्यास एक महीने तक फल की इच्छा के बिना करना चाहिए। इस ध्यान साधना का अभ्यास करना पहले कठिन होता है परन्तु प्रतिदिन अभ्यास करने से यह आसानी से होने लगता है। इस क्रिया में सफलता प्राप्त करने के लिए सबसे पहले मन को अपने वश में करके एकाग्र करना चाहिए। ध्यान क्रिया में जल्दबाजी करने से लाभ के स्थान पर हानि होने की सम्भावना रहती है और मन में इससे ऐसी भावना पैदा होना ही इस की सफलता में सबसे बड़ी बाधा है। इसलिए इस का अभ्यास को धैर्य व साहस के साथ करना चाहिए।

यदि 'ऊँ' ध्यान साधना विधि का अभ्यास फल की इच्छा के बिना किया जाएं तो कुछ महीने में ही सफलता प्राप्त हो सकती है। इस क्रिया में ओंकार मंत्र को अंतर आत्मा में इस तरह चिंतन किया जाता है कि कुछ समय में ही व्यक्ति को दिव्य शक्ति व ज्ञान प्राप्त होने लगता है।

महर्षि पतांजलि ने कहा है कि जब मनुष्य अपने स्वरूप को जान लेता है तो वह सुख की कामना नहीं करता और न ही दु:ख से बचाव की ही कामना करता है। क्योंकि इस ध्यान साधना से उसे ज्ञान हो जाता है कि सुख और दु:ख केवल बाहरी साधना है। ओंकार साधना से बाहरी सम्बंध टूट जाते है और मन अंतर आत्मा में स्थित और स्थिर हो जाता है। काम, क्रोध, लोभ व मोह का नाश होकर अन्दर केवल आनन्द ही आनन्द रहता है। वह ईश्वर के चिंतन में लीन होने लगता है। 'ऊँ' मंत्र उसके श्वास-प्रश्वास में बहने लगता है। ´अणेरणीयान महतो महीयान´ अर्थात ओंकार ध्यान साधना के द्वारा व्यक्ति संसार के सभी पदार्थों में ईश्वर का अनुभव करने लगता है।उसे यह ज्ञान हो जाता है कि संसार के सभी वस्तुओं में ब्रह्म मौजूद है। इस कैवल्य-अवस्था में आरूढ़ व्यक्ति में

संसारिक वस्तुओं के प्रति इच्छाओं का नाश हो जाता है तथा मन में किसी तरह की कोई इच्छा नहीं रह जाती। तत्त्ववेता ऋषियों ने भी उपरोक्त जन्म मरण के कारणों को स्वकथन द्वारा पुष्ट किया है-

मृतिबीजं भवेज्जन्म जन्मबीजं तथा मृति:।

घटीयंत्रवदाश्रान्तो बम्भ्रमीत्य निशंनर:।।

अर्थात जन्म मृत्यु का बीज है और मृत्यु जन्म का बीज है। मनुष्य निरन्तर घड़ी की सुई की तरह बिना आराम किए बार-बार जन्म और मरण के चक्कर में घूमता रहता है। अत: ओंकार ध्यान साधना से मानव जीवन के उस चक्र से मुक्ति मिल जाती है।

30.5 संकल्प

जब हम योग सत्र का समापन करें तो इस संकल्प से करें –

हमें अपने मन को हमेशा संतुलित रखना है,

इसी में हमारा आत्म विकास समाया है,

मैं अपने कर्त्तव्य, स्वयं के प्रति, कुटुम्ब के प्रति, समाज और विश्व के प्रति, शान्ति-आनन्द और स्वास्थ्य के प्रचार के प्रतिबद्ध हूँ।

30.6 शान्ति पाठ

ॐ सर्वे भवन्तु सुखिन:, सर्वे सन्तु निरामया: ।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद्दु:खभाग्भवेत् ॥

ॐ शान्ति: शान्ति: शान्ति: ॥

सब सुखी हों, सब निरोग हों। सब निरामय हों, सबका मंगल हों, कोई दु:खी न हो। शान्ति: शान्ति: शान्ति: अर्थात् आदिदैविक, आदिभौतिक और आध्यात्मिक शान्ति हों।

बोध प्रश्न

१. 'तस्य वाचक':प्रणव : यह सूत्र किस ग्रन्थ का है ?

२. ओंकार ध्यान के लिए किस आसन मे बैठें ?

३. किस का जप करने से अन्नमय एवं प्राणमयकोश दोनों प्रभावित होते हैं ?

४. भकारी है।का जप समाधि के लिए अत्यन्त ला .....

५. ॐकार का ध्यान किसी स्थिति में किया जाता है ?

30.7 ग्रन्थ का मूलपाठ

तस्य वाचकः प्रणवः (पा.यो.सू.१/२७)

सर्वे वेदा यत्पदमाम नन्ति, तपांसि सर्वाणि च यद् वदन्ति ।

यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति, तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीमि । ओमित्येतत् ॥ (वेद)

श्रोमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद् भविष्यदिति

सर्वमोंकार एव । यच्चान्यत् विकालातीतं तदोंकार एव । (माण्डूक्योपनिषद्)

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन् । यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम् ॥ (गीता)

मृतिबीजं भवेज्जन्म जन्मबीजं तथा मृतिः। घटीयंत्रवदाश्रान्तो बम्भ्रमीत्य निशंनरः।।

30.8 सारांश

भारतीय आस्तिक दर्शनों में ओंकार मंत्र को बीज कहा गया हैं और जिस तरह बीज को जमीन से निकाल लेने पर पेड़ नहीं बनते, उसी तरह ओंकार मंत्रों को अंतर आत्मा में पूरी श्रद्धा के साथ धारण न करने पर सफलता प्राप्त नहीं होती। परन्तु अंतर मन के साथ इस साधना को करने से अच्छा परिणाम मिलता है।

उसी ब्रह्म को उपनिषदों में नेति कहा गया है। जब ध्यान में मन लीन होने लगता है तो संसार स्वप्नवत हो जाता है और ध्यान करने वाला व्यक्ति साक्षी हो जाता है। इस तरह ध्यान करने से मनुष्य को ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त होता है और उसे अनुभव होता है कि यह संसार एक मंच है और जीवन एक अभिनय। यह ज्ञान ही जीवन मुक्ति है और कैवल्य या परम पद है।

30.9 शब्दावली

१.	अन्नमय	:	खाद्य सामग्री से परिपूर्णअन्न से निर्मित । ,
२.	प्राणमय	:	प्राणों से बना कोश ।
३.	मनोमय	:	मन से बना कोश ।
४.	विज्ञानमय	:	अन्तर्ज्ञान या सहज ज्ञान से बना कोश ।
५.	ध्याता	:	ध्यान करने वाला ।
६.	ध्येय	:	जिसका ध्यान किया जाये । लक्ष्य ।
७.	मृतिबीजम्	:	मृत्यु का बीज ।
८.	जन्मबीजम्	:	जन्म का बीज ।
९.	घटीयन्त्रवत्	:	घड़ी की सुई की तरह ।

30.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. योगदर्शन (1974), डा. सम्पूर्णानन्द । नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, उत्तरप्रदेश ।

2. जगदीशचन्द्र मिश्र 2012, भारतीय दर्शन । चौखम्भा सुर भारती प्रकाशन, वाराणसी ।

3. प्राणायाम ,(2010)डा. एच.आर. नागेन्द्र । विवेकानन्द केन्द्र योग प्रकाशन560018-बेंगलोर ,

30.11 सहायक ग्रन्थ

1. व्यास महर्षि (2003), भगवदगीता। गीता प्रेस गोरखपुर ।

2. योग-शब्दकोश , डा. सुभाष विद्यालंकार । प्रतिभा प्रकाशन, शक्तिनगर, दिल्ली-110007

30.12 बोध प्रश्नोत्तर

१. पातञ्जल योगसूत्र।

२. सिद्धासनपद्मासन या सुखासन।,

३. ॐकार।

४. ॐ।

५. तीन।

30.13 अभ्यास प्रश्न

१. ॐकार का स्वरूप क्या हैं ?

२. ॐकार की ध्यान विधि स्पष्ट कीजिए।

३. ॐकार का उच्चारण कैसे करें ?